आर्य भट्ट विज्ञान–पत्रिका

Sep. 1984 May, Sep. 1985 Aug. 1987







आर्यभट्ट

विज्ञान - पत्रिका



तम्बर
१९८४

विज्ञान महाविद्यालय

सम्पादक
डॉ० विजय शंकर

गंगा की २५२५ किलोमीटर लम्बी जलधारा को जिस तरह से जगह-जगह पर शहरी और फैक्टरी के गन्दे नालों से प्रदूषित किया जा रहा है, जिस तरह भूमि अपरदन के फलस्वरूप नदी मिट्टी से भरती जा रही है और नदी से काट कर नहरें निकाली जा रही हैं, इससे कभी-कभी यह आशंका होती है कि गंगा का वर्तमान रूप बना भी रह सकेगा या नहीं। और अगर इसका स्वरूप बिगड़ता है, इसमें बहने वाले जल की मात्रा एवं प्रवाह कम हो जाता है, तब क्या होगा ?

मुझे यह डर है कि गंगा कहीं न रुक जाये
कि ज़िन्दगानी इबारत है इसके बहने से।

—फ़ारिग़

ओ३म्

आर्यभट्ट

विज्ञान—पत्रिका

सितम्बर १९८४



सम्पादक :

डॉ० विजय शंकर

अध्यक्ष : वनस्पति विज्ञान विभाग

परामर्शदाता :

प्रो० सुरेश चन्द्र त्यागी

प्राचार्य : विज्ञान महाविद्यालय

मूल्य ५.००

प्रकाशक :

कुलसचिव
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

मुद्रक :
जैना प्रिंटर्स
ज्वालापुर

विषय—सूची

सम्पादकीय

पादप-बायो-टेक्नोलोजी का पर्यावरण सुरक्षा में योगदान

वर्तमान समय की अनेक समस्याओं में से एक प्रदूषण की समस्या है जो सम्पूर्ण मानव-जाति को निगल जाने के लिए अपने पंजे बढ़ा रही है। इससे निबटने के लिए विश्व में अनेक स्तरों पर प्रयास किये जा रहे हैं। कीट-नाशी, फफूंद-नाशी एवं उर्वरकों के अन्धाधुन्ध प्रयोग से अनेक पारिस्थितिक (इकालौजिकल) समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं। कुछ समय पूर्व यह समझा जाने लगा था कि कीटनाशियों ने फसल नष्ट करने वाले कीटों को मार कर कृषि उत्पादन की समस्या हल कर दी है। किन्तु इसके साथ जो दूसरी अधिक घातक समस्या उत्पन्न हो रही थी उसकी ओर ध्यान काफी समय पश्चात् ही गया। कीटनाशियों के अन्धाधुन्ध व असन्तुलित प्रयोग से सम्पूर्ण भोजन-श्रृंखला (फूड चेन) इन विषों से सन्तृप्त हो गयी। डी०डी०टी०, बी०एच०सी० आदि अन्य क्लोरीनेटेड हाइड्रोकार्बन तन्त्रिका प्रणाली और लैंगिक हारमोन्स के मेटाबोलिज्म पर दुष्प्रभाव डालने लगे। निकट भविष्य में बढ़ते हुए पर्यावरण प्रदूषण से कुछ राहत मिलने की सम्भावना नजर आने लगी है। आज से कुछ समय पश्चात शायद कीटनाशियों के प्रयोग की आवश्यकता से ही छूट मिल सकती है। जैनेटिक-इन्जीनियरिंग के क्षेत्र में हुई खोजों के अनुसार अब फसलों में ऐसे जीवों का प्रवेश कर दिया जाएगा जो ऐसे रसायनिक पदार्थों के निर्माण को निर्देशित करेंगे जिनसे हानिकारक कीट दूर भागते हों। तब कीटनाशकों के प्रयोग और उनसे होने वाले प्रदूषण का प्रश्न ही नहीं होगा। औद्योगिक विकास की प्रक्रिया में जीवाश्म ईंधन पर बढ़ती हमारी निर्भरता के कारण वायु में कार्बन-डाई-आक्साइड की मात्रा बढ़ रही है। इससे वायु का तापक्रम बढ़ता है जिसके विश्व-व्यापी परिणाम हैं। इससे बचने के लिए आवश्यक हैं कि पौधों की ऐसी प्रजातियां पैदा करें जिनकी प्रकाश संश्लेषण की क्षमता अधिक हो जिससे वे अधिक कार्बन-डाई-आक्साइड प्रयोग कर सकें और फलतः हवा में इस गैस की सान्द्रता बढ़ने न पाये।

नेत्रजनयुक्त व फास्फेटयुक्त उर्वरक जब खेतों में डाले जाते हैं तब उनकी कुछ मात्रा पानी के साथ बह कर नदी और तालाबों में चली जाती है जिससे वहां शैवाल की अत्यधिक वृद्धि होती है और उनकी मात्रा बढ़ जाती है। जिससे

अनेक इकालोजिकल समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। इसी प्रकार शहर और कारखानों के गन्दे पानी से मुक्ति पाने की समस्या है। इस समस्या का अभी तक कोई प्रभावी हल नहीं निकला है। फिर भी आशा की एक किरण नजर आने लगी है। पौधों की ऐसी प्रजातियां पैदा करने की या बनाने की वात चल पड़ी है जो अपनी नाइट्रोजन की आवश्यकता की पूर्ति, प्रकृति में विद्यमान नाइट्रोजन से कर सकेंगी। तब खेत में बाहर से अतिरिक्त नाइट्रोजनयुक्त उर्वरक डालने की आवश्यकता नहीं रहेगी और इस प्रकार शैवाल वृद्धि की समस्या और उससे होने वाले इकालोजिकल असन्तुलन का प्रश्न ही नहीं उठेगा। एक अन्य क्षेत्र जिसमें बहुत तेजी से प्रगति हो रही है, ऐसे बैक्टीरिया बनाने की है जो शहर की गन्दगी, जिसमें मनुष्य का मल-मूत्र शामिल है, से उपयोगी पदार्थ (जैसे मिथेन गैस) बना सकेंगे। इससे जहां प्रदूषण से मुक्ति मिलेगी वहां साथ ही ऊर्जा की समस्या भी हल हो सकेगी।

—वि० शंकर

श्री बलभद्र कुमार हूजा, कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, ने दिल्ली के जूनियर छात्रों के गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार में लगे एन०सी०सी० कैम्प का दिनाँक ८ जून, ८४ को उद्घाटन किया। इस अवसर पर उन्होंने अपने स्वागत-भाषण में छात्रों को राष्ट्र-प्रेम का मन्त्र देते हुए कहा कि यह उनका और हम सबका कर्त्तव्य है कि हम जहां भी जायें उस स्थान को जैसा पायें उससे बेहतर छोड़कर लौटें। यह ऋण तो चुकाना ही है। उनके भाषण के कुछ अंश निम्न प्रकार हैं—

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के परिसर में आप सभी का स्वागत करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है। मैं समझता हूं कि आप लोगों को दिल्ली से यहां आकर यहां के वृक्ष, वातावरण, गंगा-तट, शुद्ध वायु (आक्सीजन) आदि के कारण गुरुकुल परिसर अच्छा लगा होगा। दिल्ली में धुआं, गर्द, शोर से दूषित वातावरण मिलता है। आप यहां से स्वास्थ्यवर्धक वस्तुओं एवं वातावरण की मधुर स्मृतियों को लेकर जाओगे। यहां फिर अनेक बार आओगे और यहां के स्वच्छ वातावरण का लाभ उठाओगे।

मैं चाहूंगा कि आप अपने शहर और मौहल्ले को दूषित वातावरण से बचाओ। आज जगह-जगह सुन्दरता और शुद्धता का ह्रास होता जा रहा है। पर्यावरण दूषित होता जा रहा है। ग्रामीणों का महानगरों की ओर प्रस्थान हो रहा है। उसे भी रोकना होगा। इसके लिए महानगरों का वातावरण ग्रामों में तथा गांवों का वातावरण महानगरों में ले जाना होगा। महानगरों में ग्रामीण वातावरण से तात्पर्य है महानगरों में वृक्षों का अधिक से अधिक लगाना।

गांवों में तथा नगरों में लोग जानबूझकर वातावरण दूषित करते हैं। तम्बाकू आदि पीकर स्वतः नुकसान उठाते हैं। न जाने उन्हें इससे क्या आनन्द की अनुभूति होती है? न जाने उन्हें क्या फायदा होता है? क्यों होता है यह सब कुछ?

गुरुकुल की पुण्य-भूमि में आपका सम्मिलित होना तभी सार्थक होगा जब आप यह सब त्याज्य कार्य नहीं करेंगे और दूसरे व्यक्तियों को भी इनसे दूर रहने के लिए प्रेरित करेंगे। स्वामी दयानन्द ने खाने-पीने के विषय में एक सर्वोत्तम

सूत्र दिया था— "जिस वस्तु से दुर्गन्ध आती है, अथवा हानि होती है वह सेवन करने योग्य नहीं। यह ऋत् है इसमें कुछ भी अनृत नहीं। क्या कोई व्यक्ति दुर्गन्ध-युक्त अथवा हानिकारक वस्तु खाना पसन्द करेगा ? क्या कोई गन्दी जगह बैठना पसन्द करेगा ? वैसे कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छा से कुछ भी गलत-सलत खा सकता है, प्रयोग कर सकता है। लेकिन ईश्वर ने हमें विवेक दिया है। अतः यह हमारा स्वयं का निश्चय है कि हम क्या खायें, क्या पीयें, कैसे स्थान का सेवन करें। हमें गलत प्रभावों से बचकर चलना होगा।

इसीलिये तो वेद-मन्त्रों में सर्वश्रेष्ठ मन्त्र गायत्री मन्त्र है। यह मन्त्र सभी को पढ़ना-समझना चाहिए। इस मन्त्र का सार-संक्षेप यह है—'हे सविता ! हम तुम्हारी तरह दुःखनाशक, सुखस्वरूप हों। हमारी बुद्धियां अच्छे कार्य की ओर प्रेरित हों।' यह मन्त्र मानव जाति की अमूल्य निधि है।

क्या आप जानते हैं कि स्वामी विवेकानन्द कौन थे ? उनका पूर्व नाम क्या था ? उन्होंने विवेकानन्द नाम क्यों ग्रहण किया ? अपने पूर्व नाम नरेन्द्र को छोड़ विवेकानन्द नाम ग्रहण करने का मुख्य कारण था—विवेक से कार्य करने की उनकी प्रबल इच्छा। दया-भाव से युक्त होकर उसी में आनन्दानुभूति करने की भावना से ही स्वामी दयानन्द ने अपना नाम दयानन्द रखा। आपको भी अपने सुन्दर नामों से प्रेरणा लेनी चाहिए। निश्चय ही आप सबके नाम अति सुन्दर और प्रेरणादायक हैं।

आपने राकेश शर्मा का नाम सुना होगा। अभी कु० बचेन्द्री पॉल ने एवरेस्ट पर पहुँच कर पहली भारतीय महिला होने का सौभाग्य प्राप्त किया है। इसी प्रकार से तेनसिंह, हिलैरी आदि हैं, जिनसे आप सबको प्रेरणा लेनी है।

मैंने जब अपना सेवाश्रम आरम्भ किया तो मेरे पूज्य गुरु ने मुझे एक गुर दिया कि जहां जाओ उस स्थान अथवा पद को छोड़ते समय देखो कि उसे पहले से अच्छा छोड़ा या नहीं। तुम्हारे आने के समय वह कैसा था और जाने के समय पहले से अच्छा है या नहीं। जिस स्थान पर रहते हो क्या जाते समय अपने सीने पर हाथ रखकर कह सकते हो कि मैं इसे बेहतर छोड़कर जा रहा हूँ ? यदि अच्छा छोड़कर जाओगे तो हंसते हुए जाओगे और यदि गन्दा छोड़कर जाओगे तो तुम ही को दुःख होगा। कल जब संसार छोड़कर जाना होगा तो हृदय से स्वतः पूछना कि इसे पहले से अच्छा छोड़ा या बुरा और उसी के अनुसार तुम्हारी प्रशंसा अथवा बुराई होगी।

मेरा जन्म १९१५ में हुआ। तब भारत गुलाम था। होटलों और क्लबों के द्वारों पर लिखा होता था 'हिन्दुस्तानियों और कुत्तों के लिए प्रवेश नहीं'। भारतीयों की दुर्गति थी। उस समय श्री करतार सिंह हुए जो कि देश के लिए १९१५ में शहीद हुए। और भी अनेक व्यक्ति उनसे पहले शहीद हुए। उस समय भी तुम्हारे जैसे नौजवान थे जिनका खून तुम्हारी तरह गर्म था। उन्होंने प्रण किया कि भारत को आज़ाद कराना है। अपनी मां की बेड़ियां काटनी हैं। तब बलोचिस्तान से ब्रह्म देश तक, केरल से कश्मीर तक इतना विशाल हमारी मां का प्रांगण था। लेकिन उस समय कुछ ऐसे देशद्रोही नेता पैदा हुए जिन्होंने मां का अंग-भंग कराया। उसी तरह के व्यक्ति आज भी देश में पनप रहे हैं। हमें उनसे सतर्क रहना है। पं० जवाहरलाल नेहरु ने कहा था, 'यदि भारत मां ज़िन्दा नहीं रही, तो कौन ज़िन्दा रहेगा?' ऐसे किसी भी व्यक्ति के लिए हिन्दुस्तान में जगह नहीं हो सकती जो भारत मां को प्यार न करता हो।

आप 'वन्दे मातरम्' का गीत सीखें। कैसा सुन्दर वर्णन है मां भारती का इस गीत में। "वन्दे मातरम्, सुजलांम्, सुफलांम्, मलयज शीतलाम्, शस्य श्यामलांम् मातरम्"। इसी तरह से 'सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' यह गीत भी सभी को सीखना चाहिए। दूसरे देशों में भी अपनी मातृभूमि की पूजा की जाती है। आप सब को यहां से यह संकल्प लेकर जाना है कि इस देश की रक्षा हमारा परम कर्त्तव्य है।

मैं चाहूंगा कि आप ऐसे चित्र तैयार करें जिनमें चित्रित हो कि गंगा कहां से निकलती है? कहां जाती है? इससे क्या हानियां होती हैं? क्या लाभ होते हैं? यदि गंगा संयम से चलेगी तो सबका भला होगा। यदि असंयमित हो गई तो तूफान आयेंगे, भू-स्खलन होगा। गंगा के संयम, असंयम का वृक्षों से सीधा सम्बन्ध है। पेड़ काटकर गंगा नदी के तट को कमजोर किया जाता है। अतः गंगा को संयमित करने के लिए वृक्षारोपण अत्यावश्यक है।

इस देश के लिए गरीबी भी एक अभिशाप है। आपने दिल्ली में फुटपाथ, बस स्टैण्ड्स पर छोटे-छोटे बच्चों को अखबार बेचते हुए, भीख मांगते हुए देखा होगा। क्या इस गरीबी को समाप्त कराना हमारा कर्त्तव्य नहीं है? क्या इसका कोई जवाब हमारे पास है? मैं पिछले ५० साल से इस प्रश्न का उत्तर ढूंढ रहा हूँ लेकिन मैं अभी तक इसका कोई जवाब नहीं पा सका। विषमता, असमानता निरन्तर आ रही है। हम सबको मिलकर इसका निराकरण करना है। यह मेरी पीढ़ी का फर्ज है कि हम ही कोई उदाहरण प्रस्तुत करें लेकिन आपका सहयोग भी इसके लिए आवश्यक है। यदि यह प्रश्न हल हो जाता है तो हमारा देश सभी विकासशील देशों के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत कर सकेगा।

४०० वर्ष पहले सारे हिन्दुस्तान की आबादी कुल ८ करोड़ थी। आज ७० करोड़ जनसंख्या हो गई है। भूमि उतनी ही है और पेड़ काट दिए गये हैं। पेड़ लगाना जीवन के लिए भी आवश्यक है। इससे ही हमें आक्सीजन मिलती है। ये कार्बन-डाइ-आक्साइड ग्रहण करते हैं।

भारत में एक और कमी है—शौचालयों की अव्यवस्था। गांवों में तो यह विल्कुल नदारद है। जहां देखो वहां शौच ही शौच। मेरे एक विदेशी मित्र जब भारत आए तो मुझे उन्हें घुमाने में बहुत ही शर्म महसूस हुई। पहले हमारे पास बहने वाली नहर का किनारा बहुत रमणीक था लेकिन अब यह भी इसी कारण दूषित हो गया है। हमें इस समस्या का भी हल ढूंढना होगा।

हमारी एक और समस्या है—निरक्षरता। भारत की ५० प्रतिशत जनता अभी भी निरक्षर है। क्या यह लज्जा को बात नहीं है ? इससे भी दुःख की बात तो यह है कि भारत के विश्वविद्यालयों के कैम्पस में रहने वाले अनेक व्यक्ति भी निरक्षर होते हैं। चाहिए तो यह कि विश्वविद्यालयों के करीब कम-से-कम एक मील के दायरे में तो कोई भी व्यक्ति निरक्षर न हो। लेकिन ऐसा है नहीं। हमें चाहिए कि हम इस समस्या को निरस्त करें ताकि प्रगति निष्कंटक हो।

फिर हमें पाखण्ड खण्डन भी करना है। स्वामी दयानन्द ने सन् १८६७ में हरिद्वार में 'पाखण्ड खण्डिनी पताका' फहराई थी। देश उस समय भी पाखण्डियों का अखाड़ा था, आज भी है। शीतला की बीमारी क्यों होती है ? चेचक कैसे होती है ? यह सब जानना-परखना होगा ताकि हमारे लोग पाखण्डियों के जाल में फंसने से बचें। आश्चर्य है कि विज्ञान में इतनी प्रगति होने के बावजूद भारत का मनुष्य आज भी पाखण्डियों के चक्रवात में फंसा हुआ है।

आप लोगों को ऐसे कार्यक्रम बनाने चाहियें जिससे कि टी०वी०, रेडियो वाले आपके कार्यक्रमों को प्रसारित करने की स्वतः इच्छा प्रकट करें। उनसे हमारा सम्पर्क है। वह चाहते है कि हम उनके लिए कोमल सामग्री पैदा करें।

वैदिक सन्ध्या का प्रथम मन्त्र है—"शन्नो देविरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शन्योरभिस्रवन्तु नः"—हमारे लिए सभी देव कल्याणकारी हों एवं प्रीतिकारक हों। हम पर सुख की वर्षा करें।

आपने यहां आकर ठहरने का कार्यक्रम बनाया, इसके लिए मैं आपका धन्यवाद करता हूँ। आशा करता हूँ कि आपका यह कार्यक्रम सफल और अनुकरणीय होगा। □

प्राचीन भारतीय रसायनशास्त्र*

—मानसिंह
एम.ए., पी-एच.डी., वेदाचार्य, डिप. इन जर्मन
प्रोफेसर एवम् अध्यक्ष—संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार–२४६४०४

भारतवर्ष में रसायन-विज्ञान का प्रारम्भ एक व्यावहारिक तथा सोद्देश्य कला के रूप में बहुत प्राचीन काल में हो चुका था। मिट्टी से बनाए गए और अग्नि में पकाये गए पात्र रसायनशास्त्र के इतिहास में महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हैं। प्राग्वैदिक काल अर्थात् प्रागैतिहासिक काल से लेकर लगभग १५०० ई० पू० तक की अवधि के हाथ से बने मिट्टी के पात्र लेखाहिया (मिर्ज़ापुर; उत्तर प्रदेश), मुण्डीगक, लंघनाज (उत्तरी गुजरात), नागार्जुनकोण्डा (आन्ध्र प्रदेश), बुर्ज़होम, ब्रह्मगिरि, सांगनकल्लु, उत्नूर, पीखलीहल, पियम्पल्ली तथा टी० नरसीपुर आदि स्थानों के उत्खनन में मिले हैं। चाक को घुमाकर बनाए गए पात्रों और अन्य रासायनिक क्रियाओं की दृष्टि से सिन्धु-घाटी की सभ्यता का अपना महत्त्व है, जिसकी अवधि लगभग २३०० से १७५० ई० पू० रही और जो पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, उत्तरी राजस्थान (बिकानेर–राज्य), कच्छ, सौराष्ट्र, मध्य तथा दक्षिण गुजरात और बलोचिस्तान में फैली थी। कालीबंगन जैसे स्थानों पर इससे भी पहली सभ्यता के अनेकविध पात्र मिले हैं। पात्रों पर मोर, उड़ते हुए पक्षियों, मृग तथा मछली, पीपल तथा ताल-वृक्ष आदि और कभी-कभी मानव के चित्र भी बने हैं। हड़प्पा में पात्रों को पकाने की भट्टियाँ भी मिली हैं। सतह की चमक के लिए सफ़ेद बालु, बालुमिश्रित सोड़े आदि के साथ गोंद तथा मिश्रित रासायनिक द्रव्यों का प्रयोग किया गया है। हड़प्पा-सभ्यता में मानव तथा पशुओं की मूर्त्तियों, गुडियों तथा अन्यान्य शोभावर्द्धक वस्तुओं का भी प्रचलन था।

प्राग्-हड़प्पा-सभ्यता में धातुओं के विस्तृत प्रयोग के संकेत नहीं मिलते; केवल मुण्डीगक, नल, कालीबंगन तथा मेही आदि स्थानों में ताँबे के प्रयोग के संकेत मिले हैं, जबकि हड़प्पा-सभ्यता में ताँबे, काँसे, सीस, चाँदी, सोने तथा

*लेखक की आकाशवाणी, शिमला से प्रसारित एक वार्त्ता पर आधृत।

सोने एवं चाँदी के मिश्रण से तैयार की गई धातु के प्रयोग की विकसित कला के दर्शन होते हैं। मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक नर्तकी की कांस्यमूर्त्ति उस काल के धातुप्रयोग की कला का उत्तम निदर्शन प्रस्तुत करती है। यही नहीं, मोहनजोदड़ो से ताँबे तथा काँसे के छूरे, चाकू, कुल्हाड़ो, भाले, बाणों के अग्रभाग, छोटी तलवार, दराँती, मछली पकड़ने के हुक आदि यन्त्रों तथा आयुधों की प्राप्ति भी हुई है। हड़प्पा के धातुकर्मी धातुओं के मिश्रण की कला से भी सुपरिचित थे। हड़प्पा-सभ्यता में लोहे के प्रयोग के संकेत नहीं मिलते। प्राग्वैदिक काल के धातुकर्म एवं प्रक्रियाओं के प्रसंग में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसा तथा आन्ध्र प्रदेश से प्राप्त लगभग १७०० से १००० ई० पू० के कुल्हाड़ी, दराँती, भालों के अग्रभाग, अंगूठी, तलवार आदि से युक्त ताम्रसंग्रहों का उल्लेख अप्रासंगिक न होगा। हड़प्पा-सभ्यता के विभिन्न स्थलों से नीलम, श्वेत पाषाण, रक्त धातु (फेरिक ऑक्साइड), सूर्यकान्तमणि, बिल्लौर, सुलेमानी पत्थर आदि विविध खनिज पदार्थ प्राप्त हुए हैं। निश्चय ही हड़प्पा के धातुकर्मी इन रासायनिक पदार्थों के प्रयोग तथा गुणों से सुपरिचित रहे होंगे। मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा के उत्खनन से प्राप्त पदार्थों से स्पष्ट है कि वहाँ के लोग विविध खनिजों का उपयोग अलंकारों, अंगरागों तथा औषधियों के रूप में करते थे।

तदनन्तर वैदिक काल में वैदिक ग्रन्थों में कुछ रासायनिक कर्मों के संकेत मिलते हैं। 'ऋग्वेद' में सोने आदि धातुओं के प्रयोग के संकेत हैं।[1] सोने और चाँदी के पात्र यज्ञों में काम आते थे। वे धातुओं को भट्टियों में गलाकर बनाए जाते रहे होंगे। धातुओं के लिए सामान्यतः 'अयस्' शब्द का प्रयोग है, जो पहले ताँबे, काँसे अथवा सीस के लिए प्रयुक्त है किन्तु जिसे परवर्ती काल में लोहे का वाचक मान लिया गया। 'अथर्ववेद' के अनुसार स्वर्ण धारक व्यक्ति को दीर्घायुष्य प्रदान करता है।[2] वैदिक काल के लोग गृह्य एवं यज्ञिय उपयोग के लिए पात्रनिर्माणार्थ ताँबे तथा काँसे आदि धातुओं के प्रयोग का तकनीकी ज्ञान रखते थे। वे उबालकर भाप से तैयार किए गए पेयों तथा वाष्पक्रिया से सुपरिचित थे। वैदिक साहित्य में अमृतस्वरूप सोम और मधु एवं सुरा का उल्लेख मिलता है।

१००० से ४०० ई० पू० की अवधि से सम्बद्ध पात्र भी गंगा, यमुना तथा सरस्वती (आधुनिक घग्गर) के मैदानों से प्राप्त हुए हैं। ये रंगीन भूरे रंग, लाल रंग तथा सादे भूरे रंग के हैं। तत्पश्चात् सम्भवतः बिहार अथवा पूर्वी उत्तर प्रदेश के भूभाग में काले पॉलिशयुक्त पात्र प्रयुक्त होने लगे। रंगीन भूरे पात्रों के साथ मेरठ ज़िले में हिण्डन नदी पर स्थित आलमगीरपुर तथा हस्तिनापुर में लोहे की वस्तुएँ भी मिली हैं। लौहनिर्मित पदार्थों की प्राप्ति

के अन्य स्थान हैं— रोपड़ (पंजाब), नासिक, उज्जैन, नगदा (मध्य प्रदेश), साम्भर (राजस्थान), तक्षशिला, अतरंजीखेड़ा, कौशाम्बी, श्रावस्ती, शिशुपाल-गढ़ तथा जौगड़ (उड़ीसा), महेश्वर, त्रिपुरी (मध्य प्रदेश), प्रकाश तथा बहल (महाराष्ट्र), सोनपुर तथा राजगिर (बिहार) आदि। इन उपलब्ध वस्तुओं का काल प्रायः ६०० से २०० ई० पू० है। दक्षिण भारत में लौहनिर्मित वस्तुएँ मैसूर राज्य के हल्लूर तथा मद्रास राज्य के आदिचानल्लूर से लेकर महाराष्ट्र में नागपुर तक मिलते हैं। दक्षिण भारत में लोहे के आगमन का काल १०५० से लेकर ६५० ई० पू० माना जाता है। इससे स्पष्ट है कि लगभग १००० से ८०० ई० पू० भारत में लोहे को गलाकर विभिन्न वस्तुएँ बनाई जाती थीं।

उत्तरवैदिक युग तथा परवर्ती श्रेण्य-काल अर्थात् ६०० ई० पू० से लेकर ७४० ई० तक की अवधि में भारत में रासायनिक ज्ञान तथा कर्मों के अपेक्षाकृत अधिक पुष्ट प्रमाण मिलते हैं। इस काल से सम्बद्ध कौटिल्यविरचित 'अर्थशास्त्र', चरक–तथा सुश्रुत-संहिताओं तथा वराहमिहिर-कृत 'बृहत्संहिता' आदि ग्रन्थों से विविध रासायनिक कर्मों के विषय में विवरण मिलते हैं। पुरातात्त्विक उत्खननों से काँच, मिट्टी के पात्रों तथा धातुविषयक कार्यों में की गई नवीन उपलब्धियों का भी परिचय मिलता है। दक्षिणी डेक्कन में मास्की में प्राप्त काँच की वस्तुओं से ज्ञात होता है कि प्रथम सहस्राब्द ई० पू० के प्रारम्भ में भारतीयों को काँच से सुपरिचय एवं तकनीकी ज्ञान था। इसके अतिरिक्त हस्तिनापुर, तक्षशिला, उज्जैन, महेश्वर, नासिक, भीटा, अहिच्छत्र, नालन्दा, कोल्हापुर, कोण्डापुर, प्रकाश, ब्रह्मगिरि तथा अरिकमेदु आदि स्थानों से नीले, हरे, लाल, सफ़ेद, पीले, नारंगी तथा बैंजनी आदि अनेक रंगों की काँच की वस्तुएँ मिली हैं। काँच के लिए 'काच' शब्द का प्रयोग 'शतपथ-ब्राह्मण'[3], अर्थशास्त्र'[4], 'चरक-संहिता'[5], 'हितोपदेश'[6] तथा 'बृहत्संहिता'[7] में हुआ है।

उत्तरी, मध्य तथा दक्षिणी भारत के अनेक स्थानों से काले रंग के पॉलिशयुक्त डक्कन, हाँडी आदि पात्र प्राप्त हुए हैं, जो तेज घूमते चाक पर महीन मिट्टी से बने हैं और आग में उच्च तापमान पर पकाये गए हैं। इनका काल छठी से दूसरी शताब्दी ई०पू० है। कुछ की काली पॉलिश के रासायनिक विश्लेषण में उसमें ४६·५५ प्रतिशत सफ़ेद खनिज पत्थर, २५·२० प्रतिशत लौह ऑक्साइड, १५·५३ प्रतिशत अल्यूमीनियम ऑक्साइड, ४·७४ प्रतिशत चूना और ३·४३ प्रतिशत मैग्नेशिया मिला। कुछ को लाल मिट्टी से मिलते-जुलते लोहे के मोर्चे के रंग के पदार्थ में डुबोया गया है; और कुछ को सज्जी माटी, रेह या खड़ी जैसे क्षारीय पदार्थ से युक्त मिट्टी से चमकता काला रंग दिया गया है।

इस युग में ताँबे, काँसे, पीतल तथा लोहे का काम प्रगति पर था। अहि-च्छत्र से प्राप्त आभूषणों से स्पष्ट है कि बहुमूल्य धातुओं तथा पत्थरों से आभूषणों

के निर्माण की कला उन्नत थी। नेपाल-सीमा के पास रामपुरवा अशोक-स्तम्भ में उपलब्ध ताम्र-अर्गला उन्नत कारीगरी का परिचय देती है। श्रेण्य-युग में धातु-उद्योग के प्रसिद्ध केन्द्र थे। वात्स्यायन ने अपने 'कामसूत्र' में धातुवाद (धातु-कर्म) को ६४ कलाओं में गिना है। ह्वेन त्सांग ने अपने समय में भगवान् बुद्ध की ८० फीट ऊँची ताम्र-प्रतिमा तथा हर्ष द्वारा निर्माणाधीन एक पीतल के मन्दिर का वर्णन किया है। बिहार में सुल्तानगंज के बौद्धविहार के अवशेषों में उपलब्ध बुद्ध की ७ फीट ६ इंच ऊँची तथा लगभग एक टन भारी प्रतिमा भारत में पाँचवीं शती ई० में धातुकर्म की महती प्रगति का संकेत देती है। दूसरा उदाहरण है लगभग ४०० ई० का मेहरौली का प्रसिद्ध लौहस्तम्भ, जो २४ फीट ३ इंच ऊँचा है और जिसमें ९९·७२ प्रतिशत लोहा, ०·०८ प्रतिशत कार्बन, ०·०४६ प्रतिशत सिलिकोन, ०·००६ प्रतिशत गन्धक तथा ०·११४ प्रतिशत फ़ासफ़ोरस है। एक इससे भी बड़ा लौहस्तम्भ धारानगरी में दो खण्डों में प्राप्त होता है, जिसका समय १२वीं शताब्दी ई० है।

'अर्थशास्त्र' में खानों तथा कारखानों से सम्बद्ध भाग में सोने, चाँदी, ताँबे, सीस, त्रपु तथा लोहे के कच्चे खनिजों के अस्तित्व एवं लक्षणों का वर्णन है। खानों के अध्यक्ष का कार्य ताँबे, सीस, त्रपु, वैक्रान्त, पीतल, काँसे तथा लोहे आदि के कारखानों तथा धातुपात्रों के व्यापार को स्थापित करना था। शंख, रत्न, मणि, हीरे तथा मूंगों आदि से सम्बद्ध कारखाने एवं व्यापार भी होता था। कारीगर सोने की वस्तुओं के क्षेपण, गुण तथा स्थूल अथवा पोले बनाने ही में कुशल न थे प्रत्युत वे उचित अनुपात में पिघलो हुई धातुओं के मिश्रण की कला में भी प्रवीण थे। कौटिल्य ने भापजन्य रसों का भी वर्णन किया है। उस समय कई प्रकार की मदिरा तैयार की जाती थी, जैसे चावल से तैयार की जाने वाली 'मेदक', चावल की पिट्ठी तथा क्रमुक की छाल एवं फलों से तैयार की जाने वाली 'प्रसन्ना', कत्थे, राब तथा मधु से तैयार 'आसव', काली मिर्च के चूर्ण से युक्त शक्कर तथा मेषश्रृंगी की छाल से बनी 'मैरेय', अंगूर से बनी 'मधु' और आम के रस तथा अन्य तत्त्वों से तैयार 'महासुरा'। तेल निकालने, रसपाक तथा रसविद्ध का भी वर्णन है।

'चरकसंहिता' में विविध खनिजों, धातुओं तथा धातुओं के मिश्रणों का उल्लेख है—अद्रिज अथवा शिलाजतु, मण्डूर, अंजन, सुवर्ण, अयस्, कांस्य, गन्धक तथा तुत्थ (ताँबा सल्फ़ेट)। मद्यवर्ग में चरक ने 'मदिरा', जौ आदि से बनी 'मद्य', अंगूररस से तैयार 'मृद्वीक', गन्ने के रस से बना 'रसासव', शहदयुक्त शराब 'माध्वीक', सोमरसयुक्त 'आसुत' आदि का वर्णन किया है। धातुओं तथा खनिजों में कांस्य, लोह, सुवर्ण, रजत, सीस, ताम्र, त्रपु, रजत माक्षीक, सुवर्ण माक्षीक, स्रोताञ्जन, शिलाजतु तथा तुवीर वर्णित हैं। उन्होंने

मृदु, तीक्ष्ण तथा मध्यम श्रेणी के क्षारों का भी वर्णन किया है। क्षारीय द्रव्यों में यवक्षार (पोटाश का कार्बोनेट), सार्जिकक्षार (नाट्रोन) तथा टंकण (बोराक्स) का वर्णन है। 'सुश्रुतसंहिता' में छह लवणों का वर्णन प्राप्त होता है—सौवर्चल, सैन्धव, विड, औद्भिद, सामुद्र तथा रोमक।[8] 'रसप्रदीप' (१६वीं शती ई०) में शंखद्रावक नामक खनिज क्षार बनाने का वर्णन है। 'सुवर्णतन्त्र' में शंखद्रावक को सार्वभौम द्रावक माना गया है।

वराहमिहिर-कृत 'बृहत्संहिता' में गन्धों तथा सुगन्धित केशतेल आदि का वर्णन है।[9] उस समय उनसे सम्बद्ध रासायनिक तकनीकों का विकास हो चुका था। गन्धयुक्ति से सम्बद्ध अध्याय में सुगन्धों के अनेक गुर वर्णित हैं। वालक, स्पृक्क, अगुरु, मदनक, धान्य, कर्पूर, चोल, घन, शैलेय, नागपुष्प, व्याघ्रनख, नख, तगर, कर्चूर, मलय तथा उशीर इन १६ द्रव्यों के विभिन्न मिश्रणों से १,७४,७२० प्रकार की सुगन्ध तैयार करने का वर्णन किया गया है। वराहमिहिर ने वज्रलेप तथा वज्रसंघात तैयार करने की विधियाँ भी बतलाई हैं।[10] विविध पौधों, फलों, बीज, छाल, गुग्गुलु आदि के योग से निर्मित वज्रलेप मन्दिरों तथा भवनों की छतों तथा दीवारों पर लगाया जाता था और सीस, लौहचूर्ण या पीतल से बना वज्रसंघात धातु-सीमेण्ट था, जिसे आवश्यकतानुसार पिघलाकर गर्म ही प्रयुक्त किया जाता था।

अजन्ता (द्वितीय शतक ई०पू० से छठी शती ई०), बाघ (तृतीय से पंचम शतक ई०), बादामी (षष्ठ शती ई०) तथा सित्तन्नवसल (सप्तम से अष्टम शतक ई०) से रंगों के प्रयोग तथा रंगीन चित्रकारी की तकनीक का पता चलता है। इनमें प्रयुक्त मुख्य रंग धातुराग, हरिताल, नील, कज्जल, खड़ी-माटी, गुरु-माटी तथा जंगाल हैं। भूमि का निर्माण लेप से कर उसके ऊपर अभीष्ट रंगों का प्रयोग किया जाता था। 'विष्णुधर्मोत्तर-पुराण' में रंगीन चित्रकारी की भूमि के निर्माण की विधि वर्णित है। इस प्रकार वैदिकोत्तर तथा श्रेण्य युग में भारत में रासायनिक ज्ञान तथा क्रियाओं की सुदृढ़ परम्परा के दर्शन होते हैं।

रसविद्या अथवा रसशास्त्र से भी भारत का रासायनिक ज्ञान स्पष्ट है। यहाँ 'रस' से तात्पर्य पारद अथवा पारे से है। रसशास्त्र में पारे के विभिन्न मिश्रणों तथा अन्य द्रव्यों का ओषधि के रूप में प्रयोग निर्दिष्ट है। संस्कृत में रस-शास्त्र से सम्बद्ध अनेक ग्रन्थ मिलते हैं—गोविन्दभगवत्पाद-प्रणीत 'रसहृदय', सिद्ध नागार्जुन-कृत 'रसरत्नाकर', सोमदेवरचित 'रसेन्द्र-चूडामणि', वाग्भट-कृत 'रसरत्नसमुच्चय', यशोधर-रचित 'रसप्रकाशसुधाकर', नित्यनाथसिद्ध-कृत 'रस-रत्नाकर', रामेश्वरभट्ट-रचित 'रसराजलक्ष्मी', रामचन्द्रगुह-कृत 'रसेन्द्रचिन्ता-मणि', गोविन्दाचार्य का 'रससार', ज्ञानचन्द्र-रचित 'रसकौमुदी', सूर्यपण्डित का

'रसभेषजकल्प', चामुण्डलिखित 'रससंकेतकलिका', सुरेश्वर को 'लोहपद्धति', देवनाथ-कृत 'रसमुक्तावली', बिन्दुपण्डित की 'रसपद्धति', रामेश्वर-कृत 'रसामृत', मथनसिंह-कृत 'रसनक्षत्रमलिका', गोपालकृष्ण-रचित 'रसेन्द्रसार-संग्रह', शिव-रामयोगिकृत 'पारदयोगशास्त्र', नरसिंहकविराजरचित 'रसरत्नमाला', रामकृष्ण-कृत 'रसराजशंकर' आदि। इनके अतिरिक्त, अन्य ग्रन्थ हैं—रसार्णव, कैलास-कारक, गन्धककल्प, पारदकल्प, धातुमारण, धातुरत्नमाला, धातुशुद्धिप्रकरण, जारणमारणादि, ताम्रभस्मविधि, यन्त्रोद्धार, रसद्रुतिप्रकरण, रसवैशेषिक, रस-ग्रन्थ, रसनिघण्टु तथा रसरंजन। 'मातृकाभेदनतन्त्र' तथा 'रुद्रयामल' के रसा-र्णवकल्प में भी रसविद्यापरक विचार हैं। इन ग्रन्थों का काल नवीं से लेकर अठारहवीं शती ई० है। इसके अतिरिक्त, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, बंगाली, मराठी, उड़िया तथा गुजराती भाषाओं में भी इस प्रकार के ग्रन्थ मिलते हैं। अकेले तमिल में ओषधि की सिद्धपद्धति पर लगभग २०० ग्रन्थ विद्यमान हैं। रसशास्त्र पर तन्त्र का प्रभाव है। इस शास्त्र में अभ्रक को पार्वती का रजस् और पारे को शिव का वीर्य माना गया है तथा उनके मिलन को मृत्यु एवं दारिद्र्य का नाशक कहा गया है—

अभ्रकस्तव बीजं तु मम बीजं तु पारदः।
अनयोर्मेलनं देवि मृत्युदारिद्र्यनाशनम् ॥[11]

'काकचण्डेश्वरीतन्त्र', 'रसहृदय' तथा 'धातुमञ्जरी' आदि में पारे के मिश्रणों की सहायता से सोना बनाने की विधियाँ वर्णित हैं। अगस्त्य-प्रणीत 'अमुदकलै-ज्ञानम्' में कृत्रिम तथा वास्तविक सोने का भेद भी संकेतित है। रसशास्त्र में पारे के स्वेदन, मर्दन, मूर्छन, स्थापन, पातन, निरोध, नियम, दीपन, गमन, ग्रासप्रमाण, जारण, पिधान, गर्भद्रुति, बाह्यद्रुति, क्षारण, संराग, सारण तथा क्रामण इन १६ संस्कारों का वर्णन है। रसहृदय, रसार्णव, रसरत्नसमुच्चय तथा रसप्रकाशसुधाकर आदि में रासायनिक द्रव्यों को महारस, उपरस, रत्न तथा विष इन चार वर्गों में बाँटा गया है। धातुओं में प्रायः सात का उल्लेख है—स्वर्ण, रजत अथवा तार, ताम्र, लोह, नाग (सीस), वंग तथा यशद (जस्ता)। पारे के प्रमुख वर्णित मिश्रण हैं—रसकर्पूर, रसपुष्प, रससिन्दूर, कज्जली तथा मकरध्वज। प्रायः धातुओं तथा खनिजों की भस्म बनाकर उन्हें ओषधि के रूप में प्रयुक्त किया जाता रहा है। रसशास्त्रीय प्रक्रियाओं में विविध पौधों का भी उपयोग किया जाता था।

'रसरत्नसमुच्चय' में रसशाला का भी विशद वर्णन है, जिसके अनुसार पूर्व दिशा में रसलिंग, दक्षिण-पूर्व में भट्टियाँ, दक्षिण-पश्चिम में उपकरण, पश्चिम में प्रक्षालनकर्म तथा उत्तर-पश्चिम में शोषण-कर्म होने चाहिएँ। सत्त्व-

पातन तथा सत्त्वशोधन कोष्ठियों अर्थात् भट्टियों में किए जाते थे। ये चार प्रकार की होती थीं—अंगारकोष्ठी, पातालकोष्ठी, गारकोष्ठी तथा मूषाकोष्ठी। भिन्न-भिन्न प्रकार की मूषाओं का भी वणन है—वज्रमूषा, योगमूषा, गारमूषा, वर-मूषा, वर्णमूषा, विडमूषा, वृन्ताकमूषा, गोस्तनीमूषा, मल्लमूषा, पक्वमूषा, गोल-मूषा, महामूषा, मण्डूकमूषा, मुसलमूषा, क्रौञ्चिका आदि। विविध खल्व अर्थात् खरल तथा मर्दक भी उपयोग में आते थे। 'रसरत्नसमुच्चय' में तीन प्रकार के खल्व वर्णित हैं—अर्द्धचन्द्र, वर्तुल तथा तप्त। 'रसरत्नाकर' में अनेक यन्त्रों का भी उल्लेख है—शिलायन्त्र, दोलायन्त्र, अधःपातनयन्त्र, भुवःपातनयन्त्र, पातन-यन्त्र, नियामकयन्त्र, पाषाणयन्त्र, भूधरयन्त्र, वंशयन्त्र, नालिकायन्त्र, गजदन्तयन्त्र, गमनयन्त्र, तुलायन्त्र, कच्छपयन्त्र, चाकीयन्त्र, बालुकायन्त्र, अग्निसोमयन्त्र, गन्धगाहिकयन्त्र, मूषायन्त्र, हण्डिकायन्त्र, कमभाजनयन्त्र, घोणायन्त्र, गुडाभ्रकयन्त्र, नारायणयन्त्र, जालिकायन्त्र तथा चारणयन्त्र। 'रसरत्नसमुच्चय' में दस पुटों का वर्णन है—महा, गज, वाराह, कुक्कुट, कपोल, गोबर, भाण्ड, बालुका, भूधर तथा भावक। इस प्रकार रसशास्त्र से विविध रासायनिक क्रियाओं के प्रचलन का पता चलता है।

धातुकर्म भी इस काल में रासायनिक उद्योग का परिचय देता है। मध्य, पूर्वी तथा दक्षिणी भारत में ताँबे तथा काँसे की मूर्त्तियाँ मिली हैं। मध्यप्रदेश के सीरपुर स्थान के बौद्धविहार के अवशेषों में नवीं से लेकर ग्यारहवीं शती ई० की बुद्ध की अनेक ताम्र-प्रतिमाएँ मिली हैं। बंगाल के धातुकर्मियों की मूर्त्तिनिर्माण-कला ने नेपाल तथा तिब्बत के धातुकर्म को प्रभावित किया। १२वीं शती ई० में रचित सोमेश्वर के 'मानसोल्लास' में मूर्त्तिनिर्माण का विशद वर्णन है।

भारत में कागज़ बनाने की कला नेपाल के माध्यम से चीन से लगभग ११ वीं शती ई० में आई। इससे पूर्व दक्षिण भारत में लेखन तालपत्र पर और काश्मीर तथा उत्तरी भारत में भूर्जपत्र पर होता था। ११वीं शती ई० के बाद कागज़-निर्माण में उत्तरोत्तर विकास एवं प्रगति होती चली गई।

अंगरागों तथा गन्धों का निर्माण भी भारतीय लोगों के रासायनिक ज्ञान का परिचय देता है। भारत में यह उद्योग पर्याप्त उन्नत था और अनेक तकनीक विकसित थीं। इस विषय पर संस्कृत तथा मराठी, कन्नड़ आदि भाषाओं में ग्रन्थ प्राप्य हैं। 'अग्निपुराण' (१० वीं शताब्दी ई०) में सुगन्धित तेलों की विधियाँ वर्णित हैं। वराहमिहिर-कृत 'बृहत्संहिता' में गन्धों आदि का वर्णन है। ११वीं या १२वीं शती ई० में रचित गंगाधर का 'गन्धसार' इस विषय का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसमें अंगराग-निर्माण की छह प्रक्रियाओं का उल्लेख है— भावन, पाचन, बोध, वेध, धूपन तथा वासन। सम्भवतः १४वीं या

१५वीं शती ई० में लिखित 'गन्धवाद' नामक ग्रन्थ में विविध गन्धों के निर्माण की विधियाँ वर्णित हैं।

अग्निचूर्ण अर्थात् बारूद के निर्माण से भी भारत परिचित था। 'शुक्रनीति' में अग्निचूर्ण की विधि वर्णित है। संस्कृत, मराठी, तमिल तथा मलयालम भाषाओं में उपनिबद्ध अनेक ग्रन्थों में बारूद तथा आतिशबाजी के पदार्थों की निर्माण-विधि बताई गई है। संस्कृत में गजपति प्रतापरुद्रदेव (१४९७–१५३९ ई०) -कृत 'कौतुकचिन्तामणि', 'आकाशभैरवकल्प' (१५वीं शती ई०), तथा 'शुक्रनीति' (१६वीं शती ई०); मराठी में एकनाथ-कृत 'रुक्मिणीस्वयंवर' (१६वीं शती ई०) तथा रामदास के ग्रन्थ; तमिल में 'बानशास्त्रम्' तथा 'बोगरसुतिरम्'; तथा मलयालम में नीलकण्ठ-कृत 'बेतिक्कम्पविधि' इस कोटि के प्रमुख ग्रन्थ हैं।

इन विवरणों से प्राचीन भारत के लोगों के विविध रसायनों तथा रासायनिक प्रक्रियाओं और फलतः भारतीय रसायनशास्त्र की प्रगति का पुष्कल परिचय मिल जाता है।

सन्दर्भिका

१. ऋ. : १।८५।९, ८८।५, १६७।३; २।३३।९; ५।५४।१५, ५७।१, ६०।४; ८।७।२७-३२ आदि।
२. अथर्व. : १९।२६।
३. शत. : १३।२।६।८।
४. अथर्व. : २।११।३५, १३।४१, १४।४४, १४।६०; ३।३।८; ५।२।२३ आदि।
५. चर. सं. : १०१।१७, १२५।
६. हितोपदेश प्रस्ताविका, ४१, ४४।
७. वृह. सं. : ४२।८, १०।
८. सुश्रु सं. : ४६।१११।
९. वृह. सं. : ७७।१-१७।
१०. वृहत्संहिता : ५७।१-८।
११. सर्वदर्शनसंग्रह, रसेश्वरदर्शन, ६।

एक भारतीय की गणित को देन

—सुरेश चन्द्र त्यागी
प्रिंसिपल, विज्ञान महाविद्यालय

ईश्वर, प्रकृति और जीव का ज्ञान ही वेदों का ज्ञान है। सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्यों की भलाई तथा ज्ञान के लिए परमपिता परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा ऋषियों द्वारा क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का ज्ञान प्रकाशित कराया। भारतवर्ष के प्राचीन ऋषियों ने आध्यात्मिक शक्तियों द्वारा ईश्वर, प्रकृति और आत्मा का अध्ययन किया, उनकी खोज की। अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा लोक-लोकान्तरों का पता लगाया। मृत्यु के बाद पुनर्जन्म का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इतना ही नहीं ईश्वर और जीव के सम्बन्ध और रूप की खोज की। परमात्मा अनन्त है, उसकी सृष्टि भी अनन्त है। इस सृष्टि का पार न तो वैज्ञानिक ही पा सके और न ऋषि या योगीजन ही। परमेश्वर ने यह सृष्टि और कालचक्र मनुष्य के उपकार के लिए बनाये हैं। वैज्ञानिक पुरुष ईश्वर की अपार महिमा में अपना पराक्रम करके नये-नये आविष्कार करता है। योगी योग के द्वारा और वैज्ञानिक खोज के द्वारा आत्मा, परमात्मा और प्रकृति का युगों से अन्वेषण करते आ रहे हैं। दोनों के उद्देश्य एक ही हैं, परन्तु मार्ग अलग-अलग हैं। एक सृष्टि का काल चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष का निश्चित है। आत्मा की सूक्ष्मता यह है कि एक केश (बाल) लेकर उसके सिरे की गोलाई के ६० भाग किये, फिर एक भाग के ९९ भाग किये, फिर ९९ वें भाग के ६० भाग किये तो उसमें से एक भाग के बराबर आत्मा का परिमाण है।

अर्थात ६०×९९×६०×९९=३, ५२, ८३, ६००। इस प्रकार प्राचीन मुनियों ने आत्मा का साईज जानने का प्रयत्न किया। यह तो रही ऋषि-मुनियों की योग विद्या द्वारा अन्वेषण करने की बात। आईये अब हम प्राचीन समय के एक गणितज्ञ और वैज्ञानिक विद्वान भास्कराचार्य के विषय में भी चर्चा करें। हमारे देश में भास्कर, आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर रामानुजन आदि कई प्रसिद्ध गणितज्ञ हुए हैं जिन्होंने हजारों वर्षों पूर्व गणित के कई उपयोगी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया और जिनके आधार पर भारतीय ज्योतिष विद्या तथा

विज्ञान ने प्रसिद्धि प्राप्त की। इनके द्वारा भारतवर्ष को सारे संसार में गौरव और प्रसिद्धि प्राप्त हुई। जिस प्रकार सर आईजक न्यूटन ने इंगलैंड का नाम रोशन किया उसी प्रकार भास्कर ने भारत का गौरव बढ़ाया। भास्कराचार्य को सम्मान देने हेतु भारत सरकार ने उनके नाम पर भास्कर उपग्रह आकाश में छोड़े जिनसे उपयोगी सूचना मानव को प्राप्त हुई।

भास्कर अपनी योग्यता के कारण भास्कराचार्य नाम से प्रसिद्ध हुए। इनका जन्म दक्षिणी भारत के बीदर प्रदेश में सन् १११४ में हुआ और मृत्यु ११८५ में हुई। यह विद्वान उज्जैन की वेधशाला के डायरेक्टर थे। भास्कर का प्रसिद्ध ग्रन्थ लीलावती है जिसमें उसने अंकगणित, बीजगणित और ज्यामिति के सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया है। भास्कर अपने पूर्वजों द्वारा किये गये अन्वेषणों से परिचित था और उसने अपने ग्रन्थों में उनका आभार माना है। लीलावती का सबसे पहला अंग्रेजी अनुवाद सन् १८१६ में टेलर ने किया था। सन् १५८७ में फैजी ने उसका पहला अनुवाद फारसी में किया था। फैजी नामक विद्वान मुगल सम्राट अकबर के मन्त्री अबुल फजल का भाई था। यह अनुवाद सन् १८२७ में कलकत्ते में छपा था। उस समय में लीलावती उच्चकोटि का ग्रन्थ माना जाता था, जिसकी प्रसिद्धि यूरोप तक फैल गई।

फैजी ने लिखा है कि लीलावती भास्कर की लड़की का नाम था। ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि उसका वैवाहिक जीवन सुखी नहीं रहेगा। अतः उसका विवाह ही नहीं करना चाहिए, परन्तु भास्कर ने उसके विवाह के लिए शुभ मुहूर्त निकाल लिया। भास्कर ने एक कटोरी बनाई जिसके पैंदे में एक छेद कर दिया। छेद इतना छोटा था कि कटोरी को पानी में रखने से कटोरी ठीक एक घन्टे में डूब जाती। शुभ मुहूर्त से ठीक एक घन्टे पहले भास्कर ने कटोरी को पानी के एक बर्तन में डाल दिया। उसने सोचा था कि ज्यों ही कटोरी पानी में डूबेगी ठीक उसी समय वह लीलावती का विवाह कर देगा। किन्तु विधि का विधान अटल है। शुभ मुहूर्त से कुछ देर पहले लीलावती कौतुहलवश कटोरी के जल का निरीक्षण करने लगी। इसी बीच उसकी माला का एक मोती टूटकर कटोरी में जा पड़ा और उससे कटोरी का छिद्र ढक गया। इससे शुभ मुहूर्त बीत गया और लीलावती अविवाहित ही रह गई। पिता ने पुत्री से कहा कि "मैं तुझे वैवाहिक जीवन का सुख तो न दे सका, परन्तु अब मैं तेरे नाम पर एक ऐसी पुस्तक लिखूंगा कि उस पुस्तक से तेरा नाम अमर हो जायेगा"। इस प्रकार उस पुस्तक का नाम लीलावती पड़ा, जो आज तक अमर है।

लीलावती में निम्नलिखित विषयों का समावेश है, जैसे पूर्णांक और

भिन्न, त्रैराशिक, ब्याज, व्यापार, गणित मिश्रण, श्रेढियां, क्रम-संचय मापिकी और-थोड़ा सा बीजगणित ।

भास्कर ने दो अन्य पुस्तकें भी लिखी हैं । वे हैं—१. बीजगणित, २. सिद्धान्त शिरोमणि, जिनके विषय ज्योतिष और गणित हैं ।

भास्कर के बीजगणित में निम्नलिखित प्रकरणों का वर्णन है । जैसे—करणियां, शून्य गणित, सरल समीकरण, वर्ग समीकरण तथा कुट्टक ।

अनिर्णित समीकरणों का अध्ययन आर्यभट्ट से प्रारम्भ हो गया था और उसके पश्चात् के सभी भारतीय गणितज्ञों ने उक्त विषय का विवेचन किया था, किन्तु भास्कर ने इस प्रकरण को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया । भास्कर की विधियाँ बहुत ही स्पष्ट हैं । यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि अनिर्णित समीकरणों का हल समस्त संसार में सबसे पहले निकालने वाले हिन्दू ही थे ।

भास्कर ने ज्यामिति में भी महत्वपूर्ण कार्य किया है । इन्होंने लीलावती के क्षेत्र व्यवहार नामक अध्याय में निम्नलिखित प्रकरणों का वर्णन किया है—

१. समकोण त्रिभुजों का प्रश्न
२. त्रिभुजों और चतुर्भुजों के क्षेत्रफल
३. वृत्तों के क्षेत्रफल और π का ज्ञान
४. गोलों के तल और आयतन

मेरा इस लेख को लिखने का उद्देश्य यही है कि हम जानें कि हमारे पूर्वज कैसे थे और उनसे प्रेरणा प्राप्त करके एक बार फिर हम भी जाग जायें और विज्ञान और गणित आदि में संसार का मार्गदर्शन करें । एक बार फिर दुनियां कह उठे कि—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः
स्वं-स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्याम् सर्वे मानवाः ।

पर्यावरणीय प्रदूषण

— हरिशचन्द्र ग्रोवर
अध्यक्ष, भौतिक विज्ञान विभाग

वर्तमान युग की यह समस्या जो मानव जाति को ही नहीं अपितु समस्त जीवधारियों का अस्तित्व समाप्त करने के लिए अपना भयानक रूप धारण कर हम सभी की ओर तीव्र गति से बढ़ती आ रही है— प्रदूषण की समस्या है। जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि, औद्योगीकरण, पैट्रोल व डीज़ल से चलने वाली गाड़ियों की संख्या में वृद्धि, वृक्षों की कटाई, सीवेज अप्रवाह की उचित व्यवस्था एवं उपचार न होना, रासायनिक उवर्रकों का अत्यधिक प्रयोग आदि अनेकों ऐंसे कारण हैं जो पर्यावरण को प्रत्यक्ष रूप से प्रदूषित कर रहे हैं। पर्यावरण से हमारा तात्पर्य हमारे चारों ओर पाई जाने वाली समस्त वस्तुओं जैसे हवा, जल, पृथ्वी, समुद्र, झील, नदियाँ, तालाबों आदि से है।

प्रदूषण की विस्तृत जानकारी हेतु हम निम्न विषयों पर अध्ययन करेगें।
१—वायु प्रदूषण २—जल प्रदूषण ३—भूमि प्रदूषण ४—ध्वनि प्रदूषण।

१—वायु प्रदूषण

वायु ७८ प्रतिशत नाइट्रोजन, २१ प्रतिशत आक्सीजन तथा १ प्रतिशत कार्बन-डाइ-आक्साइड, कार्बन-मोनो-आक्साइड तथा सल्फर-डाइ-आक्साइड का मिश्रण होना चाहिये। यह बात भी सर्वविदित है कि जीवधारियों को जीवित रहने के लिए आक्सीजन की आवश्यकता होती है तथा जीव के प्रश्वास से निकली वायु कार्बन-डाइ-आक्साइड होती है। अतः जनसंख्या बढ़ने से पर्यावरण में कार्बन-डाइ-आक्साइड की अधिकता, वृक्षों के कटने से, कार्बन-डाइ-आक्साइड के शोषण में कमी, इसी प्रकार कारखानों से निकलने वाली गैसों में कार्बन-डाइ-आक्साइड, कार्बन-मोनो-आक्साइड तथा सल्फर-डाइ-आक्साइड आदि का मिश्रण होता है जिससे कि वायु का संघटन असंतुलित हो जाता है। इसी को वायु प्रदूषण कहते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि वायु प्रदूषण के निम्न मुख्य कारण है।

१—जनसंख्या में वृद्धि।
२—वृक्षों का अत्यधिक कटान।

३—नवीन वृक्षों का न उगाया जाना ।
४—कोयले, डीज़ल को ईंधन के रूप में प्रयोग में लाने से निकलने वाली गैसें ।
५—औद्योगीकरण ।
६—परमाणवीय हथियारों का युद्ध में प्रयोग ।

वायु प्रदूषण के प्रभाव

वायु प्रदूषण का स्वास्थ्य पर अत्यधिक कुप्रभाव पड़ता है । वायु प्रदूषण के कारण निम्न भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं—

१—हृदयाघात ।
२—रक्ताल्पता ।
३—नेत्र व श्वास रोग ।
४—फेफड़ों की आक्सीजन धारण क्षमता में कमी अर्थात् फेफड़ों की बीमारी ।
५—फेफड़ों में सूजन आना ।
६—त्वचा की बीमारी ।
७—कैंसर ।

वायु प्रदूषण पर नियन्त्रण तथा रोकथाम के उपाय

१—उद्योगों से धुँआ निकालने वाली चिमनियों को और अधिक ऊँचा बनाकर वायु प्रदूषण की सान्द्रता को पृथ्वी तल पर कम किया जा सकता है ।
२—कोयला, डीज़ल आदि का प्रयोग ईंधन के रूप में न किया जाये ।
३—बृहद्-उद्योगों से निकलने वाली गैसों को वायुमण्डल में मिलने से पहले शुद्ध किया जाए ।
४—रेलवे, मोटर-गाड़ी तथा बड़े उद्योगों में कोयले या डीज़ल के स्थान पर बिजली का प्रयोग किया जाए ।
५—अधिक वृक्ष उगाये जायें तथा वनों के कटान पर प्रतिबन्ध लगाया जाए ।
६—जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण किया जाए ।

२—जल प्रदूषण

जल प्रदूषण को समाप्त तो नहीं किया जा सकता, लेकिन इसको कम अवश्य किया जा सकता है । जल प्रदूषण को कम करने से पहले हमें यह जानना भी नितान्त आवश्यक है कि इसके मुख्य कारण क्या हैं ? इसके मुख्य कारण निम्न प्रकार हैं—

१—पहाड़ों पर भूमि के कटान के कारण ।
२—औद्योगिक उत्प्रवाहों का समीप के सरिता-सरोवर में गिरना ।

३—कृषि में प्रयोग किये गये रसायन का पानी में मिलकर जल स्रोतों तक पहुँचना।
४—प्रमुख नगरों में मल निकास प्रणाली।

उत्पन्न रोग— हैजा, पेचिश, पोलिया आदि।

जल प्रदूषण पर नियन्त्रण एवं रोकथाम के उपाय

सीवेज तथा औद्योगिक उत्प्रवाहों को नदियों में डालने से पहले उनका शुद्धिकरण होना चाहिये। उत्प्रवाहों की शुद्धि करने के लिए हम निम्न विधियों पर प्रकाश डालेंगे।

उत्प्रवाहों को बूंद-बूंद करके छानने की विधि

इस विधि में उत्प्रवाहों को पत्थरों की घनी शैय्या पर से गुजारते हैं इस प्रकार जीवाणुओं द्वारा कार्बनिक जल का अधिक मात्रा में शोषण हो जाता है तथा पत्थरों से होकर निकलने वाला जल कम प्रदूषिण होता है।

अन्य

१—प्रमुख नगरों में मल निकास प्रणाली को उचित व्यवस्था की जाए।
२—नदियों के जल की गुणता का परीक्षण किया जाए।

३—भूमि प्रदूषण

वह पदार्थ जो भूमि की उत्पादन क्षमता को कम करता है; भूमि प्रदूषक पदार्थ कहलाता है।

भूमि प्रदूषण के मुख्य कारण

१—पेस्टीसाइड एवं बायोसाइड।
२—कृत्रिम खाद।

मुख्य प्रभाव

भूमि प्रदूषक पदार्थ भूमि के आवश्यक जीवाणुओं को मार देते हैं जिससे भूमि पौधों की वृद्धि के लिए विषैली हो जाती है। भूमि कटाव भूमि की उत्पादकता को हानि पहुँचाता है।

भूमि प्रदूषण को समाप्त करना

प्लास्टिक तथा रबर के उत्पादकों को निश्चित स्थान पर ही फैंकना चाहिये क्योंकि ये भूमि को प्रदूषित करते हैं तथा प्रकृति में संतुलन को बिगाड़ते हैं।

४–ध्वनि प्रदूषण

मोटर गाड़ी, वायुयान, रेडियो, ट्रांजिस्टर, टेलीविज़न तथा कारखानों से उत्पन्न अनावश्यक शोर ही ध्वनि प्रदूषण का कारण है।

ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव

१—नसों में तनाव बढ़ना।
२—रक्तचाप।
३—हृदय रोग।

ध्वनि प्रदूषण पर नियन्त्रण

१—मशीनों के आधुनीकरण द्वारा।
२—ध्वनि अवरोधक बनाकर।
३—ध्वनि निरोधक यन्त्रों का उपयोग कर।

भारत का कुल थल–क्षेत्र ३२८ मिलीयन हेक्टेयर है। इसका प्रायः आधा क्षेत्र अर्थात् १५० मिलीयन हेक्टेयर, जल एवं वायु अपरदन लवणता, क्षारता, जल प्लावन आदि के कारण अपकर्ष की विभिन्न स्थितियों में है।

अतः कोई आश्चर्य नहीं कि देश की आधी से अधिक जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे है।

नमक से लाभ एवं क्षति

—रामकुमार पालीवाल
एवम्
—रजनीश दत्त कौशिक
रसायन विभाग

मानव शरीर में ५० से अधिक पाये जाने वाले तत्वों में सोडियम तत्व केवल नमक के रूप में लिया जाता है। शरीर में उपस्थित धनायनों का ६३ प्रतिशत भाग सोडियम आयन होते हैं।

सोडियम कोशिकाओं के बाहर के शारीरिक द्रवों में पाया जाता है। कोशिकाओं के भीतर इसकी मात्रा बहुत कम पाई जाती है। साथ ही क्लोराइड आयन रक्त-प्लाज्मा तथा बाह्य-कोशिका द्रवों में पाया जाता है। सोडियम एवम् क्लोराइड आयन, नमक (अथवा सामान्य लवण या सोडियम क्लोराइड) के रूप में शरीर दिन प्रतिदिन भोजन के साथ ग्रहण करता है। अधिकतर खाद्य पदार्थ कार्बनिक रूप में शरीर द्वारा ग्रहण किये जाते है। परन्तु नमक एकमात्र ऐसा अकार्बनिक यौगिक है जिसे शरीर बिना किसी बदलाव के ग्रहण करता है।

सामान्य लवण, जो गरीब तथा अमीर दोनों वर्गों द्वारा दिन-प्रतिदिन के भोजन में प्रयोग किया जाता है, शरीर के लिए लाभदायक होने के साथ-साथ कुछ अवस्थाओं में नुकसान भी पहुँचा सकता है। नमक को स्टिमलेन्ट के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। प्राचीन काल में अधिकतर ऐसे स्थानों पर बस्तियाँ बसती थीं जहां सोडियम क्लोराइड के स्रोत, यथा समुद्र, सूखे हुए समुद्र एवं झीलें पास होती थीं।

सोडियम क्लोराइड में उपस्थित क्लोराइड आयन (ऋणायन) के कार्यों के बारे में बहुत कम बातें पता हैं। उदाहरण के लिए धनायनों को शरीर में सन्तुलित करता है, परन्तु इसका शरीर में विशिष्ट कार्य अभी तक खोजा नहीं जा सका है। सोडियम क्लोराइड में उपस्थित सोडियम आयन के कारण ही यह विशेष उपयोगिता रखता है। साथ ही शरीर को क्षति भी पहुँचा सकता है।

नमक भोजन को स्वादिष्ट बनाने तथा इसको पकाने में सहायक सिद्ध होने के साथ-साथ शरीर में निम्न विशिष्ट कार्य करता है।

लाभ—

सोडियम क्लोराइड में उपस्थित सोडियम शरीर में अम्ल-क्षार साम्यावस्था, कोशिका - पारगम्यता, सामान्य नर्व इरिटेबिलिटी, जल सन्तुलन, परासरण दाब आदि को बनाये रखने में सहायक है।

अत्यधिक पसीना, उल्टियां, पेचिश, दस्त, अग्नि से जलना आदि के कारण शरीर में नमक की कमी हो जाती है। जिसके कारण सरदर्द, सुस्ती, मांस-पेशियों की कमजोरी, मानसिक व्याधियां, नासिया, ऐनोरोक्सिया (भूख न लगना, या कम लगना) जैसी बीमारियां जन्म लेती है।

शरीर में कोशिकाओं के भीतर पोटाशियम धनायन तथा बाहर सोडियम धनायन काफी मात्रा में होते हैं। साथ ही कोशिकाओं में सोडियम आयन तथा इनके बाहर के द्रव में पोटाशियम आयन कम मात्रा में होते हैं। माँसपेशियों व नर्व्स की कार्यप्रणाली इसी तथ्य पर आधारित है। नर्व-इम्पल्सन होने की स्थिति में पोटाशियम आयन कोशिका के बाहर तथा सोडियम आयन कोशिका के भीतर आने लगते हैं। इसके विपरीत इम्पल्सन की स्थिति में सोडियम आयन कोशिका से बाहर तथा पोटाशियम आयन भीतर ले लिए जाते हैं। यह सब कार्य एक सेकेन्ड के हजारवें भाग समय में हो जाता है। इस कार्य में सोडियम आयनों का योगदान, शरीर में नमक के एक अन्य लाभकारी कार्य को स्वतः स्पष्ट कर देता है।

क्षति—

कम मात्रा में नमक लेने पर यह शरीर से पसीने व मूत्र के साथ निकल जाता है। इस प्रकार पसीना तथा मूत्र नमक की मात्रा को शरीर में नियन्त्रित रखते है। परन्तु अधिक मात्रा में नमक का प्रयोग शरीर क ऊतकों तथा रक्त में इसके रुकाव का कारण बनता है। इससे हाइपरक्लोरोमिया नामक बीमारी हो जाती है। यदि अधिक पसीने के कारण शरीर में नमक की मात्रा में कमी हो जाए तो इपोक्लोरोमिया (डिप्रेशन) हो सकता है। इसी कारण नमक की मात्रा शरीर में कम व अधिक के बीच नियन्त्रित रहनी आवश्यक है।

सोडियम आयन आधिक्य के कारण शरीर की जल को रोकने की क्षमता बढ़ती है जिससे एडीमा बीमारी हो सकती है तथा मरीज़ को नमक कम खाने को कहा जाता है।

अधिक समय तक अधिक मात्रा में सामान्य लवण का सेवन हाइपरटेन्शन का कारण बनता है। सोडियम क्लोराइड कोशिका क्रिया तथा आक्सीजन ग्रहण करने की क्षमता पर भी प्रभाव डालता है। एक स्वस्थ व्यक्ति को १४ दिन तक १५ ग्राम नमक प्रतिदिन देने पर रक्तचाप में वृद्धि, मेटाबोलिक दर में वृद्धि तथा कोशिकाभित्ति में सूजन तथा क्षति देखी जा सकती है। परन्तु २ ग्राम नमक देने पर ऐसा कुछ नहीं होता। अधिक नमक लेने से साल्ट-पायजनिंग होने का खतरा नकारा नहीं जा सकता। इसका पता म्यूकस, जटर रस, मूत्र, अश्रु, ज्वाइन्ट फ्लूडस्, स्पाइरल द्रव तथा रक्त के रासायनिक विश्लेषण से ही लगाया जा सकता है।

सामान्य लवण में सेरोब्रोस्पाइनल द्रव में विसरित होकर, मस्तिष्क की कोशिकाओं में जलन उत्पन्न करता है जिसके फलस्वरूप उत्तेजना, चिड़चिड़ापन तथा पागलपन हो सकता है। यह तभी सम्भव है जबकि नमक को सन्तुलित मात्रा में न लिया जाय।

नमक के अनिष्टकारक उपायों को दूर करने का एकमात्र उपाय है इसको आहार से अलग किया जाय। इसके स्थान पर कार्बनिक रूप में फलों व पत्तियों में उपस्थित नमक का प्रयोग किया जा सकता है। साथ ही मोनोसोडियम अथवा मोनो पोटाशियम ग्लूटेमेट का प्रयोग भी सोडियम क्लोराइड के स्थान पर किया जा सकता है परन्तु यह पदार्थ भी शरीर पर अनिष्टकारक प्रभाव दिखाते हैं।

अतः सामान्य लवण को सन्तुलित मात्रा में लिया जाना ही श्रेयस्कर है। जहां एक तरफ यह हमारे भोजन का आवश्यक भाग है वहीं दूसरी ओर यह शरीर के प्रमुख अंगों व प्रणालियों की स्थाई क्षति का कारण भी बन सकता है।

जिम कौरबेट : एक साधु शिकारी

—बी० डी० जोशी
अध्यक्ष, जन्तु विज्ञान विभाग

प्रकृति कभी-कभी अत्यन्त विशिष्ट गुणों से सम्पन्न व्यक्तियों को भौगोलिक दृष्टि से बहुत दूर अपनी जाति एवं मातृभूमि से इतना दूर लाकर जोड़ देती है कि व्यक्ति अपने जन्म, वंश, धर्म एवं राष्ट्रीयता के छोटे-छोटे आयामों से बहुत ऊपर उठकर प्रायः सम्पूर्ण मानवता की वैशिष्टयता की सुगन्ध सी बनकर पूरी दुनियाँ के हो जाते हैं। जिम कौरबेट (मूलतः एडवर्ड जेम्स कौरबेट) एक ऐसे ही व्यक्ति थे। लाखों अंग्रेज व्यक्तियों ने प्रायः २५० साल तक भारत में शासक वर्ग का प्रतिनिधित्व किया और उनमें से मात्र कुछ लोग ही यहां अमर हो गये। जिम भी ऐसा ही एक व्यक्तित्व थे।

कर्नल एडवर्ड जेम्स कौरबेट का जन्म २५ जुलाई १८७५ को नैनीताल की सुरम्य घाटी के 'अयार पाटा' नामक स्थान में हुआ। उनके पिता श्री क्रिस्टोफर कौरबेट नैनीताल में ही एक पोस्ट मास्टर थे। जब जेम्स कौरबैट मात्र चार वर्ष के ही थे तो उनके पिता का निधन हो गया था। वह अपनी माता की आठवीं सन्तान थे। (उनकी माता श्रीमती मैरी जेन कौरबेट के पहले पति से संताने थीं)। अतः जेम्स का आरम्भिक जीवन निश्चय ही बहुत सुखद नहीं था पर उनके बड़े भाई श्री थौमस कौरबेट ने उनकी शिक्षा और देख-भाल का उत्तर-दायित्व बड़ी निष्ठापूर्वक किया। बचपन से ही जेम्स पर्वतीय पर्यावरण में रम चुके थे। प्रायः साल में ७-८ माह उनका परिवार नैनीताल में रहता और शीत ऋतु में नैनीताल से लगभग १८ कि०मी० दूर 'कालाढूंगी' नामक स्थान में रहता। अतः जेम्स को शैशव काल से ही प्रकृति की सुन्दर रचना ने अपनी गोद में क्रीड़ा करने का स्वर्णिम अवसर प्रदान किया था और जेम्स ने प्रकृति के अंचल की समस्त जैविकता को भली-भांति आतमसात-सा कर लिया था।

दस वर्ष की अल्प आयु में ही उन्होंने अपने स्कूल की फायरिंग प्रतियोगिता जीत ली थी। जेम्स की शिक्षा हाईस्कूल तक ही हो पायी और १७ वर्ष की आयु

में ही उन्होंने वेस्टर्न रेलवे के अन्तर्गत 'मोकामघाट' नामक स्थान पर ईंधन निरीक्षक की नौकरी पा ली और अल्पकाल में ही उन्हें सहायक स्टेशन मास्टर के पद पर प्रोन्नति दे दी गई थी। १९२० में जेम्स ने रेलवे से त्यागपत्र दे दिया।

शिकारी जीवन—

जेम्स (जो अब जिम कौरबेट के नाम से जाने जाने लगे थे) के समय में उत्तराखण्ड घने जंगलों से भरा-पूरा था। साथ ही वन में वन्य जीव-जन्तु भी भरे पड़े थे। प्रायः प्रतिवर्ष यत्र-तत्र कई लोग शेर, बाघ और तेंदुए का शिकार बन जाते। जिन दिनों जिम मोकामघाट में सेवारत थे उन्होंने अपने शिकारी जीवन के सामाजिक मान्यता वाले रूप में प्रवेश किया। हुआ यूं कि १९१७ में जिम को अपने नैनीताल के एक पूर्व पड़ौसी का पत्र मिला जिसमें उनसे निवेदन था कि वह एक आदमखोर बाघ को मारें जिसने उनके पड़ौसी मित्र की १२ वर्षीय लड़की को मार डाला था। जेम्स तुरन्त गये। किसी आदमखोर बाघ से यह उनकी प्रथम मुठभेड़ थी और इसमें वे सफल रहे। हिमालय की तराई की घाटी उन दिनों ऐसे कई आदमखोर बाघों से क्रान्त थी। उनमें सबसे अधिक भयंकर था 'चम्पापत' का बाघ, जिसने नेपाल की तराई में २०० व्यक्तियों को मार डाला था और सन् १९२५ से यह चम्पावत, जिला पिथौरागढ़ (तब जिला अल्मोड़ा) की घाटियों में उत्पात मचा रहा था और प्रायः अगले ४ वर्षों तक उस बाघ का शिकार गरीब लोग होते रहे। सरकारी-तंत्र ने सेना तक को बुला डाला पर कुछ न हो सका। तब हारकर फरवरी १९२९ में जिम को यह गहन दायित्व सौंपा गया। जिम ने यह उत्तरदायित्व लेने से पूर्व तीन शर्तें रखीं—पहली, उस क्षेत्र से सभी पेशेवर शिकारियों को बाहर कर दिया जाय; दूसरी, घोषित ईनाम निरस्त कर दिया जाय और तीसरी, सेना और गुर्खाओं को उस क्षेत्र से बाहर कर दिया जाय। इससे भी सनसनीखेज़ तथ्य यह था कि बाघ को ललचाने के लिए जेम्स स्वयं ग्रामीण स्त्री की वेशभूषा पहने जंगलों में घूमते रहे, क्योंकि गरीब ग्राम्य महिलायें ही आदमखोर का प्रमुख शिकार थीं।

इसी तरह रुद्रप्रयाग के आदमखोर को मारने की घटना भी अत्यन्त रोचक और जिम के परामानवीय साहस का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ है। एसा माना जाता है कि दो विश्वयुद्धों के बीच के लगभग २० वर्ष के अन्तराल में जिम ने लगभग ४००० महिलाओं को आदमखोरों के चंगुल से बचाया।

जिम जंगल के वन्य जन्तुओं के बारे में इतना अधिक और सही-सही जानते थे कि पक्षियों की आवाज और बोलने के अंदाज से ही समझ जाते थे कि पास में अन्य कौन-कौन से जीव हैं, कितनी दूर हैं और किस दिशा में हैं। क्योंकि

पक्षियों की अपनी विशेष आपातकालीन सांकेतिक आवाजें होती हैं। इस सबके वावजूद कि जिम कौरबेट स्वयं बहुत धनी व्यक्ति नहीं थे, उन्होंने सदैव आदमखोरों को मारने के ईनाम लेने से इंकार किया। सामान्य जनता की सेवा करना वह अपना कर्त्तव्य मानते थे।

सन् १९४६ के सितम्बर माह की एक सुबह वह बिना किसी भावुकतापूर्ण प्रदर्शन के भारत छोड़कर केन्या चले गये। वहां उन्होंने पुनः गरीब, त्रस्त एवं साधनहीन जनता के लिए अनेक कार्य किये और अपने जीवन का अंतिम बाघ भी ६० वर्ष से ऊपर की वय में उन्होंने अफ्रीका के जंगलों में ही मारा। १९ अप्रैल १९५५ को केन्या के न्येयरी नामक स्थान पर इस महान शिकारी जिम कौरबेट नें अपनी अंतिम सांस ली। लोगों का कहना है कि उनकी मृत्यु का कारण भी एक आदमखोर द्वारा उनका घायल हो जाना था।

प्रकृति–प्रेमी जिम—

जिम एक कुशल शिकारी तो थे ही, उससे भी अधिक वह एक अत्यन्त संवेदनशील प्रकृति एवं जीव जन्तु प्रेमी मानव थे। वह जन्तुओं के प्रति कठोर और निर्दय व्यवहार के घोर विरोधी थे। कभी भी मात्र आनन्द के लिये उन्होंने शिकार नहीं किया। एक बार जिम अपने कुछ सैनिक अफसर–मित्रों के साथ शिकार पर गये हुये थे तो शिकार की समाप्ति के बाद उन्होंने देखा कि उनकी मित्र मंडली ने सैंकड़ों बत्तखों को, वन-मुर्गियों को यूं ही मार डाला था। जिम बहुत दुःखी हो उठे और उन्होंने तुरन्त ही अपने व्यक्तित्व का प्रभाव इस्तेमाल करते हुये, शिकार के नियमों में महत्वपूर्ण सुधार करवा डाले, जिनमें यह भी शामिल था कि निष्प्रयोजन किसी जंतु को न मारा जाय। उन्होंने इस दिशा में एक आन्दोलन चला डाला था। तत्कालीन भारत सरकार ने उन्हें जंगलों के सम्बन्ध में पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी थी।

पर्यावरण के प्रति वह अत्यन्त भावुक और सजग थे। कहा जाता है कि जब वह रेलवे में ईंधन निरीक्षक थे और जंगलों से लकड़ी के ढ़ेर के ढ़ेर काटकर लाये जाते थे तो जिम को बहुत दुःख होता था। वह वनों के अंधाधुंध कटने के सख्त खिलाफ़ थे। १९०० से लेकर १९४४ तक जिम नैनीताल नगर महापालिका के सदस्य रहे। इस अवधि में जिम ने न केवल शहर की स्वास्थ्य-सेवाओं में अपेक्षित सुधार करवाया अपितु बच्चों की शिक्षा, पर्यावरण सुधार, ग्राम्यांचलों में शिक्षा एवं चिकित्सा सुविधाएं एवं परिवहन जैसी आवश्यकताओं को भी सुव्यवस्थित करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान उन्होंने लेफ्टिनैन्ट-कर्नल की हैसियत से हजारों लोगों को जंगल की गुरिल्ला पद्धति में सैनिक प्रशिक्षण दिया। इससे पूर्व भी १९१४ में जिम ने प्रथम विश्व युद्ध के दौरान सरकार को अपनी सेवाएं दी थीं और ५०० व्यक्तियों की एक 'लेबर फोर्स' को लेकर वह फ्रांस गये थे। उस समय की विषम परिस्थितियों के अन्तर्गत ५०० में से मात्र १ व्यक्ति ही स्वेज नहर में रोग की वजह से काल बना—अन्यथा वह ४९९ व्यक्तियों को सही सलामत वापस लेते आये।

जिम के प्रकृति के जीव-जन्तुओं से पूर्ण समन्वय का एक और दृष्टांत बहुचर्चित रहा है। जब जिम मोकामघाट में सेवा कर रहे थे तो रेलवे के लिये लकड़ी हेतु एक ज़ंगल का अंधाघुंध कटान होने लगा और वन्य-जन्तु भयभीत होकर इधर-उधर भागते फिर रहे थे। ऐसी दशा में एक शाम को जंगल के निकट बने जिम के कैम्प में चार मोरनियां, दो नन्हें बारहसिंगे, एक अजगर और कुछ अन्य शिशु जीव आ घुसे। जिम ने चार दिन तक उनको अभय आश्रय दिया, भोजन-पानी दिया और उन्हीं के साथ रहे। ऐसे साधु थे जिम कौरबेट।

कुशल लेखक एवं छविकार—

रेलवे से मुक्त होने के बाद जिम ने अपना समय लेखन एवं प्रकृति के छायांकन में भी लगाना शुरु किया। सन् १९४६ में जिम की पहली पुस्तक प्रकाशित हुई 'मैन ईटर्स ऑव कुमाऊँ'। यह पुस्तक छपते ही इतनी प्रसिद्ध हुई कि १९५२ तक इसके कई संस्करण विश्व की २० भाषाओं में छप गये। जिम ने छः और पुस्तकें साहित्य को दीं—'द मैन ईटिंग लेपर्ड ऑव रुद्रप्रयाग', 'जंगल लोर', 'द टेम्पल टाइगर', 'माई इण्डिया' और 'ट्री टॉप्स'। 'ट्री टॉप्स' उनकी अन्तिम पुस्तक थी जो उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हूई। इसी प्रकार जिम प्रकृति के एक अत्यन्त कुशल छायाकार भी थे। उनके सैंकड़ों छायाचित्र आज 'नेचुरल हिस्ट्री म्यूजियम ऑव लंदन' एवं 'ब्रिटिश फिलम इन्स्टीट्यूट लंदन' की अमूल्य धरोहर हैं।

एक उदार मानव—

जिम का स्वयं का प्रारम्भिक जीवन संभवतः अत्यन्त विषादपूर्ण परिस्थितियों से आक्रान्त रहा। घर में सौतेले भाई-बहन, पिता का अल्पायु में ही निधन और १७ वर्ष की अल्पायु में ही जन्म-स्थान से काफी दूर सर्विस—यह सब तथ्य इस दिशा की ओर संकेत मात्र करते हैं। पर इन सभी परिस्थितियों ने जिम को एक अत्यन्त सुहृदय एवं संवेदनशील मानव बनने में भी मदद की। जिम जन्म से एक विशुद्ध अंग्रेज ईसाई थे। वह शासक वर्ग के आभिजात्य की गरिमा से

आलोकित थे। पर जिम ने एक विदेशी और विधर्मी होते हुए भी कालाढूंगी और नैनीताल शहर एवं तराई के लोगों के लिये पराधीन भारत में ही जितना कुछ किया, संभवत: कोई भी राष्ट्रीय-स्तर का सक्षम पुरुष आज भी न करे। जिम को अमीरी के आभिजात्य एवं भीड़भाड़ से चिड़ सी थी। गरीब ग्रामवासियों को वह अपने निकट पाते और उनका नमक-चाय का आतिथ्य भी उन्हें अधिक प्रिय था। सैंकड़ों गरीबों को उन्होंने आर्थिक सहायता दी, मकान एवं झोंपड़े बनाने के लिए साधन जुटवाये, पानी की व्यवस्था करवाई, कई गांवों की ग्राम-पंचायतों को रु० ५०० से ५,००० तक की आर्थिक सहायता दी, और यह सब उन्होंने अपनी प्रापर्टी को बेचकर किया। उनकी पुस्तकों की रायल्टी भी आज ब्रिटेन एवं भारत की कई संस्थाओं को अपाहिजों की सहायतार्थ जाती है।

जिम की धर्म और ईश्वर में बहुत आस्था थी। वह पुरानी मान्यताओं और अंधविश्वासों में तो किसी सामान्य भारतीय की तरह ही विश्वास करते थे। शिकार का मौसम आने से पूर्व जिम सदैव एक सांप मारा करते थे। यह उनका अपना एक टोटका-सा था। हिन्दू धर्म के प्रति तो जिम अत्यन्त आदर और श्रद्धा रखते थे। उनके घर पर रामायण, गीता, महाभारत के साथ-साथ बाइबल के विभिन्न संस्करण रखे होते। ज्योतिष पर जिम को बहुत विश्वास था और उन्होंने अपनी जन्मपत्री भी बनवा रक्खी थी। प्रतिवर्ष 'दुर्गा-पूजा' में वह सम्मिलित होते और यथाशक्ति आर्थिक सहायता भी देते।

जिम एक अत्यन्त निष्ठावान मित्र थे – अंग्रेजों के कम, भारतीयों के अधिक। भारत छोड़ने से पूर्व अपने कई निर्धन मित्रों को उन्होंने जीवन में उठने के लिए तरह-तरह से सहायता दी। निर्धन व्यक्तियों के प्रति जिम कौरबेट कितने संवेदनशील थे, इसका पता निम्न दृष्टांत से लगता है।

सन् १९४२ में नैनीताल में नगरपालिका के चेयरमैन का चुनाव होना था। तत्कालीन गवर्नर ने जिम के प्रभाव का उपयोग किन्हीं एक 'रायबहादुर' साहब के लिये करना चाहा। जिम को आमन्त्रित किया गया, तब वह पालिका के एक सक्रिय और प्रभावी सदस्य थे। पर जिम चुपचाप अपने घर लौट गए और महा-महिम को अपना त्यागपत्र भेज दिया। सुनते हैं कि महामहिम ने उनसे पुन: अपने त्यागपत्र पर विचार करने के लिये कहा, पर जिम ने विनम्रतापूर्वक अपना निर्णय न बदला। उनका कहना था कि कोई 'रायसाहब' चेयरमैन बनकर गरीबों के लिये कुछ कर सकेंगे, उन्हें संदेह था।

कालाढूंगी में अपना मकान जिम ने मात्र रु० ६,००० में सेठ श्री चिरंजी लाल शाह को बेचा था, जिसे बाद में श्री शाह ने रु० ५०,००० के दाम पर राज्य

सरकार को बेचा था। वर्तमान में यह मकान 'जिम कौरबेट मेमोरियल' के रूप में एक महान शिकारी के स्मृति-सम्मान में राज्य एवं राष्ट्र की अमूल्य धरोहर है।

जिम की मृत्यु के बाद, सन् १९५७ में भारत सरकार ने ढिकाला में जिम के प्रयत्नों से १९३५ में स्थापित वन्य जन्तु विहार को 'जिम कौरबेट नेशनल पार्क' का नाम देकर—उस महान शिकारी को अपनी श्रद्धांजलि के सुमन समर्पित किये।

'जिम' निश्चय ही एक अत्यन्त मानवतावादी, सहिष्णु, प्रकृतिप्रेमी, महान पुरुष थे। भारतीय भूमि में उनका जन्म होना सम्भवतः ईश्वर की एक अमूल्य भेंट ही थी।

भारत की ४० मिलियन हेक्टेयर भूमि बाढ़ से पीड़ित है। गंगा क्षेत्र में प्रतिवर्ष ८ मिलियन हेक्टेयर भूमि में बाढ़ आती है जिससे २५० करोड़ रुपये की वार्षिक हानि होती है।

क. १९५१ से पूर्व बाढ़ग्रस्त क्षेत्र २५ मिलियन हेक्टेयर था जो आज बढ़कर ४० मिलियन हेक्टेयर हो गया।

ख. १९५२ से देश में जिन बांधों का निर्माण हुआ है उनके लिए ४ लाख हेक्टेयर भूमि से वनों को समाप्त करना पड़ा।

क्या 'क' और 'ख' में कोई सम्बन्ध है ?

हमारे गणितज्ञ

— विजेन्द्र कुमार
प्रवक्ता गणित विभाग
विज्ञान महाविद्यालय

प्रमुख गणितज्ञों के विषय में रोचक घटनाएँ तथा कहानियाँ गणित के इतिहास में पाई जाती हैं। प्रस्तुत लेख में उनमें से कुछ का उल्लेख किया जा रहा है। सबसे पहले भास्कराचार्य जी के जीवन की एक घटना का वर्णन किया जा रहा है।

भास्कराचार्य जी की सुपुत्री थी लीलावती। ज्योतिषियों ने कहा था कि लीलावती का विवाह कभी नहीं होगा। लेकिन भास्कर जी ने गणना से भाग्य-शाली समय की जानकारी की। उस समय विशेष को सूचित करने के लिए एक रिक्त पात्र की तली में एक छिद्र करके जल में तैरा दिया गया। छिद्र से पात्र में जल भरने पर पात्र का जल में डूबना उस भाग्यशाली समय का सूचक था। लीलावती ने उत्सुकतावश पात्र में चढ़ते हुए जल को देखने के लिए पात्र में झांका। तभी लीलावती के आभूषणों में से एक मोती पात्र में गिर गया जिससे पात्र में जल का चढ़ना रुक गया और वह भाग्यशाली समय बिना पात्र के डूबे ही गुजर गया। इस प्रकार लीलावती अविवाहित ही रही। उसके दुःख को कम करने के लिए भास्कर जी ने कहा था कि मैं तुम्हारे नाम से एक ऐसे ग्रन्थ की रचना करूंगा जो गणित की अमर कृति होगी। इस प्रकार लीलावती ग्रन्थ की रचना हुई। भास्कराचार्य जी ने ज्योतिषशास्त्र, अंकगणित, क्षेत्रमिति तथा बीज-गणित में उल्लेखनीय कार्य किया।

× × ×

आर्किमिडीज को अपने समय में गणित का ईश्वर कहा गया है। उनके जीवन की एक घटना इस प्रकार है—

जब उनके देश पर शत्रु ने हमला किया तो उन्होंने बन्दरगाह पर रुके हुए शत्रु-सेना के युद्ध-पोतों को सूर्य की किरणों को एकत्र कर सकने वाले दर्पणों की सहायता से जलाकर नष्ट कर दिया। इस प्रकार शत्रु सेना को पंगु कर दिया।

इन्हीं के जीवन की एक ओर घटना है—आर्किमिडीज ने कहा था कि यदि एक और पृथ्वी हो तो मैं उस पर जाकर इस पृथ्वी को अपने स्थान से हटा सकता हूं अथवा किसी निश्चित बल की सहायता से किसी भार (कितना ही बड़ा) को चलाया जा सकता है। राजा ने इस पर विश्वास नहीं किया। तब आर्किमिडीज ने एक पोत पर इतना सामान रखवाया कि बहुत बड़ी संख्या में व्यक्ति लगाकर भी मुश्किल से ही हिलाया जा सके। लेकिन सबको आश्चर्य-चकित करते हुए साधारण प्रयास से ही आर्किमिडीज ने पोत को रस्सी और घिरनियों के प्रबन्ध की सहायता से इतने अच्छे ढंग से चलाया कि पोत में बैठे व्यक्तियों को प्रतीत हुआ कि जैसे वे यात्रा कर रहे हों।

× × ×

गैलिलियो इटली के प्रमुख गणितज्ञ हुए हैं। इनका जन्म पिसा में फरवरी १८, १५६४ को हुआ था। इनके जीवन में बहुत उतार-चढ़ाव आए थे। इनके पिता ने यह समझकर कि इनमें चिकित्साशास्त्र की प्रतिभा है, चिकित्साशास्त्र का अध्ययन आरम्भ करा दिया था। लेकिन एक घटना ऐसी घटी जिसके कारण इनका चिकित्सा के अध्ययन वाला जीवन परिवर्तित होकर वैज्ञानिक का जीवन बन गया।

हुआ यह कि पिसा के गिरजाघर में रस्सी से एक लैम्प लटका हुआ अपनी मध्य स्थिति के दोनों ओर दोलन कर रहा था। उन्होंने देखा कि दोलन-विस्तार कम होता जा रहा है परन्तु दोलन में लगने वाला समय हर बार उतना ही है। समय की माप उन्होंने नाड़ी की गति से की और यह पाया कि प्रत्येक दोलन में नाड़ी के कम्पन उतने ही होते हैं। इस प्रकार उन्होंने यह बताया कि नाड़ी की कम्पन की गति की दर से रोग का अनुमान लगाया जा सकता है। इसके बाद गैलीलियो ने ज्यामिति का अध्ययन प्रारम्भ किया और अपने कार्य से इतने प्रसिद्ध हुए कि इनके पिताजी ने इन्हें चिकित्साशास्त्र छोड़कर विज्ञान के क्षेत्र में काय करने की अनुमति दी।

× × ×

फ्राँस के प्रसिद्ध गणितज्ञ हुए हैं—एल०'होस्पिटल। आप एक संभ्रान्त परिवार के सदस्य थे। जब ये केवल पन्द्रह वर्ष के थे तब इन्होंने एक स्थान पर एकत्र गणितज्ञों को पास्कल की किसी कठिन समस्या (प्रश्न) के बारे में बातें करते सुना। उन्होंने कहा कि 'मैं सोचता हूं कि मैं इसे हल कर सकता हूं' और उन्होंने कुछ समय पश्चात् उस प्रश्न को हल कर दिया। वह सेना में जाना चाहते थे लेकिन दृष्टि वांछित स्तर की न होने के कारण नहीं जा सके और इस प्रकार गणित के अनुसंधान में कार्यरत हो गये।

× × ×

ब्रिटेन के नेपियर लघुगुणक के जन्मदाता हैं। लघुगुणक की उपयोगिता गणना कार्यों में सर्वविदित है। जिस समय उनका जन्म हुआ था उस समय प्रोटेंस्टटेन्ट और कैथोलिक्स के झगड़े बहुत ज़ोरों पर थे। उन्होंने सेंट जोन्स के बारे में रहस्योद्घाटन करने वाला कोई लेख लिखा जिसके कारण वह जन-सामान्य की कड़ी आलोचना के पात्र बने। लेकिन प्रबुद्ध व्यक्तियों ने उनकी सराहना की। उन्होंने आर्किमिडीज की तरह के शीशे का प्रयोग करने की योजना बनाई जो आग लगाने वाले शीशे कहे जाते थे। वे इतना शक्तिशाली शीशे से आग लगाने का यन्त्र बनाना चाहते थे जो शत्रु के पोत को किसी भी दूरी पर जला सके।

उनकी योजना इस प्रकार का ऐसा विध्वंसक यन्त्र बनाने की थी जो चार सौ मील की परिधि में जमीन से एक फीट की ऊँचाई तक सब जन्तुओं को नष्ट कर सके और चारों ओर विनाश की वर्षा कर सके।

× × ×

न्यूटन गणित और भौतिक विज्ञान में प्रसिद्ध थे साथ ही वह बहुमुखी प्रतिभा के धनी भी थे। उनके बारे में कहानी है कि वे एक बार कुछ दोस्तों को भोज देने वाले थे। वे मेज से पेय की बोतल लाने के लिए उठे लेकिन दुकान तक जाते-जाते वे सब कुछ भूल गये और अपने कमरे में आकर वस्त्र बदले और गिरिजाघर चले गये।

इनके बारे में यह भी कहा जाता है कि एक बार यह घोड़े पर सवार होकर कहीं जा रहे थे। यह अपने घोड़े से उतरे और अर्धचेतन अवस्था में घोड़े के आगे चलते हुए पहाड़ी पर चढ़ने लगे। काफी देर घूमने के बाद उन्होंने पाया कि घोड़ा कब का जा चुका है और वे लगाम पकड़े घूम रहे हैं।

× × ×

अब डी'मोवरीज के बारे में पढ़िए। इनके नाम से त्रिकोणमिति का एक प्रमेय भी है। ये भी ब्रिटेन के विख्यात गणितज्ञ रहे हैं। इनका जन्म मई २६, १६६७ को हुआ था। इनकी मृत्यु के बारे में इस प्रकार की कहानी कही जाती है कि इन्होंने घोषणा की थी यह आवश्यक है कि प्रतिदिन पहले दिन की अपेक्षा पन्द्रह मिनट अधिक सोयें। घोषणा के समय वह छः घण्टे प्रतिदिन सोते थे। यहां से उनका पन्द्रह मिनट प्रतिदिन अधिक सोने का क्रम प्रारम्भ हुआ। इस क्रम में ७३वें दिन कितना सोये—२४ घंटे अर्थात् जगने की स्थिति नहीं आई और दूसरे दिन सोने की बारी आ गई। इस प्रकार वे चिरनिद्रा में सो गए।

× × ×

जीनो नामक एक गणितज्ञ ने तर्क द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया था कि खरगोश कछुए को नहीं पकड़ सकेगा। उनका तर्क 'जीनो का गति सम्बन्धी तर्क' के नाम से प्रसिद्ध है। यह इस प्रकार है—

मान लिया कछुआ खरगोश से प्रारम्भ में एक मील आगे है तथा ये भी मान लिया कि खरगोश की गति कछुए की गति से १० गुनी अधिक है। जितनी देर में खरगोश १ मील की दूरी तय करेगा उतनी देर में कछुआ १/१० मील की दूरी तय कर लेगा। इस प्रकार अब कछुआ खरगोश से १/१० मील आगे होगा। जितनी देर में खरगोश इस १/१० मील की दूरी तय करेगा, कछुआ १/१०० मील आगे बढ़ जायेगा। इस प्रकार कछुआ अब खरगोश से १/१०० मील दूर होगा। इस १/१०० मील को तय करने में खरगोश को जितना समय लगेगा, कछुआ उतनी देर में १/१००० मील चलेगा। इस प्रकार कछुआ खरगोश से १/१००० मील दूर होगा आदि। इस प्रक़ार यद्यपि कछुए और खरगोश की दूरी कम तो होती चली जायगी, लेकिन शून्य नहीं होगी।

× × ×

गणित का ही एक उपविषय क्रमचय और संचय होता है। इसके सूत्रों का सबसे पहले उल्लेख महर्षि सुश्रुत ने अपने चिकित्साशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ सुश्रुत संहिता में किया था। उन्होंने बताया था कि छः रसों में से एक बार में एक, दो अथवा अधिक रस लेकर कुल ६३ संयोग बनते हैं।

इसी प्रकार का नियम संस्कृत के एक विशेषज्ञ पिंगल ने अपनी छंद-सूत्र नामक कृति में दिया है।

खाद्य समस्या में भूमि-क्षरण तथा उसका निवारण

—विक्रम सिंह चौहान
कृषि अधीक्षक

देश की बत्तीस करोड़ हेक्टेयर भूमि पर निवास करने वाले सत्तर करोड़ मनुष्यों को जीवन-दान देने के लिये अन्न जुटाना एक कठिन समस्या बन गई है। इस समस्या का हल दो प्रकार से ही सम्भव है—प्रथम तो बढ़ती हुई जनसंख्या पर रोक लगाकर, जो कठिन ही नहीं, असम्भव-सा है। दूसरे अन्न की प्रति हेक्टेयर उपज वृद्धि करके। अन्न की उपज बढ़ाना कठिन नहीं है।

अन्न की उपज बढ़ाने के लिये उन्नत कृषि-यन्त्रों, स्वस्थ व पुष्ट बीजों एवं प्रचुर मात्रा में उर्वरकों आदि का उचित ढंग से प्रयोग करना जितना आवश्यक है, उससे कहीं आवश्यक भूपि की दशा को स्थिर रखते हुए कृषि योग्य क्षेत्र में वृद्धि करना है। अब प्रश्न उठता है कि कृषि योग्य भूमि को किस प्रकार बढ़िया एवं स्थिर रखा जावे। इसका सरल उत्तर यही हो सकता है कि बेकार पड़ी हुई बीहड़ तथा ऊसर भूमि का वैज्ञानिक विधियों से सुधार करके उसे कृषियोग्य बनाया जावे तथा भूमि में कटाव तथा अन्य विकारों को रोककर भूमि की दशा को स्थिर रक्खा जावे।

देश में कृषि-क्षेत्र को बढ़ाने का प्रयास तो निरन्तर किया जा रहा है परन्तु भूमि में होने वाले कटाव और विकार की ओर विशेष ध्यान न देने के कारण इस कार्य में विशेष सफलता नहीं मिल सकी है। देश में इस समय आठ करोड़ हेक्टेयर भूमि को कटाव से बचाने की आवश्यकता है। इसमें चार करोड़ हेक्टेयर कृषि भूमि, दो करोड़ एकड़ परती तथा दो करोड़ हेक्टेयर बलुई भूमि है। यदि इस भूमि में होने वाले कटाव को रोक दिया जावे तो उपज में ५० प्रतिशत तक वृद्धि सम्भव है।

जिस भूमि पर कृषि होती है, वर्षाकाल में उस भूमि पर किसी भी प्रकार की वनस्पति का ढकाव नहीं होता है। भूमि कटाव के दृष्टिकोण से यह भूमि खतरे से खाली नहीं है। "मिट्टी के कणों का अपने स्थान से हट जाना ही भूमि कटाव है।" प्राकृतिक दशा में मिट्टी के कण इतनी तीव्र गति से अपने स्थान से नहीं हट सकते अर्थात् मिट्टी का अपनी जगह पर ढीला होना तत्पश्चात् अपनी जगह को छोड़कर दूसरे स्थान पर चले जाना ही भूमि कटाव की परिभाषा है।

प्राकृतिक रूप से जो भूमि कटाव होता है और प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देता, वह स्वाभाविक कटाव कहलाता है। इस प्रकार का कटाव तभी होता है जबकि भूमि के ऊपर सर्वदा किसी न किसी वनस्पति का ढकाव रहता है, क्योंकि जितनी मिट्टी ऊपरी सतह से जितने समय में बहती है, उतने ही समय में उसकी कमी नीचे की सतह से पूरी हो जाती है। इस प्रकार के कटाव से भूमि की उर्वरा शक्ति को विशेष हानि नहीं होती।

प्रत्यक्ष रूप से जो भूमि कटाव होता है उसको हम त्वरित अपक्षरण कहते हैं। भूमि को अधिक हानि इसी कटाव से होती है। इस प्रकार के कटाव का उत्तरदायी मानव ही है, क्योंकि मानव का परमधर्म है कि वह इस प्रकार के कटाव को रोके।

भूमि कटाव पानी तथा वायु द्वारा होता है। वायु द्वारा कटाव उन स्थानों पर होता है जहां वर्षा कम होती है। राजस्थान का काफी बड़ा भाग इसका प्रमाण है। उत्तर प्रदेश में आगरा, अलीगढ़, मथुरा आदि अनेक जिले इससे प्रभावित हैं।

वायु की अपेक्षा पानी द्वारा भूमि का कटाव अधिक होता है। जब वर्षा होती है तो मिट्टी के बड़े २ कण छोटे कणों में परिवर्तित होकर वर्षा के बहते पानी के साथ मिलकर बह जाते हैं। पानी द्वारा कटाव की पहली अवस्था को **सतह** कटाव कहते हैं। इस प्रकार के कटाव से भूमि पर कोई चिन्ह नहीं बनते, वरन् भूमि की ऊपरी सतह से बहुत पतली तह पानी के साथ बह जाती है। इस प्रकार के कटाव को सुगमता से नहीं पहचाना जा सकता।

दूसरी अवस्था को **रिल** अथवा **फिंगर इरोजन** कहते हैं। इस प्रकार का कटाव उन खेतों में होता है जिनका ढाल ४ प्रतिशत तक होता है। इस प्रकार के कटाव में भूमि पर छोटी-छोटी बहुत-सी नालियां बन जाती हैं जिनकी गहराई ८ से १० सेन्टीमीटर तक होती हैं। इस प्रकार के कटाव पर भी कृषक ध्यान नहीं देते, जिसका परिणाम यह होता है कि उपज में भारी कमी हो जाती है।

धीरे-धीरे इन नालियों का विस्तार हो जाता है और बड़ी-बड़ी नालियां बन जाती हैं जिसको हम **गुली इरोजन** कहते हैं। इस प्रकार का कटाव सभी कटावों की अपेक्षा अधिक स्थान घेरता है क्योंकि गुली कटाव विशेष रूप से उसी स्थान पर पाया जाता है जहां पर पानी अधिक मात्रा में अधिक तेजी से बहता है। गुली की गहराई तथा चौड़ाई आदि भूमि की किस्म व ढाल पर निर्भर करती है।

भूमि कटाव से हानियां

१. भूमि की उर्वरा शक्ति नष्ट हो जाती है।

२. भूमि की समतलता नष्ट हो जाती है।

३. भूमि छोटे-छोटे भागों में विभक्त हो जाती है, जिससे कृषि करने में कठिनाई होती है।

४. भूमि की पानी सोखने तथा जल धारण करने की क्षमता नष्ट हो जाती है।

५. भूमि के छोटे-छोटे कण जो पौधों के लिये उपयोगी हैं, नष्ट हो जाते हैं।

६. मिट्टी के कण खेत से बहकर नदियों को उथला कर देते हैं जिससे बाढ़ आ जाती है।

७. भूमि में उचित वायु का संचार न होने के कारण कृषि के लाभप्रद कीटाणुओं की कार्यक्षमता कम हो जाती है।

भूमि कटाव के मुख्य निम्न पाँच कारण हैं—

१. भूमि की दशा—यदि भूमि हल्की अर्थात् बलुई है और उसमें जीवांश नहीं हैं तो कटाव अधिक होगा। इसके विपरीत यदि भूमि भारी अर्थात् मटियार है और उसमें जीवांश नहीं हैं तो उसमें कटाव बलुई की अपेक्षा कम होगा, और यदि भूमि दुमट है तथा जीवांश उपस्थित हैं तो कटाव बहुत ही कम होगा। क्योंकि भूमि में जीवांश की उपस्थिति से उसकी जलधारण क्षमता अधिक हो जाती है जिससे भूमि कटाव नहीं होता।

२. वर्षा की गति—यदि कम समय में वर्षा अधिक होती है तो भूमि के ऊपर पानी की मात्रा एकदम बढ़ जाती है जिससे भूमि उस पानी को पूरी तरह सोख नहीं पाती। अतः पानी बहने लगता है जिससे भूमि कटाव अधिक होता है, क्योंकि अधिक मात्रा में पानी के बहने से मिट्टी के कण अधिक मात्रा में पानी के साथ बह जाते हैं। इसके विपरीत यदि अधिक समय में कम वर्षा होती है तो

भूमि को वर्षा का जल सोखने में पर्याप्त समय मिल जाता है, जिससे भूमि की सतह पर बहने वाले पानी को मात्रा बहुत कम हो जाती है और मिट्टी बहुत कम कटती है।

३. ढाल प्रतिशत—भूमि का ढाल जितना कम होगा, भूमि का कटाव भी कम होगा। ढाल अधिक होने पर कटाव भी अधिक होगा। गणित-शास्त्रियों का मत है कि यदि भूमि का ढाल दोगुना कर दिया जाये तो पानी का बहाव चार गुना हो जाता है। उसमें मिट्टी काटने की शक्ति आठ गुनी तथा मिट्टी को बहाने की शक्ति बत्तीस गुनी हो जाती है जिससे पानी चौंसठ गुने मिट्टी के कण अपने साथ बहाकर ले जा सकता है।

४. वनस्पति आवरण—भूमि को नंगा रखने अर्थात् वनस्पति रहित रखने से वायु तथा वर्षा की बूंदों का आघात सीधे रूप से मिट्टी के कणों पर ही पड़ता है, जिससे मिट्टी के कण अपने स्थान को छोड़ देते हैं। इसके साथ ही साथ नंगी भूमि पर पानी बहने से मिट्टी कटाव को अधिक गति मिलती है। वनस्पति आवरण पानी को रोकता है।

५. कृषि-क्रिया—खेत की जुताई, बीज की बुआई एवं गुड़ाई भूमि के ढाल के अनुकूल करने से तथा गलत समय पर जुताई करने से मिट्टी का कटाव अधिक होता है। यदि जुते हुए खेत को वर्षा के समय खुला छोड़ दिया जाये अथवा तेज व शुष्क हवाओं के समय खेत को बारीक जोता जावे तो मिट्टी का कटाव अधिक होगा।

उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त गलत फसल चक्र, भूमि में जीवांश की कमी, भूमि की बनावट व सजावट एवं जीव-जन्तुओं के कारण भी भूमि कटाव होता है।

भूमि कटाव को रोकने के उपाय

भूमि क्षरण अधिकांशतः वर्षा ऋतु में वर्षा के पानी से होता है। इस समय यदि भूमि कटाव को रोका जावे और वर्षा के पानी की मात्रा को भूमि अधिक मात्रा में सोख ले तो निश्चय ही उपज में भारी वृद्धि होगी। भूमि क्षरण के निराकरण के लिए निम्न साधन लाभकारी हैं—

१. वनस्पति द्वारा—प्राकृतिक दशा में भूमि पर घास आदि का कुछ न कुछ ढकाव रहता है। परन्तु अन्न उत्पन्न करने के लिए इस ढकाव को हटाकर

फसलें बोई जानी चाहियें। वर्षाकाल में ऐसी फसलें बोयें जो पृथ्वी को ढके रखें। जैसे मूंग, उड़द, लोभिया, मूंगफली, सोयाबीन आदि। जिन स्थानों पर कृषि नहीं हो सकती वहां पर दीर्घकालीन घासें उगायें जैसे—पारा घास, नैपियर घास, बांसी घास, ज्वाइण्ट स्टार आदि। जिस भूमि का ढाल ४ प्रतिशत से अधिक हो वहां घास के साथ-साथ वन लगाने चाहिए। नदी-नालों वाली भूमि में चराई बिल्कुल बन्द कर दी जाये तथा चरागाह में उन्नत किस्म की घासें उगाकर नियमित चराई की जाये। पशुओं को घास काटकर खिलाना भी भूमि संरक्षण में सहायक सिद्ध हुआ है। इस प्रकार की भूमि पर वनस्पति उगाने से निम्न लाभ हैं—

(अ) वर्षा की बूंदों से मिट्टी के बड़े कण छोटे-छोटे कणों में विभक्त नहीं होते।

(व) फसलों की जड़ें मिट्टी के कणों को जकड़े रहती हैं।

(स) फसलों की पत्तियां मेंढ का काम करती हैं।

(द) फसलों की जड़ों द्वारा भूमि को जीवांश पदार्थ प्राप्त होता है।

२. **कृषि द्वारा**—इसमें सन्देह नहीं कि वनस्पति लगाने से भूमि की रक्षा पूर्ण रूप से हो सकती है, परन्तु समस्त भूमि में केवल घास उगाकर ही निर्वाह नहीं हो सकता है। क्योंकि मनुष्य को खाने को अन्न, पहनने को वस्त्र तथा अन्य अनेक वस्तुओं की आवश्यकता होती है। अतः कृषि करना तो नितान्त आवश्यक है। इसके लिए फसलों को इस प्रकार उगाना चाहिये कि उपज के साथ-साथ भूमि की रक्षा भी हो सके। इसके लिए समोच्च रेखाओं पर कृषि करना चाहिये। समोच्च रेखा वह कल्पित रेखा है जिस पर स्थित प्रत्येक बिन्दु की ऊंचाई समुद्र-तल से समान हो। इस प्रकार से खेती करने पर भूमि की रक्षा तो होती ही है साथ ही साथ उपज में भी भारी वृद्धि होती है।

३. **यान्त्रिक साधन**—यान्त्रिक साधनों के प्रयोग ये यह लाभ होता है कि जिन स्थानों पर यह प्रयोग होते हैं उनके ऊपर की ओर पानी ठहरने से सिल्टिंग होने के साथ-साथ पानी भी अधिक समय तक ठहरा रहता है, जिससे उसका समाहरण भूमि में भली-भांति हो जाता है। इस प्रकार पानी भूमि का कटाव नहीं करने पाता।

मुख्य यान्त्रिक साधन निम्न हैं—

(अ) **मेंढबन्दी**—इसमें खेत के ढाल के विपरीत तथा मिट्टी की किस्म के अनुसार खेत में छोटे-छोटे बांध बना दिये जाते हैं।

(ब) टरेसिंग—पहाड़ी क्षेत्रों में जहां कि भूमि का ढाल अधिक होता है, वहां पर सीढ़ीनुमा खेत बनाकर ढाल को कम कर देते हैं जिससे पानी के बहाव में कमी आ जाती है और भूमि का कटाव कम हो जाता है।

वर्तमान समय में जबकि हम खाद्य समस्या के भयंकर रोग से पीड़ित हैं और खाद्य-वस्तुओं का मूल्य निरन्तर वृद्धि पर है, यह आवश्यक है कि उत्पादन बढ़ाने के लिए हर स्तर पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए सभी सम्भव प्रयत्न किये जायें। भूमि संरक्षण भी इस समस्या का एक ऐसा पहलू है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

---

१३० मिलीयन टन खाद्यान पैदा करने में भूमि से लगभग १८ मिलीयन टन खनिज लवण (पोषक तत्व) दिये जाते हैं।

उर्वरक और जैव स्रोतों द्वारा भूमि को १०.३ मिलीयन टन खनिज लवण (पोषक तत्व) दिये जाते हैं।

इस प्रकार भूमि बैंक को ९–७ मिलियन टन खनिज लवण का घाटा रहता है। क्या इस प्रकार ओवर ड्राफ्ट से कोई भी बैंक दिवालिया नहीं हो जाएगा ? साथ ही हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि 'अपरदन' द्वारा भूमि प्रतिवर्ष ८.४ मिलियन टन पोषक तत्व खो रही है।

ऊर्जा के नए आयाम

—रामकुमार पालीवाल
अध्यक्ष, रसायन विभाग

मानव का जैसे-जैसे विकास हुआ है वैसे-वैसे वह ऊर्जा के नए-नए स्रोतों को खोजने में लगा। प्राचीन काल में पवन-चक्कियों का प्रयोग होता था। इसके अतिरिक्त आज भी पहाड़ों पर बसे गांवों में पन-चक्की (जो पानी से चलती हैं) का प्रयोग हो रहा है।

जैसे-जैसे विश्व की जनसंख्या बढ़ रही है, वैसे-वैसे हमारी आवश्यकताएं भी दिन-प्रतिदिन बढ़ रही हैं और आज के यांत्रिक युग में, यंत्रों के संचालन हेतु हमें निरन्तर ऊर्जा की आवश्यकता है।

ऊर्जा का मनुष्य ने विभिन्न स्रोतों से दोहन किया, जैसे-विद्युत ऊष्मा, परमाणु ऊर्जा, डीजल-पैट्रोल आदि। किस देश में कौन-सा ऊर्जा का सस्ता एवं मुख्य स्रोत हो, यह वहां की भोगौलिक स्थिति पर निर्भर करता है। भारत-वर्ष में नदियां बहुतायत से हैं। जिन पर बाँध बनाकर तथा नहरें निकाल कर एक ओर जहां हम बाढ़ को नियन्त्रित कर सकते हैं, वहां दूसरी ओर नहरों द्वारा सिंचाई करके हम अनाज के उत्पादन में वृद्धि भी कर सकते हैं और साथ-साथ विद्युत उत्पादन भी कर सकते हैं। इस ओर हमारे देश में बहुत सक्रिय कार्य हुआ है और अब भी हो रहा है। इसके अतिरिक्त ताप विद्युत गृहों का भी निर्माण हो रहा है जिसमें कोयला ईंधन का कार्य करता है।

परमाणु ऊर्जा इस समय सभी विकसित देशों में ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है। भारत भी इस ओर प्रगति के चरण पर है किन्तु इसकी तकनीकी एक ओर बहुत महंगी है तो दूसरी ओर बहुत जटिल भी। इसके बावजूद भारत में इस दिशा में सतत सफल प्रयास हो रहे हैं तथा वह दिन दूर नहीं जब हम परमाणु ऊर्जा में आत्मनिर्भर हो जायेंगे।

इन सबके अतिरिक्त ऊर्जा का जो सबसे प्रमुख और महत्वपूर्ण अंग है वह पैट्रोल-डीज़ल है। जिसके ऊपर विश्व का समस्त परिवहन निर्भर है। हमारे

देश में जितने खनिज तेल की आवश्यकता है उसका अधिकांश भाग हमें दूसरे प्रमुख तेल उत्पादक देशों से आयात करना पड़ता है। इस कारण विदेशी मुद्रा में निरन्तर कमी आ रही है और मंहगाई भी बढ़ रही है। हम यदि अपनी आवश्यकता स्वयं ही पूरी करने लगे तो भारत सहज ही एक सम्पन्न देश हो जायेगा। इसके लिए हम समुद्र की सतह में बोरिंग करके तेल भी निकाल रहे हैं।

भारत में कोयला प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। यदि हम विभिन्न रासायनिक क्रियाओं के द्वारा कोयले से तेल बना सकें तो भारत में तेल की कमी को पूरा किया जा सकता है और हम तेल के लिए आत्मनिर्भर हो सकते हैं।

सन् १९५५ में अपने देश में एक हाई-पावर कमेटी का गठन हुआ था, जिसमें कोयले को सीधे तेल में बदलने की प्रोद्यौगिकी पर गहन विचार-विमर्श हुआ था। किन्तु उस कमेटी की रिपोर्ट पर ऊर्जा मंत्रालय के १९८१ में स्थापित होने पर ही विचार हो सका। विश्व के अनेक देशों में जिनमें पश्चिम जर्मनी, आस्ट्रेलिया, जापान, ब्रिटेन, कनाडा तथा अमेरिका प्रमुख हैं। इन देशों ने बाकायदा कोयले से तेल निकालना आरम्भ कर दिया है।

फ्रांस के डॉ० जे०आर० फ्रिश ने विश्व ऊर्जा सम्मेलन में वताया था कि सन् २०२० तक विश्व में ऊर्जा का उत्पादन ढाई गुना बढ़ जायेगा। फिर भी विकसित देशों तथा तीसरी दुनिया के देशों के बीच ऊर्जा की प्रति व्यक्ति खपत में खाई बनी रहेगी। उनका कहना है कि ऊर्जा की खपत में एक ओर परमाणु बिजली का इस्तेमाल बढ़ेगा तो दूसरी ओर कोयले का भी अधिक उपयोग होगा। पैट्रोल का उपयोग आज के ९० प्रतिशत से घटकर २०२० तक ५० प्रतिशत ही रह जायेगा।

कोयले के पक्ष में सबसे प्रमुख बात यह है कि इतने वर्षों से निरन्तर खपत के बावजूद भी धरती की कोख में कोयले का इतना भण्डार भरा पड़ा है कि अगले २५० वर्षों तक वह आसानी से चल सकता है। जबकि तेल के भण्डार अगले २५ साल तक भी चल जायें तो गनीमत है। कोयले को पैट्रोल में बदलने से प्रदूषण की समस्या भी बहुत कम हो जाती है और साथ ही उसके उपयोग की संभावनाएं भी बहुत व्यापक हो जाती हैं। अतः इस पर हम विस्तार से विचार करते हैं।

प्रकृति, भूमि में कोयले से ही पैट्रोल बना लेती है। सूर्य सम्पूर्ण ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है। सूर्य द्वारा प्रदत्त यह ऊर्जा वनस्पति में संचित है। करोड़ों वर्ष

पहले सारी धरती पर जंगल ही जंगल थे। ये जंगल जमीन में दब गये और इससे ही कालान्तर में कोयला, गैस और पैट्रोल बना। प्रकृति को कोयले से पैट्रोल बनाने में लाखों वर्ष लगते हैं। जबकि कारखानों में यह क्रिया बहुत ही कम समय में पूरी कर ली जाती है। इस दिशा में पहली महत्वपूर्ण प्रणाली जर्मनी के बर्गिज ने १९१३ में खोजी थी। कुल मिलाकर अभी चार प्रणालियां उपलब्ध हैं। जिनके द्वारा कोयले को पैट्रोल में बदला जा सकता है। इनमें से एक उच्च तापमान पर दूसरी कम तापमान पर कार्बनोकरण के द्वारा तेल बनाती है।

इन सबसे अलग प्रणाली फिशर-ट्रोप्श्च की है। जो इन दोनों आविष्कारकों ने १९२३ में खोजी थी। इसमें पहले कोयले को हाइड्रोजन और कार्बन मोनो आक्साइड गैसों के मिश्रण 'सिनगैस' में बदलते है। इसके बाद विशिष्ट उत्प्रेरक रसायनों के उपयोग में विभिन्न प्रकार के हाइड्रो-कार्बन उत्पाद बनाये जाते हैं। जिनमें मुख्य हैं, गैसोलीन और डीज़ल।

उपरोक्त विधि से द्वितीय महायुद्ध के समय तक जर्मनी, फ्रांस, जापान और मंचूरिया में कोयले से पैट्रोल बनाया गया और दक्षिण अफ्रीका ने पश्चिम जर्मनी और अमेरिका की सहायता से फिशर-ट्रोप्श्च प्रणाली में आगे सुधार करके कोयले से पैट्रोल बनाना जारी रखा। इन संयंत्रों में एक ओर कोयला भरते हैं जो विविध चरणों से गुजरने के बाद अन्तिम चरण में ७०% पैट्रोलियम उत्पाद मिलते हैं, ७% विविध गैसें होती हैं, ३ से ४% डीजल मिलता है और ३% मोमिया तेल के अतिरिक्त १३ प्रतिशत आक्सीजनयुक्त रसायन होते हैं। इस प्रणाली में ठोस मोम कतई नहीं बनता है।

भारत में सन् १९५६ में एक और समिति बनी जिसने इसी फिशर-ट्रोप्श्च प्रणाली को अपनाने की सिफारिश की। बिहार, बंगाल में कोयला प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। अतः किसी उपयुक्त इलाके में १० लाख टन प्रतिवर्ष की क्षमता वाले कोयले से पैट्रोल निर्माण करने वाला संयंत्र लगाना चाहिए। फिलहाल इतना जरूर है कि इसी समिति की एक और सिफारिश को सरकार ने मान लिया है जिसमें नीचे तापमान (६००° सैल्सियस) की तकनीक अपनाकर धुंआरहित कोयले के उत्पादन के लिए देश के विभिन्न क्षेत्रों में संयंत्र लगाये गये हैं जैसे तमिलनाडु के नमेवेली क्षेत्र में लिग्नाइट का कार्बनीकरण करके जलाने योग्य बनाये जाते है। आंध्रप्रदेश के रामकृष्णपुर में विट्टमिनी कोयले का प्रयोग किया जाता है। कलकत्ता के पास दांकुनि में "ज्वाला" नाम से धुंआरहित कोयला बड़े पैमाने पर बनाया जाता है।

उन कारखानों में कार्बनीकरण से कोलतार बनता है। जिससे फिर आगे विविध चरणों से गुजारकर उच्च दाब पर हाइड्रोजनीकरण द्वारा मोटर-गाड़ियों को चलाने योग्य पैट्रोल और डीज़ल वगैरह तैयार किये जाते हैं।

इनके अतिरिक्त आज का वैज्ञानिक समुद्र की लहरों से उत्पन्न हुई असीम ऊर्जा को प्रयोग करने की दिशा में सतत प्रयत्नशील है और सूर्य द्वारा सौर्य ऊर्जा, जिसका भण्डार अथाह है, को भी प्रयोग करने में विभिन्न प्रकार के उपकरण बनाने में व्यस्त हैं। सोलर बैटरियां, सोलर चूल्हों का सफल निर्माण एवं उनका उपयोग भी आरम्भ हो चुका है। अतः आगे आने वाले युग में मनुष्य के लिए ऊर्जा के ये दो नए प्रकृति के स्रोत अमूल्य निधि होंगे।

बाढ़ग्रस्त क्षेत्र की वृद्धि के निम्नलिखित मुख्य कारण हैं।

१—जंगलों का बेहिसाब कटान। २—भूमि पर उगी वनस्पतियों का विनाश।

२—भूमि संरक्षण की कमी।

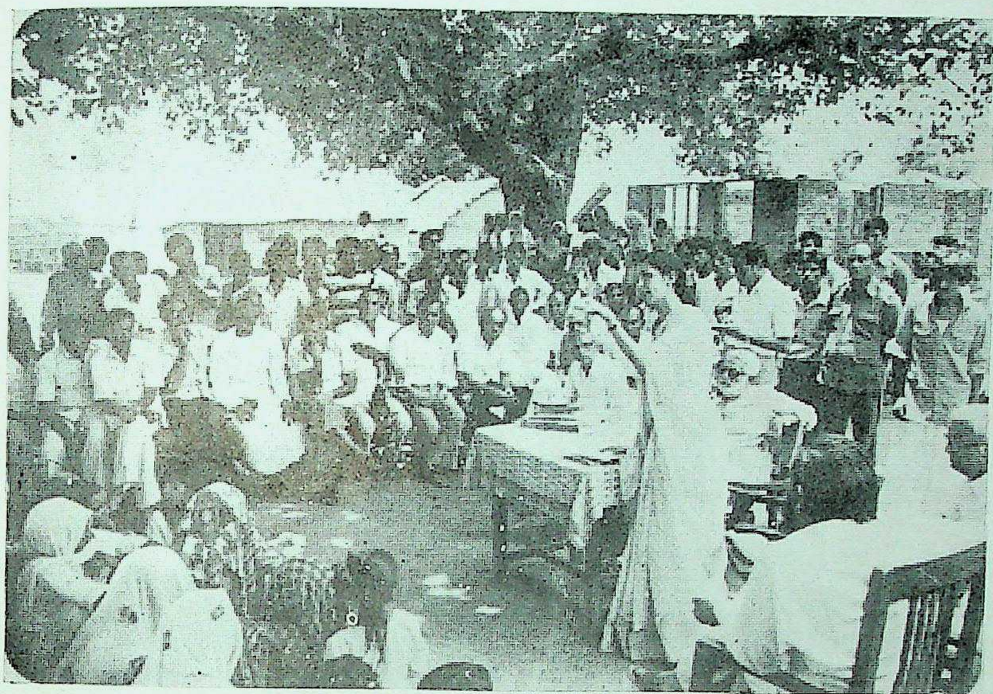
समस्या का समाधान—

१–वृक्षारोपण।

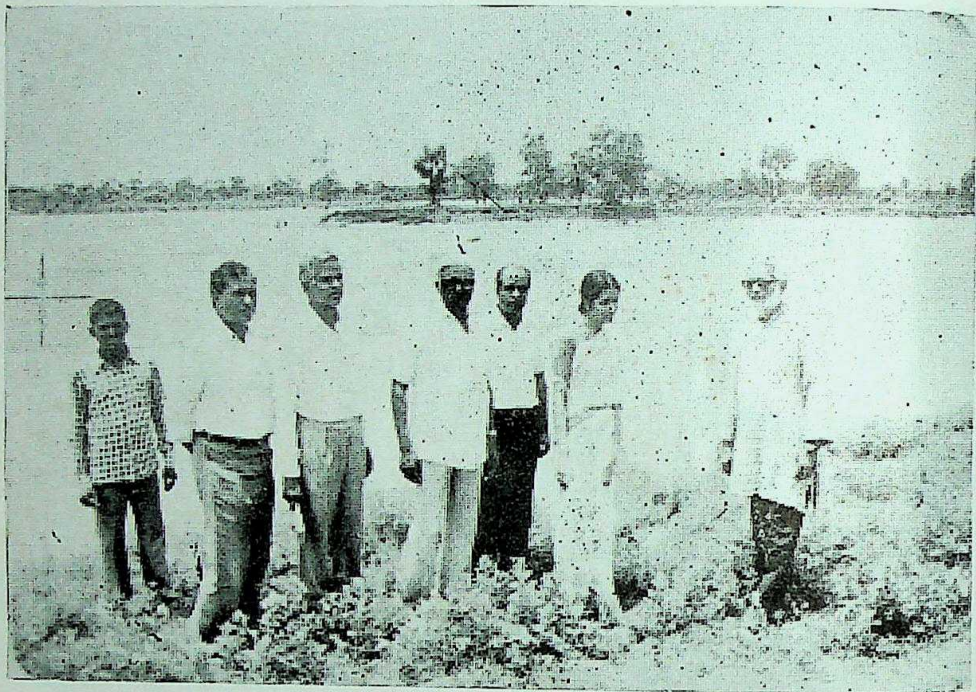
२–भूमि की जल–शोषण क्षमता में वृद्धि करना।

३–भूमि पर वनस्पतियों का घना आवरण बनाये रखना।

४–सीमित चारण (चरायी)।



कु० ए०के० अहूजा, आइ०ए०एस०, सेक्रेटरी मिनिस्ट्री ऑव रुरल डेवेलेपमेन्ट एण्ड रिकन्सट्रक्शन, भारत सरकार कांगड़ी ग्राम में एक सभा को सम्बोधित करते हुए। श्री जी०बी०के० हूजा, कुलपति जिन्होंने सभा की अध्यक्षता की उनके दाहिनी ओर बैठे हुए हैं। कुलपति जी के दाहिनी ओर डॉ० विजय शंकर, निदेशक कांगड़ी ग्राम सुधार योजना और उनके दाहिनी ओर श्री वीरेन्द्र अरोरा कुलसचिव बैठे हैं। कु० अहूजा के आने से ग्राम की महिलाओं में भी जागृति की लहर दौड़ी। वें पहली बार घरों से निकल कर सभा में सम्मिलित होने आईं।



कांगड़ी ग्राम में चल रहे अनेक विकास कार्यक्रमों का अवलोकन करने के पश्चात् कु० अहूजा ग्राम में ही गंगा के पावन तट पर। कुलपति जी एवं अन्य जन भी उनके साथ गंगा के तट पर गये। यहां कु० अहूजा ने भूमि कटाव रोकने के लिये वृक्षारोपण भी किया।

कांगड़ी ग्राम विकास योजना

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

निदेशक — डॉ० विजयशंकर

कांगड़ी ग्राम—प्रगति के पथ

१९८१ से जब से विश्वविद्यालय ने कांगड़ी ग्राम विकास कार्यों को अपने हाथ में लिया है, अब तक ग्राम में अनेक सामाजिक-आर्थिक-शैक्षणिक-भवन निर्माण एवं पर्यावरण सम्बन्धी कार्यक्रम सम्पन्न हुए हैं। इन सभी कार्यक्रमों में जहां मान्य कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा, आई०ए०एस० (अवकाश प्राप्त) प्रेरणा के स्रोत रहे हैं, वहां बिजनौर के जिलाधिकारी एवं इनके विकास विभाग के अधिकारियों तथा भारतीय स्टेट बैंक, ज्वालापुर के अधिकारियों ने इस ग्राम के विकास-कार्य में अत्यन्त रुचि ली है और महत्वपूर्ण योगदान किया है। पिछले तीन वर्षों में जो विभिन्न विकास कार्यक्रम ग्राम में सम्पन्न हुए हैं, वे निम्न प्रकार हैं :

१. सड़क निर्माण—

मुख्य सड़क (हरिद्वार-बिजनौर) से गांव को जोड़ती हुई एवं ग्राम में होती हुई गंगा के तट तक एक किलोमीटर लम्बी सड़क का निर्माण।

२. निर्बल वर्ग आवास—

पांच निर्बल वर्ग आवास का निर्माण हुआ। इनके लिए प्रति आवास १९९७ रु० का अनुदान दिया गया।

३. हरिजन पेय-जल कूप—

एक हरिजन पेय-जल कूप का निर्माण हुआ।

४. बायो गैस—

दो ग्रामवासियों ने दो बायो गैस प्लाण्ट लगाये।

५. शौचालय—

सी०बी०आर०आई० रुड़की ने एक मॉडल शौचालय विद्यालय परिसर में बनवाया। जिससे ग्रामवासी इस प्रकार के शौचालय अपने निवास में बनवाने के लिए प्रेरित हों।

६. दुकानें—

हरिजनों के लिए चार दुकानों का निर्माण हुआ जिनमें इस समय क्रमशः कपड़े, परचून, नाई तथा कपड़ा सिलाई का कार्य चल रहा है।

७. जन-मिलन केन्द्र—

विद्यालय के समीप ही जन-मिलन केन्द्र का निर्माण चल रहा है।

८. गोवर्धन शास्त्री स्मृति पुस्तकालय—

यह पुस्तकालय मान्य कुलपति जी के पूज्य पिताजी श्री गोवर्धन शास्त्रीजी जो स्वामी श्रद्धानन्द जी के समय में विद्यालय के हैडमास्टर थे, की स्मृति में वर्ष १९८१ में खोला गया। इसका उद्घाटन विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी ने किया।

९. प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र—

विश्वविद्यालय ने ग्राम में एक प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र स्थापित किया। प्रयास यह है कि ग्राम में कोई भी व्यक्ति अशिक्षित न रहे।

१०. पर्यावरण कार्यक्रम—

गंगा और सिद्ध स्रोत से होने वाले भूमि-कटाव को रोकने के लिए उपयुक्त वनस्पतियों के रोपण का कार्यक्रम बनाया गया। ये कार्यक्रम अन्य ग्रामों, जैसे—जगजीतपुर, गाजीवाली, पीली आदि में भी गंगा समन्वित योजना (भारत सरकार पर्यावरण विभाग) गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की ओर से डॉ० विजय शंकर के निर्देशन में चलाया जा रहा है। ग्राम में एक पर्यावरण गोष्ठी तथा प्रदर्शनी का कार्यक्रम भी वर्ष १९८३ में किया गया।

११. वृक्षारोपण—

डेढ़ एकड़ भूमि में यूकेलिप्टस के पौधे लगाये गये। खेतों के बीच सूबबूल आदि के वृक्ष लगाने की ग्रामीणों को प्रेरणा दी गई।

१२. सब्जी की खेती—

१९८१ से पूर्व ग्राम में सब्जी की खेती उद्योग के रूप में नहीं होती थी। कांगड़ी ग्राम विकास योजना के निदेशक ने ग्रामवासियों को सब्जी की खेती करने के लिये प्रेरित किया। यह ग्राम हरिद्वार शहर के निकट पड़ता है, जहां सब्जी पूरे वर्ष मंहगी रहती है। जिन ग्रामीणों ने इस कार्यक्रम को अपनाया, उन्हें प्रति एकड़ ३६०० रु० प्रतिवर्ष आय में वृद्धि हुई।

१३. ऋण सुविधा—

प्रारम्भ में ग्रामवासी रोजगार के लिये ऋण लेने को उद्यत नहीं होते थे। जब उन्हें इसके लाभ बताए गए तब धीरे-धीरे ग्रामवासी आगे आये और अब तक ग्राम के एक-तिहाई परिवारों ने ऋण-सुविधा का लाभ उठाया है। जिन अनेक रोजगार कार्यक्रमों के लिये ऋण लिये गये थे वे इस प्रकार हैं—

(अ) भैंस पालन
(ब) कृषि कार्य हेतु बैल जोड़ो
(स) झोटा बुग्गी/घोड़ा बुग्गी
(द) रिक्शा
(य) प्रोवीजन स्टोर
(च) गोबर गैस संयन्त्र
(छ) साईकिल/घोडा
(ज) नाई की दुकान

१४. ग्राम में भारत एवं विदेश से जिन व्यक्तियों ने जुलाई १९८१ से अब तक ग्राम के विकास कार्यों में रुचि ली और ग्राम में पधारे, और ग्रामवासियों को उत्साहित किया, उनकी सूची नीचे दी जाती है--

सर्व श्री बलराम जाखड, अध्यक्ष लोक सभा। श्री आर० वेंकटरमन, कृषि उत्पादन आयुक्त उत्तर प्रदेश सरकार। श्री ए० के० नारायणन–डिप्टी सेक्रेटरी मिनिस्ट्री ऑव रुरल डेवलपमेंट एन्ड रिकन्सट्रक्शन। श्री अरविन्द वर्मा, आई०ए०एस० आयुक्त मुरादाबाद मडंल। श्री अनीस अंसारी, जिलाधिकारी, बिजनौर। श्री दर्शन सिंह बैंस, बिजनौर जिलाधिकारी, श्री वीरेन्द्र कुलाधिपति गुरुकुल कांगड़ी, श्री सत्यव्रत, परिद्रष्टा गु०कां०वि०वि०, डॉ० सत्यकेतु भूतपूर्व कुलपति गु०कां०वि०वि०, श्री सी० जी० फूका साग, जापान, कु० ए० के० अहूजा डिप्टी सेक्रेटरी मिनिस्ट्री ऑव रुरल डेवलपमैन्ट, नई दिल्ली।

गांव की जो शक्ल १९८१ में थी वह आज बदली हुई है। ३३ प्रतिशत लोगों की आय में ३००-४०० रुपये प्रति माह की वृद्धि हुई है। गांव में पक्के मकानों का निर्माण अब होता हुआ दिखाई देता है। मिस्त्रियों को अब फुर्सत नहीं है। अनेक व्यक्ति सूती कपड़े से टेरीकॉट पर आ चुके हैं। वे अपने बच्चों को इंगलिश मीडियम स्कूल में भेजने लगे हैं। जहां केवल अनेक परिवारों में केवल दाल से रोटी खाई जाती थी अब सब्जी प्रारम्भ हो चुकी है। लोगों के रहन-सहन के स्तर में सुधार हुआ है और सोचने-समझने की शक्ति भी तीव्र हुई है।

१६ जुलाई, १९८४ को कु० ए०के० अहूजा, डिप्टी सेक्रेटरी, मिनिस्ट्री ऑव रुरल डेवलपमेन्ट एण्ड रिकन्स्ट्रक्शन, कांगड़ी ग्राम में पधारीं और ग्राम में चल रहे अनेक विकास कार्यक्रमों का निरीक्षण किया एवं एक सभा को सम्बोधित किया जिसकी अध्यक्षता मान्य कुलपति श्री जी०बी०के० हूजा, आई० ए० एस० (अवकाश-प्राप्त) ने की। डॉ० विजय शंकर इस सभा के संयोजक थे। कु० अहूजा के ग्राम में आने से इतिहास का एक नया पन्ना खुला है। ग्राम में पहली बार महिलायें सभा में आईं और अपनी समस्याओं के बारे में बातचीत की। कु० अहूजा ने स्वयं लोगों के घर-घर जाकर महिलाओं से बातचीत की और उन्हें घर से निकल कर सामाजिक, आर्थिक कार्यों में सक्रिय भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया। उनका कहना था कि हम सबको अपने-अपने जिम्मे का काम करना है। कुलपति जी ने इस ग्राम के लिये जो किया है उसकी कु० अहूजा ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। कु० अहूजा ने इस अवसर पर भूमि अपरदन को रोकने के लिए वृक्षारोपण कार्यक्रम में भी भाग लिया।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने अब ग्राम विकास का कार्य कांगड़ी ग्राम तक सीमित न रखकर अन्य ग्रामों, जैसे—गाजीवाली और जगजीतपुर में भी प्रारम्भ कर दिया है। इन ग्रामों में विशेष रूप से सेनीटेशन, वृक्षारोपण और प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम लिये गये हैं।

भावी कार्य-क्रम

१—रेशम कीट उद्योग
२—कुकुरमुत्ता की खेती
३—सौर्य ऊर्जा चूल्हा/गोबर गैस प्लाण्ट
४—कृषि उत्पादन में वृद्धि की योजना
५—सिंचाई के साधनों में वृद्धि
६—भूमि-कटाव रोकने की योजना
७—विद्युत सुविधायें प्राप्त कराना
८—ट्राइसेम योजना लागू करना
९—ग्राम में पक्की सड़क
१०—सफाई योजना
११—वृक्षारोपण, फलदार, छायादार, औषधीय एवं भूमि कटाव रोकने वाले पौधे।

वैदिक गणित की परम्परा में सहदेव के कुछ नियम

—वीरेन्द्र अरोरा
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

बहत्तर वर्षीय डॉ० सहदेव प्रसाद श्रीवास्तव मूलतः सिन्धोरा (मीरज़ापुर, उ०प्र०) के निवासी हैं किन्तु विगत कई वर्षों से वाराणसी में रह रहे हैं। वे अपने छात्र-जीवन से ही भारतीय प्राचीन गणित के विभिन्न कौतुहलों से प्रभावित रहे हैं। हालाँकि वे 'होइम्योपैथिक प्रैक्टिस' अब भी कर रहे हैं, किन्तु अंकगणित एवं बीजगणित की विभिन्न समस्याओं का 'संक्षिप्त हल' खोजने में पर्याप्त समय लगाते हैं। डॉ० एस०एल० सिंह, विभागाध्यक्ष (गणित), राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ऋषिकेश ने हाल ही में डॉ० श्रीवास्तव का साक्षात्कार किया। प्रस्तुत लेख डॉ० सिंह के ही सौजन्य एवं सहयोग से लिखा जा सका है। एतदर्थ डॉ० सिंह को बहुशः धन्यवाद।

डॉ० श्रीवास्तव के अनुसार—"गणित का जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि गणित के द्वारा विद्यार्थियों में चिन्तन, तर्क, निर्णय आदि मानसिक क्षमताओं का विकास होता है। तर्कसंगत ढंग से प्रस्तुत करके गणित को विद्यार्थियों के सामने रखा जाता है, जिससे उनमें गणित के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति का विकास होता है और उनमें अमूर्त संकलपनाएँ बोधगम्य होती हैं।"

डॉ० सहदेव प्रसाद श्रीवास्तव (जिन्हें हम अब सहदेव ही कहेंगे) को 'रुढ़ि एवं यौगिक संख्याओं' से सम्बन्धित क्रियाओं के अध्ययन सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण जानकारियां हैं। जैसे— 'संख्याओं के पूर्णरूपेण बंटने की पहचान' अर्थात् यदि किसी संख्या में २, ३, ५, ६, ७ आदि से भाग दें तो यह पहचान कैसे करेंगे कि कोई दी हुई संख्या इन अंकों से पूरी तरह बँट जायेगी अथवा नहीं। इस प्रकार की जानकारी आज प्रारम्भिक कक्षाओं में दी जाती है किन्तु बहुत सीमित रूप में। यहाँ सहदेव का एक नियम दिया जा रहा है—

किसी संख्या में बिना भाग दिये यह कैसे जानेंगे कि वह संख्या ११ से पूर्णतया विभाजित होगी अथवा नहीं ? इस सम्बन्ध में सहदेव का नियम है— यदि किसी दी हुई संख्या के सम व विषम स्थानों के अंकों के योगफलों का अन्तर शून्य हो या ११ से विभाजित हो जाय तो वह संख्या ११ से विभाजित हो जायेगी। जैसे –३४६७२ के विषम व सम स्थानों के योग क्रमशः (३+६+२ =११) तथा (४+७=११) का अन्तर शून्य है अतः स्पष्टतः ३४६७२ पूर्णतया ११ से विभाजित है। इसी प्रकार ५८२६३४ में विषम तथा सम स्थानों के अंकों का योग क्रमशः (८+६+४=२१) तथा (५+२+३=१०) का अन्तर ११ द्वारा विभाज्य है। स्पष्टतः ११ द्वारा पूर्णतया विभाज्य है ५८२६३४।

सहदेव दो संख्याओं के आपस में गुणा करने के संक्षिप्त नियम पर भी पर्याप्त जानकारी रखते हैं। उनके द्वारा वर्णित कुछ नियम भारत में प्राचीन काल से प्रचलित हैं और इनमें से कुछ विधियां भास्कर द्वितीय कृत 'लीलावती' में वर्णित विधियों से पर्याप्त प्रभावित हैं या यह कहा जा सकता है कि लीलावती में वर्णित विधियों पर आधारित हैं। (लीलावती में वर्णित गुणा की विधियों की विशेष जानकारी हेतु लीलावती पर लिखी कोलब्रुक की टीका पर लिखी पुस्तक "Colebrooke's translation of the LILAVATI with notes by Haran Chandra Banerji, II Edition, The Book Company, Calcutta, 1927' देखें।) सहदेव ने गुणा की संक्षिप्त विधियों का पर्याप्त अध्ययन किया है किन्तु यहां उनके द्वारा बताये गये नियमों में से मात्र एक सरल नियम दे रहा हूं—

यदि किसी संख्या को १२५ से गुणा करना है तो उस संख्या के दाहिनी तरफ तीन शून्य (०००) बढ़ाकर ८ से भाग दें।

जैसे—१२८७२ × १२५ = १२८७२००० ÷ ८ = १६०६००० ।

इस लेख को समाप्त करने से पहले यह बताना समीचीन प्रतीत होता है कि सहदेव ने (१) बीजगणित पदों का महत्तम निकालने, (२) जादुई जोड़, (३) विषम संख्याओं का जोड़ तथा पहाड़े के जोड़, (४) जादुई घटाना, (५) वर्ग (६) भाग, (७) घनमूल, (८) दशमलव भिन्न एवं आवर्त्त दशमलव, (९) घनमूल निकालना, (१०) अंकों की विलक्षणता आदि पर विशेष अध्ययन किया है। डॉ० एस०एल० सिंह के अनुसार सहदेव की खोजों पर विशेष अध्ययन की आवश्यकता है।

गंगा-शिवालिक क्षेत्र में दुर्लभ होती हुई वनौषधियां

—विजय शंकर
केदार शर्मा

प्रस्तुत लघु लेख गंगा समन्वित योजना, भारत सरकार पर्यावरण विभाग द्वारा गंगा बेसिन में पाये जाने वाले औषधीय, सौन्दर्य-प्रसाधन एवं अन्य वनस्पतियों के अध्ययन पर आधारित है। यहां केवल कुछ वनस्पतियों को लेकर यह दर्शाने का विनम्र प्रयास किया गया है कि वनस्पतियों (औषधीय, वृक्ष आदि) के अन्धाधुन्ध उखाड़ने एवं काटने के क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं। ललताराव नाले में एक कार का बह जाना, इस क्षेत्र में हो रहे परिस्थितिक असन्तुलन का एक ज्वलन्त प्रमाण है, जिससे हमारी आंखे खुल जाना चाहिये। इस विषय पर विस्तृत लेख आगे प्रकाशित किया जाएगा।

हिमालय एवं इसके निकटवर्ती क्षेत्र सदैव मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करते रहे हैं। विभिन्न राष्ट्र के मनुष्यों में इस क्षेत्र को देखने की तीव्र लालसा रही है। इस क्षेत्र की ओर आकर्षित होने का एक मुख्य कारण इस क्षेत्र का स्वस्थ वातावरण, उत्तम जलवायु एवं प्राकृतिक सम्पदा से परिपूर्ण होना है। इसकी तलहटियों में बसे नगर–देहरादून, ऋषिकेश, हरिद्वार में इसकी उत्तम जलवायु एवं समृद्ध प्राकृतिक सम्पदा का प्रभाव है।

हरिद्वार गंगानदी के दाहिने किनारे २७.५८ एन लैटिट्यूड तथा ७८.१३ ई लैटिट्यूड पर बसा एक सुन्दर नगर है। पश्चिम, उत्तर एवं पूर्व दिशाओं में पर्वतों से घिरा यह नगर विभिन्न औषधीय पौधों का खजाना समझा जाता है। दूर तक गंगा के तट से लेकर शिवालिक एवं नील पर्वत के जंगलों में अनेक प्रकार के औषधीय पौधे यहां प्राकृतिक रूप में पाये जाते हैं। नील पर्वत के नाम पर ही यहां गंगा की धारा का नाम नीलधारा पड़ा है।

औषधीय पौधों में रुचि रखने वालों वैद्यों, आयुर्वेदिक विद्यालयों एवं फार्मेसियों के लिए यह क्षेत्र विशेष आर्कषण रखता है। यद्यपि यहां प्राप्त होने वाले अनेक औषधीय पौधे राष्ट्र के अन्य भागों में भी प्राकृतिक रूप से पाये जाते हैं, परन्तु यहां उत्पन्न होने वाले पौधे को अधिक गुणकारी समझा जाता है। सम्भवत: ऐसा यहां के उत्तम पर्यावरण के कारण है। चरक ने भी इस बात की पुष्टि की है—

हिम वनौषधि भूमिनाम् (चरक सूत्र २५)

पिछले कुछ वर्षों से फार्मेसियों की औषधीय पौधों के लिए बढ़ती हुई माँग के कारण कुछ पौधों को इतनी अधिक मात्रा में एकत्र किया जाता रहा है कि इनमें से अनेक पौधे विरल / समाप्तप्राय: हो रहे हैं। औषधीय पौधों को एकत्र करना यहाँ एक व्यवसाय है। कई परिवार यहां इस व्यवसाय पर आश्रित हैं एवं अपनी जीविका निर्वाह कर रहे हैं। इस क्षेत्र से औषधीय पौधे एकत्र करने वाले कतिपय व्यक्तियों से बात करने पर पता चलता है कि अनेक जड़ी-बूटियां जो इस क्षेत्र से एकत्र की जाती रही हैं, उनमें से कतिपय अब अत्यन्त विरल हो रही हैं—जैसे- दशमूल नामक योग में प्रयुक्त होने वाली निम्नलिखित जड़ी बूटियाँ—

(१) अरनी Clerodendron phlomoides
(२) बिल्वा Aegle marmelos
(३) श्योनाक Oroxylum indicum
(४) पाटला Stereospermum suvaveolens
(५) गम्भारी Gemlina arborea
(६) ब्रिहेती Solamum indicum
(७) कंटकारी S. xanthocarpum
(८) गोखरु Tribulus terrestris
(९) शालपर्णी Desmodium gangeticum
(१०) पृष्णपर्णी Uraria picta

यही कहानी त्रिफला में प्रयुक्त होने वाली हरड़, बहेड़ा की है।
(१) हरड़ Terminalia chebula
(२) बहेड़ा T. belerica

ऐसा अनुमान है कि श्योनाक एवं गम्भारी नाम के औषधीय पौधे यहां जंगलों में समाप्तप्राय: हो चुके हैं। हरड़ के वृक्ष भी नाममात्र को शेष रह गये हैं।

पिपली हरिद्वार के निकट पथरी क्षेत्र में प्रायः सरलता से प्राप्त हो जाती थी। अव क्षेत्र में लोगों द्वारा खेतों का व्यवसाय अपनाये जाने के कारण पिपली अव सरलता से प्राप्त नहीं होती।

तीव्र गति से हो रहे शहरीकरण एव औद्योगिकीकरण भी काफ़ी सीमा तक पौधों को नष्ट करने के कारक हैं। इसी प्रकार का प्रभाव हरिद्वार क्षेत्र में चीला एवं पूर्वी गंगानहर के निर्माण से हुआ है। पेड़ों के अंधाधुन्ध कटान से किस प्रकार परिस्थितिकी सन्तुलन पर कुप्रभाव पड़ रहा है, इसके परिणाम भी हमारे सामने हैं। हर वर्ष विभिन्न नदियों में आने वाली बाढ़ें हमारी इस अदूरदर्शिता का परिणाम हैं। इस वर्ष हरिद्वार के इतिहास में पहली बार इन्हीं कारणों से ललताराव नहर में एक एम्बेसेडर कार बह गई जबकि वर्षा इतनी अधिक नहीं हुई थी। हरिद्वार के समीप की पहाड़ियों पर वनस्पतियों के कम हो जाने से वहां की भूमि की जल सोखने की क्षमता में कमी आयी है, भूमि अपरदन बढ़ा है जिससे वर्षा होने पर अधिकतर पानी बहकर ललताराव व अन्य नालों एवं नदियों में चला जाता है जिसके दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं। कार का बह जाना ज्वलन्त प्रमाण है।

गुर्जर जाति के लोग प्रायः जंगलों में ही अपने मवेशियों के साथ रहते हैं। इन मवेशियों से भी औषधीय पौधों की हानि हो रही है। कोई भी पौधा यदि फल बनने से पूर्व तोड़ लिया जाए तो नए बीज नहीं बन पाते तथा उसकी नई पीढ़ी उत्पन्न नहीं हो पाती। जंगलों में गुर्जरों के मवेशियों द्वारा कई पौधे फल बनने से पूर्व खा लिए जाते हैं या उनके पैरों से कुचल दिए जाते हैं। फलस्वरुप इन पौधों की अगली पीढ़ी पैदा होने की सम्मभावनाएं कम/समाप्त हो जाती हैं। फार्मेसियों में प्रयोग के लिए भी कई पौधे इसी प्रकार फल बनने से पूर्व तोड़ लिए जाते हैं।

गंगा समन्वित योजना (पर्यावरण विभाग, भारत सरकार) के अनेक कार्यक्रमों में से एक गंगा वेसिन में उगने वाले औषधीय एवं सौन्दर्य प्रसाधन में उपयोगी पौधों का सूचीकरण एवं अध्ययन भी है एवं उनके संरक्षण के उपाय तजबीज करना भी है। इस क्षेत्र में अनेक पौधे जो विरल एवं समाप्त-प्रायः हो जा रहे हैं, इन्हें नर्सरी, अखाड़ों, मन्दिर क्षेत्रों, ग्रामों में उगाने की योजना बनाई जा रही है। वन विभाग से भी इस विषय में सम्पर्क स्थापित किया जायेगा और उनका सहयोग यहां के प्राकृतिक एवं औषधीय वनस्पतियों के संरक्षण में प्राप्त किया जायेगा। गंगा के किनारे के ग्रामों में रहने वाले लोगों को उन औषधीय वनस्पतियों को उगाने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है जो

विरल हो रही हैं और जो ग्रामों में उगाई जा सकती है। गंगा के किनारे कितनी ही भूमि बेकार पड़ी रहती है, इसका किस प्रकार उचित उपयोग हो सके, इस दिशा में अध्ययन किए जा रहे हैं। पर्यावरण में बढ़ती हुई गिरावट में ब्रेक लगाने के लिए, कम होती हुई औषधीय वनस्पतियों को लुप्त होने से बचाने एवं प्रकृति में उसका पूर्व की भांति बाहुल्य बनाने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि सारे क्षेत्र में उपयुक्त पौधे लगाये जायें। गंगा समन्वित योजना की टीम इस दिशा में अग्रसर है।

गंगा समन्वित योजना,
(पर्यावरण विभाग, भारत सरकार)
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

वेदों में पर्यावरण-संरक्षण

धनवान व्यक्तियों की तृष्णा, निर्धनों की मौलिक आवश्यकताओं के प्रति हमारी उदासीनता एवं असावधान टेक्नालॉजी का एक ऐसा तिगुड्डा है जिससे देश के पर्यावरण या यों कहिये कि मौलिक जीवन-आधार प्रणालियों को अत्यन्त हानि पहुँच रही है।

तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ यजु० ४० । १ ॥

संसार की वस्तुएं हमारे उपभोग के लिए हैं। किन्तु इनका उपभोग त्याग की भावना से करो। लोभी मत बनो। यह माया कभी किसी की नहीं हुई।

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम ॥
अथर्ववेद १२।१-३५॥

तेरा जो भाग मैंने खोद कर निकाला है वह शीघ्र ही बढ़ जाये। मेरे द्वारा तेरे हृदय या प्राणमूलक अंगों को हानि न पहुंचे।

पर्यावरण अपकर्ष—रोग और उपचार

—डॉ० वि० शंकर
प्रिंसिपल इन्वेस्टीगेटर, गंगा समन्वित योजना (पर्यावरण विभाग, भारत सरकार)
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति, श्री गोवर्धन बलभद्र कुमार हूजा, आई०एं०एस० (अ० प्रा०) के पवित्र उपक्रम के फलस्वरूप भारत सरकार पर्यावरण विभाग ने विश्वविद्यालय को डॉ० विजय शंकर के निर्देशन में गंगा समन्वित योजना पर कार्य करने के लिए रु० ९.३७ लाख का अनुदान दिया है।

इस योजना के अन्तर्गत गंगा के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया जा रहा है और पर्यावरण संरक्षण एवं समद्धि के लिए अनेक कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं जो निम्न हैं—

१. गंगा जोन के वनस्पतियों, जन्तुओं एवं फिजिको-केमीकल करेक्टर्स।
२. गंगा के प्रदूषण के स्रोत।
३. तीर्थयात्रियों का प्रभाव।
४. जल शोधन में सक्रिय प्राकृतिक शक्तियों का पता लगाना।
५. गंगा के किनारे उगने वाली औषधि एवं लेग्यूमिनस पौधों का प्रकृति एवं देश की अर्थ व्यवस्था में योगदान।
६. गंगा के तट पर बसे ग्रामों में बाढ़ द्वारा होने वाली हानि, जैसे भूमि कटाव आदि को रोकना।
७. गंगा जोन के लोगों की, विशेष रूप से ग्रामीणों की आर्थिक स्थिति का अध्ययन एवं उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए सुझाव देना एवं स्कीम लागू करना।
८. गंगा के किनारे एवं किनारे के गाँवों में उपयुक्त वृक्षों की पौध लगाना जिससे अपरदन एवं ऊर्जा की समस्या हल हो सके।

ऋषिकेश से गढ़मुक्तेश्वर तक गंगा का अध्ययन करने पर अनेक तथ्य सामने आये। जहां कुछ इलाकों में, मुख्यतः ऋषिकेश-हरिद्वार में फैक्टरी और शहरी गन्दे नालों द्वारा गंगा एवं गंगानहर प्रदूषित हो रही है, वहां कुछ इलाके ऐसे भी हैं, जहां गंगा के तट पर बसे ग्रामों में रहने वाले लोग निरन्तर बाढ़ के

खतरे से ग्रस्त रहते हैं। नदी द्वारा मिट्टी का कटाव, फसलों की पैदावार कम होना, ईंधन के लिए गंगातट एवं आसपास के जंगलों से वृक्षकटान, गरीबी, न्यूनतम जन-सुविधाओं का न होना, नदी के निरन्तर बदलते हुए पथ से भूमि के लम्बे चौड़े क्षेत्रफल का निरुपयोग हो जाना, कहीं दलदली क्षेत्र तो कहीं खादिर, वनस्पितयों का, विशेष रूप से अनेक महत्वपूर्ण औषधीय जड़ी-बूटियों का एवं तटीय तथा निकटवर्ती पहाड़ियों पर उगने वाले पौधों का कम होते जाना, नहरों के इलाके में रिसन, लवणता, आदि कुछ ऐसे लक्षण हैं, जो ऋषिकेश से गढ़मुक्तेश्वर तक के ग्रामीण इलाकों में दृष्टिगोचर होते हैं।

ऋषिकेश में मुनि की रेती और गीता भवन, स्वर्गाश्रम क्षेत्र में अनेक नालियां गंगा में गिरती हैं। कुछ नालियां तो नहाने के घाट के समीप ही गंगा में गिरती हैं। त्रिवेणी घाट पर शहर का एक नाला गंगा में मिलता है जो दूर तक नदी को गंदा करता है और इस के पास ही लोग डुबकी लगाते हुए मिलते हैं। वीरभद्र की एन्टीबायोटिक्स फैक्टरी ने एक ट्रीटमेन्ट प्लांट बनाया हुआ है जिसमें फैक्टरी एवं टाउनशिप के मैले-कचरे को ट्रीट किया जाता है। इस ट्रीटमेन्ट के दौरान मीथेन गैस बनती है। इस गैस को कुकिंग के लिये प्रयोग किये जाने की व्यवस्था करना आवश्यक है। ट्रीटमेन्ट के पश्चात् जलीय अंश श्यामपुर खादिर के पास गंगा नदी में प्रवाहित होते हैं। ऐसा बताया जाता है कि इससे त्वचा में जलन एवं खुजली हो जाती है।

उपरोक्त समस्त समस्याओं का समाधान खोजने के लिये गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार की 'गंगा समन्वित योजना' (पर्यावरण विभाग, भारत सरकार) की टीम सब पहलुओं का गहराई से अध्ययन कर रही है। समस्त इलाके के पानी, मिट्टी, गन्दे नालों, वनस्पतियों, जन्तुओं आदि का निश्चित अवधि पर सैम्पलिंग/प्रीजरवेशन/विश्लेषण/परीक्षण किया जा रहा है। गंगा के दोनों तट पर बसी बस्तियों के तुलन-पत्र बनाने का कार्य चल रहा है। सरकारी एवं गैर सरकारी एजेन्सियों के सहयोग से और स्थानीय लोगों को साथ लेकर ऐसी योजनाएं तैयार की जा रही हैं जिससे प्रदूषण से छुटकारा पाया जा सके, ग्रामीणों का जीवन-स्तर ऊपर उठे, भूमि-कटाव रुके, बाढ़ का आना बन्द हो, ऊर्जा के नवीन स्रोतों को, जैसे बायोगैस, सौर्य ऊर्जा, पैडल-पावर के बारे में लोगों को बताया जाये, जिससे वे उन्हें अपनायें। इससे पेड़ों का काटना बन्द होगा और भूमि अपरदन रोका जा सकेगा। प्राकृतिक वनस्पतियों का अध्ययन करके एवं वनस्पति विज्ञान विभाग की वाटिका में चल रहे प्रयोगों द्वारा ऐसे पौधों की तलाश जारी है जिनकी जड़ें मिट्टी को अधिक कुशलता से बांधे रखती हैं और जो कुछ समय के लिये जलप्लावन को भी सहन कर सकते हों। कुछ ऐसे पौधे

चुन लिये गये हैं। ऐसे पौधों को जिसमें वृक्ष भी शामिल हैं, चौड़ी पट्टियों में गंगा के दोनों ओर के तट पर लगाने का कार्य-क्रम प्रारम्भ किया जा चुका है। इस प्रकार के वृक्षारोपण में जहां गंगा समन्वित योजना की टीम के सदस्य भाग लेते हैं, वहां स्थानीय जनता एवं विद्यार्थी भी रुचि लेते हैं और इस पुण्य कार्य में हाथ बंटाते हैं। विश्वविद्यालय के कुलपति श्री जी०बी०के० हूजा, जिनके पवित्र उपक्रम से यह कार्य प्रारम्भ हुआ है, अपने व्यस्त कार्यक्रम में से समय निकालकर योजना के अनेक कार्यक्रमों के लिए देते हैं, सर्वे पर गंगा योजना की टीम के साथ फील्ड पर जाते हैं और योजना को कुशल नेतृत्व एवं दिशा प्रदान कर रहे हैं।

उर्वरकों की आवश्यकता फसलों के उगाने में पड़ती है। रासायनिक उर्वरकों के निर्माण में ऊर्जा बहुत अधिक व्यय होती है। सौभाग्य से प्रकृति ने हमें कुछ ऐसे पौधे दिए हैं, जैसे कुछ हरित-नील शैवाल एवं लैग्यूमिनस पौधे जो स्वयं हो प्रकृति में पाये जाने वाले नेत्रजन से नाईट्रेट बना लेते हैं और इस प्रकार फसलों की उर्वरक की आवश्यकता की कुछ सीमा तक पूर्ति करते हैं। इन पौधों को प्रायौगिक स्तर पर नर्सरी एवं प्रयोगशाला में उगाने का कार्यक्रम चल रहा है। आगे चलकर इन्हें लम्बे पैमाने पर गंगा के किनारे पड़ी भूमि पर उगाया जायेगा, विशेष रूप से ऐसी भूमि पर जिसका अभी कोई उपयोग नहीं है।

कुछ ऐसे प्रयोग भी किए जा रहे हैं, जिनसे उन पौधों का पता लग सके जो कारखानों एवं शहर के गन्दे नालों के गन्दे पानी से प्रदूषक तत्वों का चूषण करके उसे साफ करने में सहायक हों। पानी और मिट्टी के फिजिको-कैमिकल केरेक्टर्स के अध्ययन के अतिरिक्त गंगा समन्वित योजना के जो अनेक अन्य कार्यक्रम चल रहे हैं उनमें से कुछ की झलकियां आगे प्रस्तुत हैं—

१. कांगड़ी ग्राम में भूमि कटाव— (चित्र संख्या १)

बिजनौर जिले में गंगा के तट पर स्थित कांगड़ी ग्राम जहां सन् १९०२ में स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना की। १९२४ में गंगा की बाढ़ ने विश्वविद्यालय के भवन के एक बड़े भाग को बहा दिया। तब विश्वविद्यालय को हरिद्वार लाया गया। चित्र में कांगड़ी ग्राम की तटीय भूमि को काटती हुई सिद्ध स्रोत की धारा दिखायी दे रही है। पूर्वी गंगा नहर के निर्माण के फलस्वरूप सिद्ध स्रोत की इस धारा में पानी अधिक आने लगा है, क्योंकि अन्य धाराएं ब्लोक हो गई हैं और उनका पानी भी इसी धारा में आता है, जिससे कांगड़ी ग्राम को खतरा बढ़ गया है। चित्र में कटाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है। पास में सिद्ध स्रोत बह रहा है। बाढ़ से खतरा बढ़ने का एक अन्य कारण नदी से

पत्थरों को उठाने का ठेका देना है, जिस पर रोक लगनी चाहिए या नियन्त्रण होना चाहिए। कांगड़ी से टांटवाला तक के समस्त गांव कांगड़ी जैसी समस्याओं से ग्रस्त हैं। यदि स्थान-स्थान पर चैक डैम बना दिए जायें और तट पर वृक्षारोपण कर दिया जाये तो इन ग्रामों को बाढ़ एवं भूमि कटाव से बचाया जा सकता है। अन्य ग्रामों की भांति विश्वविद्यालय ने कांगड़ी में भी नदी के किनारे की भूमि में उपयुक्त वनस्पतियां लगाने का कार्यक्रम प्रारम्भ किया है।

२. गाजीवाली में गंगातट-वृक्षारोपण— (चित्र संख्या २)

जगजीतपुर टाईप गंगा-तट-वृक्षारोपण का कार्यक्रम गाजीवाली में चलाया गया। चित्र में दिल्ली के एन०सी०सी० के कैडेट इस कार्यक्रम में भाग लेते हुए तथा झुंड के पौधे लगाते हुए। गाजीवाली कुछ वर्ष पूर्व १९८१ में गंगा की बाढ़ का कोप-भाजन बना जिसके कारण इस ग्राम को उठा कर इसके वर्तमान स्थान पर बसाया गया। इस ग्राम में ११ स्वतन्त्रता सेनानी रहते हैं।

३. जगजीतपुर-गंगातट वृक्षारोपण— (चित्र संख्या ३)

कांगड़ी ग्राम की ही तरह जगजीतपुर भी गंगा के तट पर स्थित है। कुछ यहां भी ग्राम की भूमि का कटाव गंगा की धारा से होता है। कटाव रोकने के लिए गंगा समन्वित योजना (पर्यावरण विभाग, भारत सरकार) गु० कां० विश्वविद्यालय ने डॉ० वि० शंकर के नेतृत्व में गंगातट पर उपयुक्त वनस्पतियां लगाने का कार्यक्रम बनाया है। इसमें किनारे पर ३--४ मीटर चौड़ी पट्टी में सदासुहागन और झुण्ड के पौधे लगाये जाते हैं। तत्पश्चात् इनके पीछे एक ४–६ मीटर चौड़ी पट्टी में उपयुक्त वृक्ष जैसे शीशम, खैर, जामुन, सेमल, मालती, बेरी, सूबबूल आदि लगाते हैं। इनके बीच-बीच में छोटे झाड़ीदार पौधे भी लगाना चाहिए।

चित्र में सदासुहागन एवं झुण्ड के लगाये हुए पौधे दिखायी दे रहे हैं। विश्वविद्यालय के विद्यार्थी एवं ग्रामीण बच्चे वृक्षारोपण करते हुए दिखाई दे रहे हैं।

श्री गोवर्धन बलभद्र कुमार हूजा, कुलपति जो गंगा योजना के कार्यक्रम में विशेष रुचि ले रहे हैं और जिनके उपक्रम से विश्वविद्यालय में पर्यावरण सम्बन्धी अध्ययन एवं कार्यक्रमों का श्रीगणेश हुआ है, चित्र में (टोपी लगाये हुए) बच्चों को प्रोत्साहित करते हुये दिखायी दे रहे हैं। उनके पास ही खड़े हैं गंगा योजना के मुख्य अन्वेषक डॉ० विजय शंकर।

४. कांगड़ी–गंगा से पानी का सेम्पल लेते हुए ग०स०यो० के एक जे०आर०एफ०– (चित्र संख्या ४)

कांगड़ी ग्राम और गु०कां० विश्वविद्यालय के पुराने भवन के बीच बहती

हुई गंगा से पानी का सैम्पल लेते हुए गंगा समन्वित योजना के एक जे०आर० एफ०। कुलपति श्री जी०बी० के० हूजा आई०ए०एस० (अ०प्रा०) कार्य का निरीक्षण करते हुए। चित्र में बाईं ओर मुख्य अन्वेषक डॉ० विजय शंकर खड़े हैं।

५. गंगा तट–कांगड़ी ग्राम— (चित्र संख्या ५)

तट पर खैर के वृक्ष एवं झुण्ड के पौधे दिखायी दे रहे हैं। ये वृक्ष जल–प्लावन को सहन कर सकते हैं और मिट्टी के कटान को रोकने में सहायक हैं। चित्र में श्री कैप्टन देशराज, मान्य कुलपति श्री जी०बी०के० हूजा जी, डॉ० विजय शंकर और श्रीराम अजोर हैं। इस इलाके में खैर के वृक्ष खूब चलते हैं। इनसे कत्था बनता है। इसका गोंद भी काम में आता है। इनकी जड़ें भूमि की उर्वरकता बढ़ाती हैं।

६. जन–सुविधाओं का अभाव – (चित्र संख्या ६)

गैसपुर—चण्डी घाट से बिजनौर के मार्ग पर स्थित ग्राम का एकमात्र स्कूल जहां एक ही अध्यापक है जो विभिन्न कक्षाओं को पढ़ाते हैं। एक ओर यह विद्यालय और दूसरी ओर शहरों में पल रहे पब्लिक स्कूल। इस असमता को कैसे दूर किया जाये? यह अन्याय कब तक सहा जायेगा? हम जो स्वयं को शिक्षित कहते हैं, उनका यह फर्ज है कि गरीब और अशिक्षित वर्ग को न्याय दिलायें और उनका जीवन-स्तर ऊँचा उठायें। विश्वविद्यालय के कुलपति के कुशल नेतृत्व में इस दिशा में कांगड़ी ग्राम में विभिन्न प्रयास किए गये हैं, जिससे वहां के ३० प्रतिशत परिवारों का जीवन-स्तर ऊपर उठा है। अब अन्य ग्रामों में भी विश्वविद्यालय विकास कार्यक्रम प्रारम्भ कर रहा है।

७. यह कैसा पशुधन है ? (चित्र संख्या ७)

नागल—गंगातट पर बसा एक अन्य ग्राम। यहां एक बड़े क्षेत्र में दलदल है, जहां टाईफ का बाहुल्य है। साथ ही मिट्टी के ऊँचे-ऊँचे टीले हैं जो प्रायः वनस्पति विहीन हैं। इन्हीं टीलों के पास खड़ी हुई कुछ गाय। प्रत्यक्ष है कि ये अत्यन्त कमजोर हैं और इनकी हड्डियां तक दिखायी दे रही हैं। इन्हें पर्याप्त भोजन नहीं मिलता। दूध के नाम पर एक गाय दिन में केवल एक से दो किलो देती है। गौ को माता कहने और मानने वाले हमारे देश में गौ की कितनी चिन्ता इसके सपूतों को है, यह केवल नागल की ही नहीं अनेक ग्रामों की कहानी है। गरीबी के अनेक कारणों में से एक हमारी दूध देने वाले पशुओं के प्रति उदासीनता है। गांव की खुशहाली के लिए आवश्यक है कि पशुओं को भरपेट चारा मिले, वे स्वस्थ हों, नस्ल अच्छी हो और दुग्ध उत्पादन बढ़े। गांव में लोगों को गोबर गैस प्लान्ट के लगाने के लिए उत्साहित किया जाये, जिससे गोबर का उचित उपयोग हो और ऊर्जा की समस्या भी हल हो। ईंधन के लिये जंगलों से लकड़ी काटना बन्द हो।

८. हरिद्वार का पवित्र स्थल : हरकी पैड़ी क्षेत्र— (चित्र संख्या ८)

हरकी पैड़ी क्षेत्र में ही अनेक नाले गिरते हैं, उनमें से एक नाईसोता है जो इस चित्र में प्लेटफार्म के नीचे से निकल कर गंगाजल में मिलता हुआ दिखायी दे रहा है। इस नाले में परिवारों का मल-मूत्र एवं रसोई की गन्दगी आदि भी बह कर आती है। हरिद्वार के पवित्र गंगाजल को इन नालों से प्रदूषित होने से रोकना हमारा धर्म भी है, फर्ज़ भी। डॉ० विजय शंकर ने गंगाजल को नालों से प्रदूषित होने से बचाने के लिए कुछ सुझाव जल निगम उत्तर प्रदेश एवं पर्यावरण विभाग, भारत सरकार को भेजे हैं जिनके क्रियान्वयन होने पर हरकी पैड़ी क्षेत्र का पवित्र जल प्रदूषित होने से बचाया जा सकेगा।

९. काला नाला (भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स, रानीपुर)— (चित्र संख्या ९)

भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स के थरमल पावर स्टेशन से निकलने वाला काला पानी एक नाले के रूप में बहता हुआ ज्वालापुर की बस्ती में होकर गुजरता है और बस्ती की गन्दगी को समेटता हुआ गंगा नहर में गिरता है, जिससे नहर का पानी १ कि०मी० आगे तक काला नजर आता है। जनता के अनुसार इससे त्वचा के एवं पेट के रोग हो रहे हैं और घाट पर नहाना एवं कपड़े धोना भी दुष्कर हो रहा है।

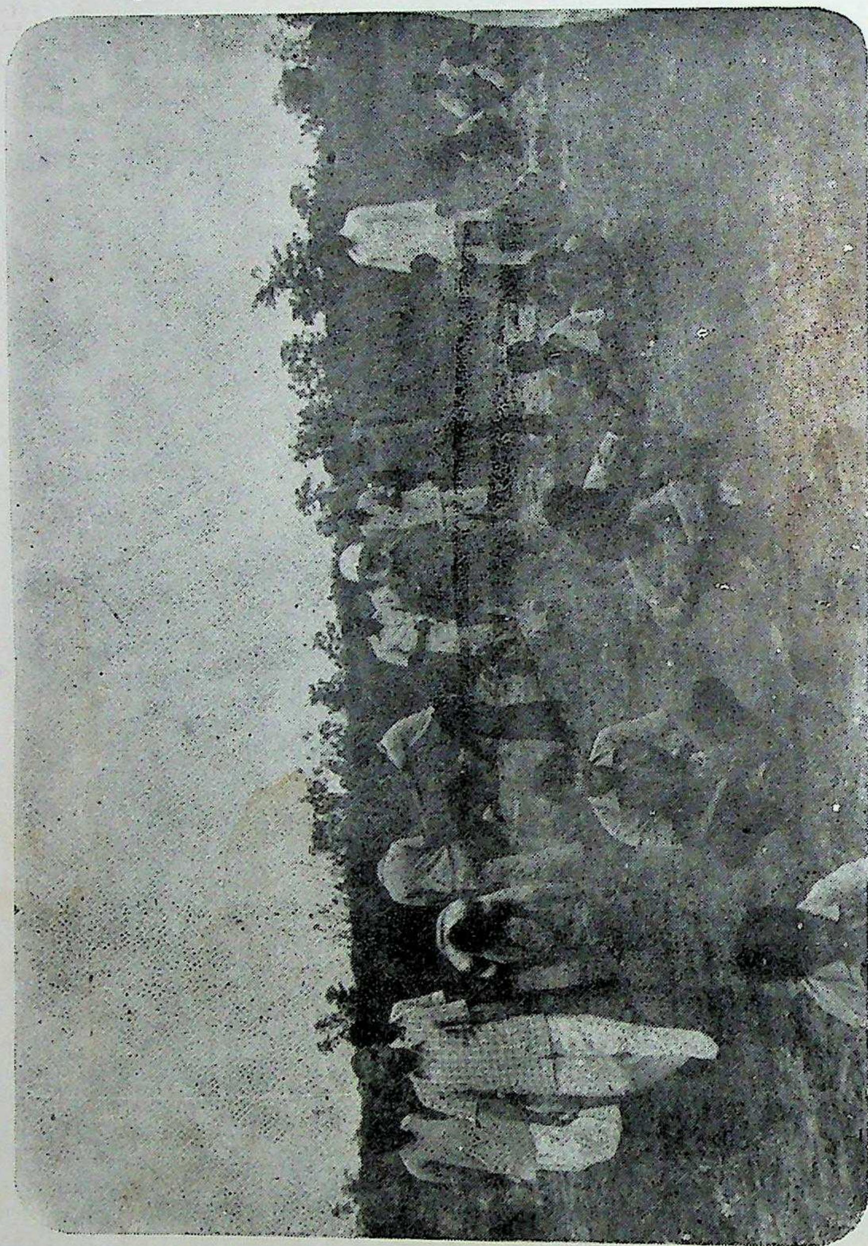
१०-११. हरिद्वार क्षेत्र में इकालाजिकल डिस्टरबेन्स— (चित्र संख्या १०-११)

ललताराव नाला, हरिद्वार--

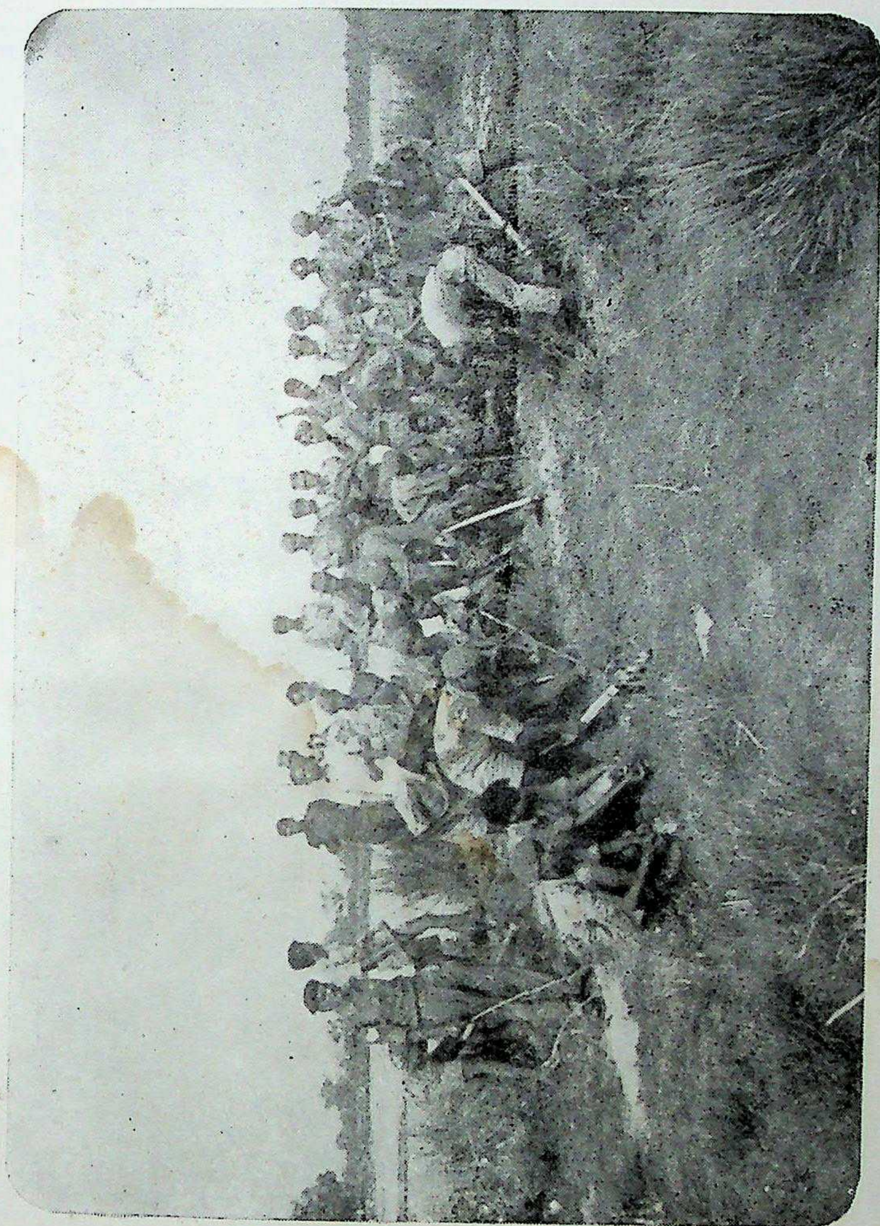
यह नाला निकटवर्ती पहाड़ियों से आता है और आर्य-समाज (हरिद्वार) के निकट गंगा के पानी में गिरता है। इससे भी इसके पास बने मकानों, आश्रमों की गन्दगी बह कर गंगा में गिरती है। इस वर्ष निकटवर्ती पहाड़ियों पर इकालाजिकल डिस्टरबेन्स के कारण इस नाले में वर्षा होने पर बहुत अधिक पानी आया। इतिहास में पहली बार इस वर्ष इस नाले में एक एम्बेसेडर कार बह गई जिसका अभी तक पता नहीं चल पाया। पहाड़ियों पर कम होती हुई वनस्पतियां एव नई बस्तियों का निर्माण इसका कारण हो सकती हैं। इन पहाड़ियों पर उपयुक्त पौधों का उगाना अत्यन्त आवश्यक है। इन पहाड़ियों पर उगने वाली जड़ी-बूटियों को अत्यधिक मात्रा में उखाड़ा जाना तथा वृक्षों का काटना भूमि अपरदन को बढ़ाता है एवं भूमि की जल सोखने की क्षमता को घटाता है। जिससे वर्षा का पानी बहुत अधिक मात्रा में बह कर नालों में जाता है। इसका परिणाम हमारे सामने आया। इन पहाड़ियों पर औषधीय पौधें एवं उपयुक्त वृक्ष लगाना अत्यन्त आवश्यक है।



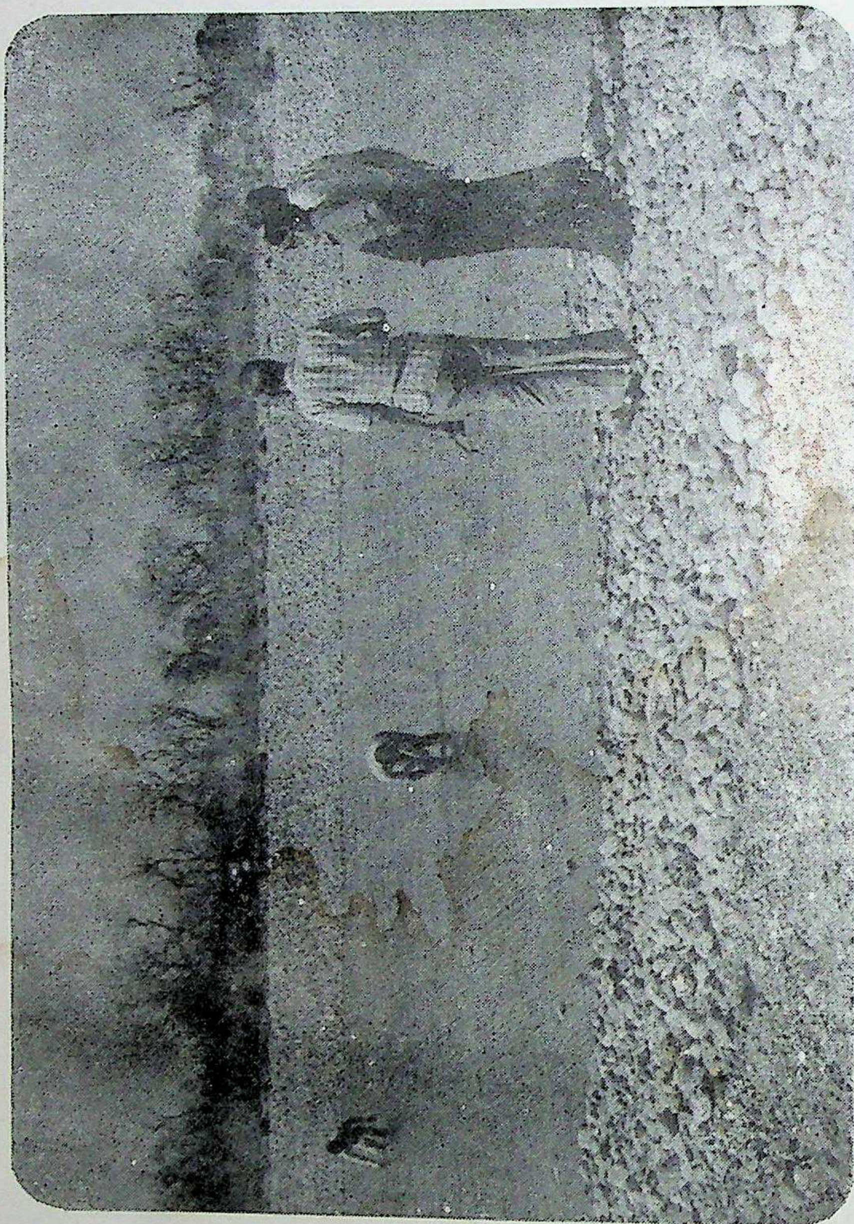
चित्र संख्या १



चित्र संख्या २



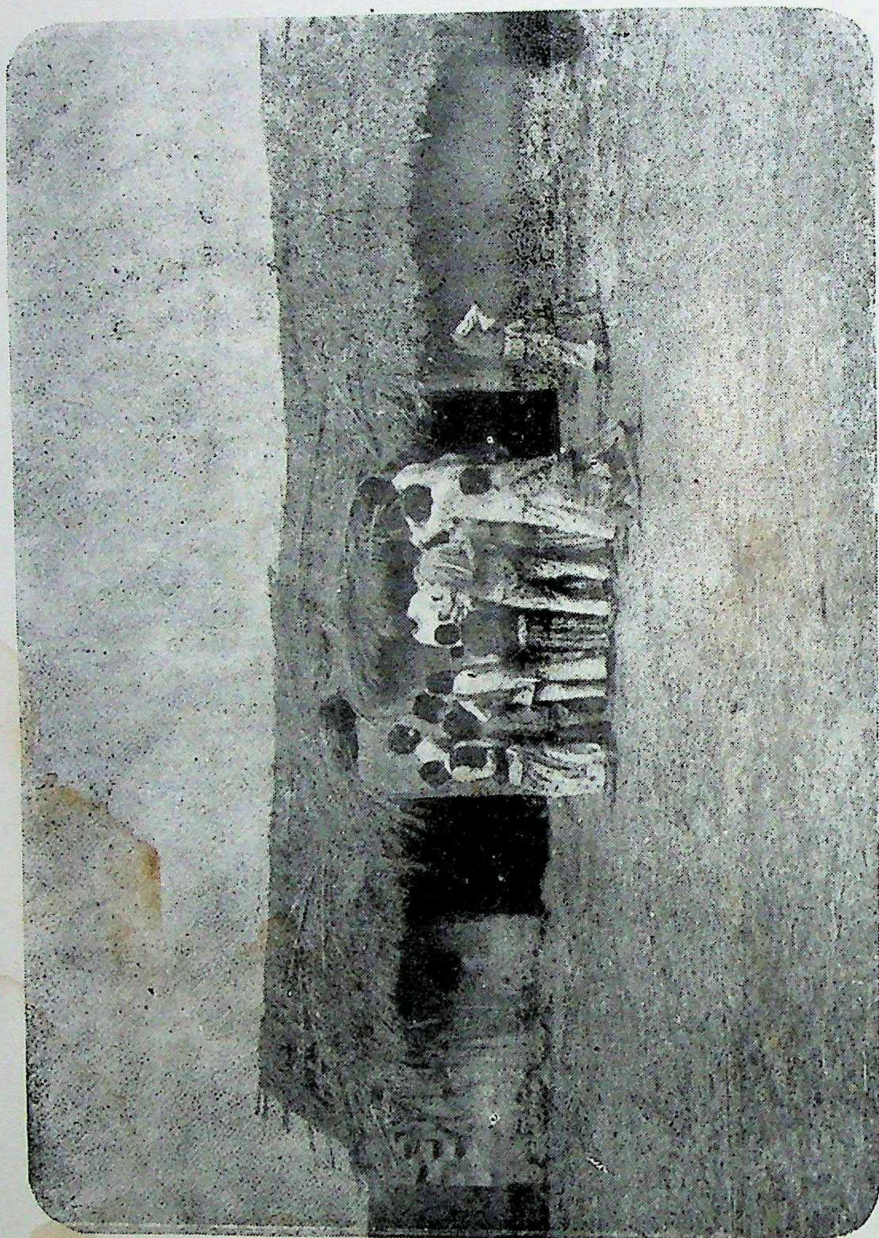
चित्र संख्या ३



चित्र संख्या ४



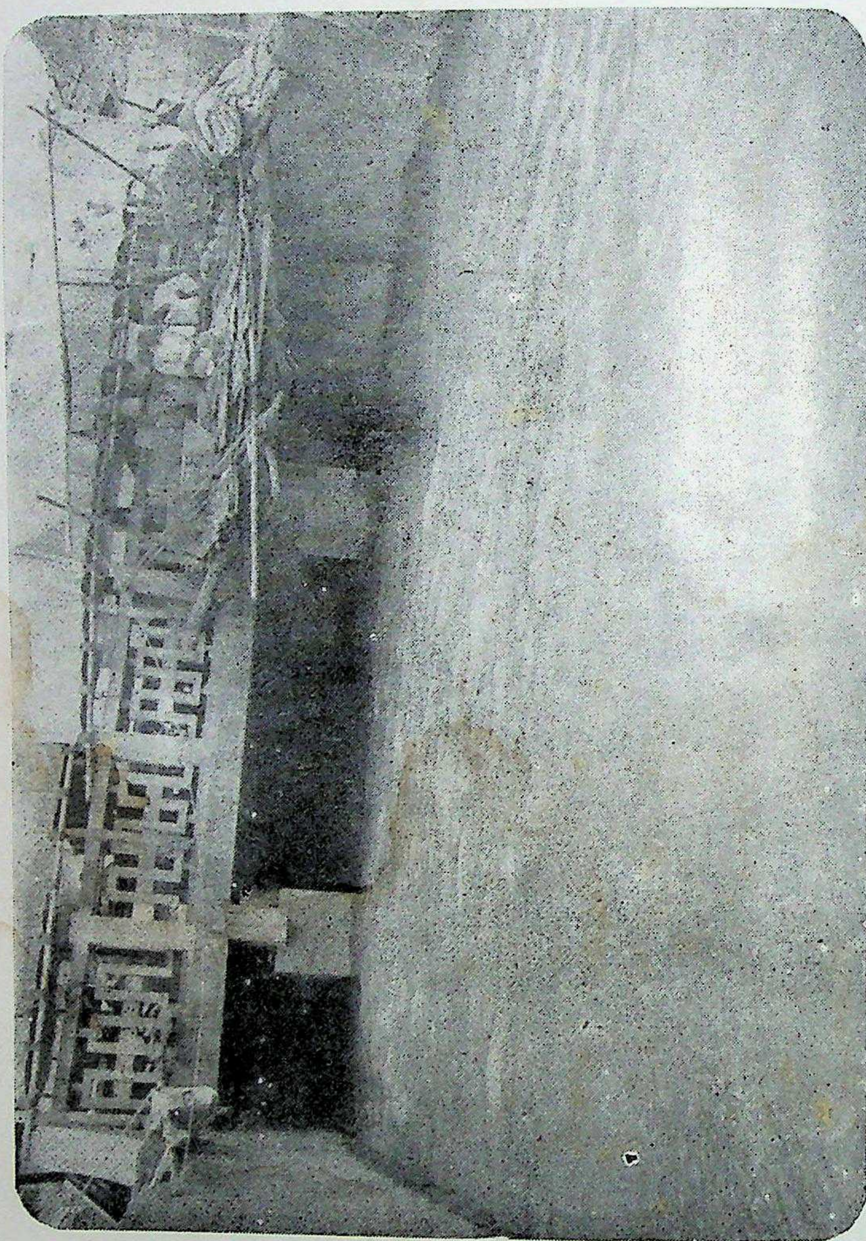
चित्र संख्या ५



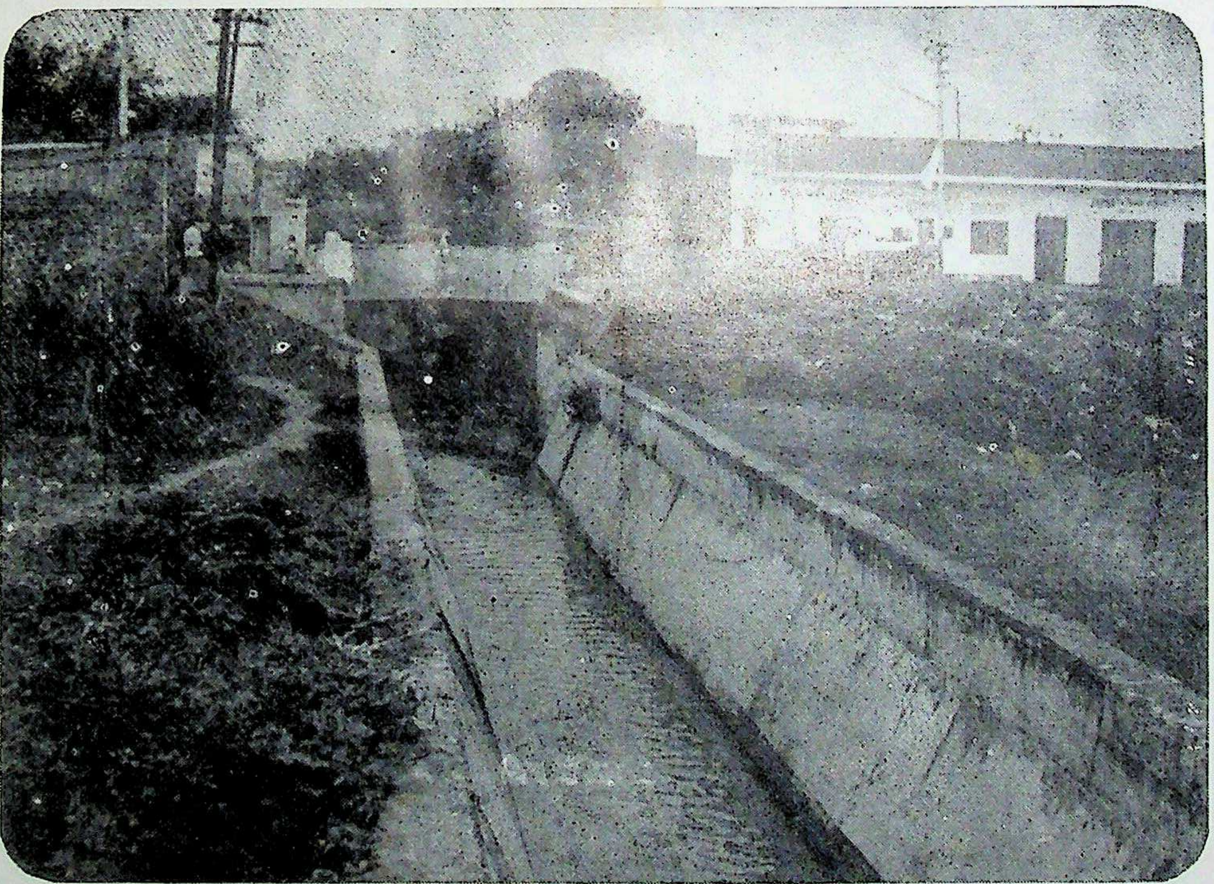
चित्र संख्या ६



चित्र संख्या ७



चित्र संख्या ८



चित्र संख्या ९



चित्र संख्या १०



चित्र संख्या ११



चित्र संख्या १२

१२. ऊर्जा के लिए वृक्षारोपण— (चित्र संख्या १२)

इसके लिए पापलर, यूकेलिप्टस आदि तेजी से बढ़ने वाले वृक्षों को लगाने की सिफारिश की जाती है। चित्र में यूकेलिप्टस प्लान्टेशन का एक दृश्य प्रस्तुत है, इन्हें श्री विराज जी ने कांगड़ी ग्राम के सामने लगाया है, जो चित्र में (दाढ़ी वाले) दिखायी दे रहे हैं। इनके दाहिनी ओर मान्य कुलपति श्री जी०बी०के० हूजा, डॉ० बी०डी० जोशी, डॉ० विजय शंकर खड़े हैं और बाईं ओर हैं श्री देशराज और श्री राम अजोर। गंगा समन्वित योजना का एक कार्यक्रम एनर्जी प्लान्टेशन करना व जनता को ऐसे पौधे लगाने के लिए प्रोत्साहित करना भी है जिससे ऊर्जा की समस्या हल की जा सके।

होमियोपैथिक भेषज द्रव्य

—राजीव क० शर्मा
केन्द्रीय भारतीय भेषज संहिता प्रयोगशाला,
(स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मन्त्रालय, भारत सरकार) गाज़ियाबाद

मानव-सभ्यता एवं चिकित्सा–शास्त्र दोनों ही समकालीन हैं। मानव ने अपनी विकास यात्रा में रोगों के निदानार्थ विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों को विकसित किया। वर्तमान युग में आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के प्रसार एवं लोक-प्रियता के साथ-साथ अन्य चिकित्सा पद्धतियों की छवि धूमिल नहीं हुयी, अपितु आधुनिक चिकित्सा के चिकित्सोपरान्त उत्पन्न विकारों के कारण स्वदेशी एवं विदेशी प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियों की ओर झुकाव बढ़ा है। किसी भी चिकित्सा पद्धति की निदान क्षमता उसमें प्रयुक्त भेषज द्रव्यों पर पूर्णतया निर्भर होती है। भेषज द्रव्यों का अध्ययन एवं विश्लेषण उस चिकित्सा पद्धति की गुणवत्ता एवं श्रेष्ठता का मानक है। होमियोपैथी भी इस मानक पर श्रेष्ठ एवं निरापद चिकित्सा पद्धति सिद्ध होती है। होमियोपैथी में विभिन्न प्राकृतिक द्रव्य प्रयुक्त होते हैं जिनका उल्लेख पद्धति की विभिन्न मेटेरिया मेडिका, रेपेर्टरी तथा भेषज संहिताओं में उपलब्ध है।

होमियोपैथी, जिसको सदृश विधान चिकित्सा पद्धति भी कहा जाता है, इसका अपना इतिहास लगभग दो शती पूर्व जर्मनी से डॉ० हैनिमैन से प्रारम्भ होता है। इस पद्धति के जनक डॉ० सामुवेल हैनिमैन का जन्म १० अप्रैल सन् १७५५ ई० को तत्कालीन जर्मन साम्राज्य के अन्तर्गत सेक्सनी प्रान्त के माइसेन नामक एक गाँव में हुआ था। डॉ० हैनिमैन शैक्षणिक रूप से आधुनिक चिकित्सा शास्त्र—ऐलोपैथी के उच्च पदवीधारी चिकित्सक थे। परन्तु उनकी रुचि एवं अनुसंधान प्रवृत्ति ने इस चिकित्सा पद्धति के प्रवर्त्तक का श्रेय उनको ही दिया। डॉ० हैनिमैन ने सर्वप्रथम औषधियों का निर्माण किया तथा सफल प्रयोगों के द्वारा उनकी उपादेयता मानव जाति हेतु स्थापित की। उन्होंने "सिमिलि सिमिलिबस क्यूरनतूर" (समं समे शमयते) सिद्धान्त को इस चिकित्सा पद्धति के रूप में प्रतिपादित किया तथा **"आर्गेनान ऑफ मेडिसन"** शीर्षक से ग्रन्थ रचना भी की। होमियोपैथी के विकास में डॉ० कान्सटेनटाइन हीयरिंग (सन् १८००–१८८०, अमेरिका, ग्रन्थकार –**"डॉमेस्टिक फिजिशियन"** तथा **"गाइडिंग सिम्पटम्स"**), डॉ० टी०एफ० एलन (सन् १८३७–१९०३, अमेरिका, ग्रन्थकार **एनसाइक्लोपीडिया**

ऑफ प्योर मेटेरिया मेडिका" तथा **"हैन्डबुक ऑफ मेटेरिया मेडिका"**), डॉ० जेम्स टाइलर केन्ट (सन् १७४६-१६१०, अमेरिका, ग्रन्थकार—**"मेटेरिया मेडिका"**, **"रेपेर्टरी"** तथा **"फिलोसाफी"**), डॉ० जॉन हेनरी क्लार्क (सन् १८५३-१६३१, ब्रिटेन, ग्रन्थकार—**"डिक्शनरी ऑफ प्रैक्टिकल मेटेरिया मेडिका"** तथा **प्रेसक्राइबर"**) और डॉ० सी०एम० बोगर (सन् १८६१-१६३५, ग्रन्थकार —**"सिनोप्टिक की ऑफ दि मेटेरिया मेडिका"**, **"दि टाइम्स ऑफ रेमेडिज एण्ड मून फेजेज, एडिसन टू केन्टस रेपेर्टरी"** तथा **"बोइनिनधसन्स केरेक्टेरिस्टिक्स एण्ड रेपेर्टरी"**) का सहयोग सराहनीय है जिसके फलस्वरूप होमियोपैथी जर्मनी से अमेरिका, ब्रिटेन तथा विश्व के अन्य देशों में फैल गयी। भारत में होमियोपैथी सन् १८३५ ई० में प्रारम्भ हुयी जिसका श्रेय डॉ० हार्निग वर्जर को है।

होमियोपैथी का सिद्धान्त 'समं समे शमयति' सूत्र में निहित है। होमियोपैथी का शाब्दिक अर्थ है सदृश विधान अर्थात् स्वस्थ शरीर में यदि विष की मात्रा में कोई दवा सेवन कर ली जाय तो रोग के लक्षण स्पष्ट हो जाते हैं और यही लक्षण उस औषधि के भी हैं। जब किसी रोग में ये सब लक्षण प्रकट होते हैं तो उसमें शक्तिकृत यही औषधि प्रयोग करने पर रोग लक्षण लुप्त हो जाते हैं।

भेषज वह द्रव्य है जिसका आन्तरिक अथवा बाह्य व्यवहार स्वरूप शारीरिक विकार दूर हो जाते हैं। होमियोपैथी भेषजों को पादपों जन्तुओं, सूक्ष्मजीवों, रसायन तथा अन्य प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त किया जाता है तथा उनकी प्राप्ति अनुरूप निम्न रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है—

१. **पादपों से प्राप्त भेषज द्रव्य**—इस वर्ग में औषधि सम्पूर्ण पादप, अथवा उसके विभिन्न भागों—मूल, पर्ण, पुष्प, फल, बीज आदि से तैयार की जाती है। उदाहरण—**स्ट्रिकनस नक्सवोमिका** (नक्स वोमिका), **एकोनाइट नेपेलस** (एकोनाइट), **एट्रोपा बेलाडॉना** (बेलाडॉना) आदि।

२. **जन्तुओं से प्राप्त भेषज द्रव्य**—इस वर्ग में औषधियां विभिन्न जन्तुओं, कीटों आदि से निर्मित होती हैं। उदाहरण—सर्प विष (सेनक्रिस कॉन्टॉर्टिक्स, नाजा, वाइपर टोर्वा आदि), मकड़ी विष (आरनिया डीयडेमा, थेरिडियॉन, टेरिनटूला क्यूबेनसिस आदि), कीटों (एपिस मेलिफिका, ब्लैटा ऑरियेन्टेलिस, पेडिकूलस आदि), लैक कैनियम, लैक फेलिनम, मोसचस, पाइरोजिनम आदि विभिन्न जन्तुओं के अवयवों से प्राप्त होती हैं।

३. **सूक्ष्म जीवों से प्राप्त भेषज द्रव्य**—इस वर्ग में भेषज द्रव्य सूक्ष्म जीवों से तैयार किये जाते हैं। उदाहरण - बेसिलिनम, हाइड्रोफोबिनम, सोरिनम, सिफिलिनम, ट्यूबरक्यूलिनम आदि।

४. रसायनों से प्राप्त भेषज द्रव्य—इस वर्ग में भेषज द्रव्य अकार्बनिक तथा कार्बनिक रसायनों से तैयार किये जाते हैं। उदाहरण—

अकार्बनिक रसायन—तत्व-ब्रोमिनम, क्लोरिनम, सिलिनियम;
अम्ल—एसिडम सल्फ्यूरिकम, एसिडम नाइट्रिकम;
धातु—फेरम, कोबाल्टम, स्टेनम;
लवण—नेट्रम मूर, काली मूर, फेरम फास;
क्षार—एमोनियम कॉस्टिकम, नेट्रम कॉस्टिकम;
कार्बनिक रसायन—एल्कॉलाएड-बेरबेरिन, एट्रोपिन, मॉरफिन;
ग्लाइकोसाइड—एडोनिडिन, डिजीटोनिन, सेनॉसाइड;
स्टीरॉयड—कॉलिस्टिरॉल;
टरपिन्स—कैम्फर, मैन्थॉल;
रेजिन—एबिज नाइग्रा, पाइनस लेम्बेरटियना;
एसेनसियल ऑयल—सैण्डल वुड आयल;
अम्ल—एसिडम पिकरीकम, एसिडम सारकोलैक्टिकम;
फैटी अम्ल तथा तैल—कैस्टर ऑयल, कॉड लीवर आयल।

५. विभिन्न प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त भेषज द्रव्य—इस वर्ग में भेषज द्रव्य विभिन्न प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त किये जाते हैं। उदाहरण—चुम्बक, एक्स-रे, विद्युत, ताप आदि।

होमियोपैथिक द्रव्य मूल अरिष्ट और विचूर्ण रूप में तैयार किये जाते हैं। वनस्पति, जन्तुओं आदि अन्य स्रोतों से प्राप्त द्रव्य को सुरासार के योग से साधारणतः अरिष्ट तैयार किया जाता है। धातु पदार्थ चीनी के साथ खरल में घोट कर विचूर्ण रूप में तैयार किये जाते हैं। मूल अरिष्ट का 'क्यू' तथा विचूर्ग का 'एक्स' चिह्न है। मूल औषधि को दूध की चीनी के साथ खरल में घोटकर तथा फिर सुरासार मिलाकर दाशमिक तथा शततमिक क्रम में तैयार किया जाता है। इसके अतिरिक्त आसवित जल, ग्लीसरीन, ऑलिव तेल आदि के माध्यम से भी औषधि प्रयोग की जाती है।

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने सन् १९६२ ई० में होमियोपैथिक भेषज संहिता समिति की स्थापना होमियोपैथिक भेषज द्रव्यों की निर्माण पद्धति एवं गुणवत्ता के मानकीकरण हेतु की थी। समिति ने होमियोपैथिक भेषज संहिता प्रयोगशाला गाज़ियाबाद की सहायता से भेषज संहिता, जिसमें की भेषज द्रव्यों का संकलन है, चार भागों में प्रकाशित कर भारतीय होमियोपैथी को वैज्ञानिक प्रगति दी है।

————

पर्यावरण गीत—

ऋग्वेद में लिखा है सुनो, औषधि है जल,
करते हैं इसका आचमन मिलता है इससे बल।

दूषित न होने पाय नदी कूप का यह जल,
बस्ती का, फैक्टरी का बहाओ न इसमें मल।

जो चाहते हैं आप इज़ाफ़ा हो उम्र में,
बीते न सारी ज़िन्दगी मर्ज़ों की फ़िक्र में।

आबो-हवा-ज़मीं की पाक-साफ कीजिये,
दूषण के जो सबब हैं उन्हें दूर कीजिये।

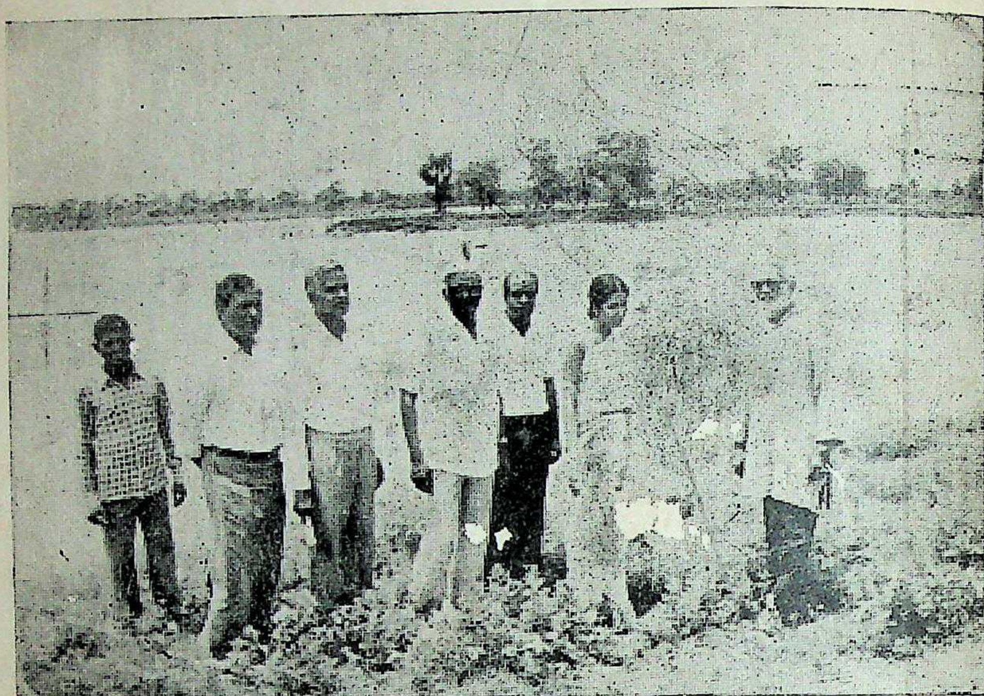
जीने के लिये जल है बहुत क़ीमती घटक,
दूषण से इसके ज़िन्दगी हो जायेगी भटक।

—वि० शंकर

जल—कीमती घटक

पर्यावरण गीत—

गंगा—खेले हैं इसकी गोद में !



लगता है कि गंगा से है कुछ रिश्ता पुराना।
सदियों से गाते आये हैं हम इसका तराना ।।
गंगा के किनारे ही बसी अपनी बस्तियाँ।
गंगा में बहाते रहे हम अपनी अस्थियाँ ।।
मरने के बाद भी था ज़रूरी यूँ नहाना।
सदियों से...।।
गंगा को हमने मां नहीं ऐसे ही कह दिया।
खेले हैं इसकी गोद में इसने बड़ा किया ।।
इसको ही मानते रहे हम अपना खज़ाना।
सदियों से...।।
आई हैं सींचती यह ज़मीं अपने देश की।
इसने ही बुझाई है आग सबके पेट की ।।
इससे ही मयस्सर हुआ दो जून का खाना।
सदियों से...।।
ये लहलहाते खेत और सब्ज़ सरज़मीं ।
गंगा के दम से मुस्करा रहें हैं ये सभी ।।
चलता रहा इनसे ही है बस जीना-जिलाना ।
सदियों से...।।

—फारिग़
(वि० श०)

ओ३म्

आर्य भट्ट

विज्ञान-पत्रिका

सितम्बर, १९८५



प्रधान-सम्पादक :

डा० विजय शंकर

अध्यक्ष : वनस्पति विज्ञान विभाग

परामर्शदाता :

प्रो० सुरेशचन्द्र त्यागी

प्राचार्य : विज्ञान महाविद्यालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

(उत्तर प्रदेश)

मूल्य : रु० ५.००

प्रकाशक—
मेजर वीरेन्द्र अरोड़ा
कुलसचिव
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार (उ०प्र०) २४९ ४०४

मुद्रक—
जैना प्रिन्टर्स, ज्वालापुर

विषय-सूची

विश्व पर्यावरण दिवस समारोह : ५-६ जून, १९८५

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

'समाचारपत्रों से'

'प्रदूषण रोकने के लिए गंगा के किनारे पेड़ लगाए जाएँ'
—नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली
८ जून, १९८५

× × ×

'गंगा के किनारे विद्युत-शवदाहगृहों की शृंखला बनाने का सुझाव'
—दैनिक जागरण, मेरठ
८ जून, १९८५

× × ×

'पर्यावरण अपकर्ष रोकने हेतु वृक्षारोपण, विद्युत-शवदाहगृह एवं ट्रीटमेंट प्लांट के लिये सिफारिश'
—शक्ति संदेश, हरिद्वार
८ जून, १९८५

× × ×

'गंगा प्रदूषण—कारण एवं निवारण'
—द हॉक (अंग्रेजी साप्ताहिक)
७ जून, १९८५

× × ×

'गंगा की शुद्धता हेतु किये जाने वाले उपायों पर परिचर्चा सम्पन्न'
—नार्दन इंडिया पत्रिका, लखनऊ
रविवार ९ जून, १९८५

सम्पादकीय —

गंगा को स्वच्छ कैसे रखा जाये : ऋषिकेश-हरिद्वार

गंगा का पानी स्वच्छ रहे, प्रदूषित न हो, इसके लिये अनेक स्तरों पर प्रयास हो रहे हैं। सेन्ट्रल गंगा अथॉरिटी ने सर्वप्रथम ऋषिकेश-हरिद्वार क्षेत्र में आगामी कुम्भ को दृष्टि में रखते हुए गंगा को साफ करने का निर्णय लिया है। गंगा-शिवालिक का यह क्षेत्र पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण की दृष्टि से और धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं रोचक है। इस क्षेत्र में पर्वत-श्रृंखलाओं के साथ-साथ गंगा जैसी पवित्र नदी है, नहरें हैं, शहरी एवं ग्रामीण बस्तियाँ है, छोटे-बड़े अनेक उद्योग हैं।

यह क्षेत्र अनेक आस्थाओं, मान्यताओं और भावनाओं से जुड़ा हुआ है। यहाँ देश-विदेश से लोगों का तांता प्रायः पूरे वर्ष लगा रहता है। यहाँ देश भर से लोग आकर मृतकों की अस्थियाँ प्रवाहित करते हैं। नाना प्रकार की वनस्पति, जिनमें औषधीय पौधे, इमारती लकड़ी वाले वृक्ष और आर्थिक दृष्टि से अन्य उपयोगी पौधे सम्मिलित हैं, दूर-दूर तक अपना साम्राज्य स्थापित किये हुए थीं। कितनी ही आयुर्वेदिक फार्मेसी यहाँ औषधि-निर्माण में लगी हुई हैं। भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लि० एवं आई० डी० पी० एल० लि० जैसे दो बड़े कारखाने यहाँ शोभायमान हैं। इनके उत्प्रवाह क्रमशः गंगा एवं ऊपरी गंगा नहर में मिलते हैं। बस्ती के अनेक गन्दे नाले, पहाड़ियों से उतरती हुई अनेक छोटी-बड़ी बरसाती धाराएँ नीचे शहर की गन्दगी को समेटते हुए गंगा के जल को मैला करते हुए दृष्टिगोचर हैं।

इस क्षेत्र में गंदे नालों के अतिरिक्त प्राकृतिक संसाधनों का अन्धाधुन्ध उपयोग पर्यावरण में गिरावट के मुख्य कारणों में से एक है। अनेक औषधीय पौधे विरल होते जा रहे हैं। कुछ तो स्थानीय रूप से समाप्तप्रायः हैं। इमारती एवं ईंधन, लकड़ी के वृक्ष बहुत बड़ी संख्या में काट लिये गये हैं। नंगी होती हुई पहाड़ियाँ इनके प्रमाण हैं। ये मानव को चेतावनी दे रही हैं कि यदि वह भूमि

को नंगा करेगा तो स्वयं भी एक दिन उन्हीं की तरह नंगा-भूखा और प्यासा हो जायेगा। पानी होगा पर पी नहीं सकेगा, जैसे नंगी भूमि पर पानी गिरता है किन्तु रुक नहीं पाता है। अरस्तु ने एक बार कहा था : "मिट्टी पौधों का पेट है।" क्या हम मिट्टी को लात मारकर स्वयं अपने पेट पर लात खाने से बच सकते हैं ? नहीं। कुछ समय पूर्व भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लि० के एक मैनेजर की एम्बेसेडर कार हरिद्वार में ललताराव नाले में कुछ देर की वर्षा से ही बह गयी। इसी प्रकार अगस्त १९८५ में हरिद्वार में और पास ही बिजनौर जिले में बढ़ते हुए भूस्खलन एवं पहाड़ीधाराओं (नालों) द्वारा गंगा-तट पर बसे ग्रामों की भूमि काटना गिरती हुई पारिस्थितकी के ही परिणाम हैं।

आज स्थिति यह है कि शिवालिक की पहाड़ियाँ बढ़ते हुए भूमि अपरदन की मिसाल बनी हुई हैं। भूमि की जलशोषण क्षमता इतनी घट गई है कि इधर वर्षा हुई और उधर प्रायः सारा पानी मिट्टी को बहाता हुआ नीचे बस्ती में, सीवर के अन्दर, नहर में एवं सड़कों पर मिट्टी की एक बड़ी मात्रा जमाता चला जाता है। मिट्टी से भरते हुए सीवर लाइन की उत्प्रवाहवहनक्षमता प्रभावित होती है और उत्प्रवाह ऊपर निकलकर स्थान-स्थान पर गंगा के पवित्र जल में मिलकर उसे गंदा करते हैं। अतः इस क्षेत्र में गंगा को स्वच्छ रखने के जो प्रयास हो रहे हैं उनमें उक्त बातों का ध्यान रखना नितान्त आवश्यक होगा। ऋषिकेश-हरिद्वार में गंगा को प्रदूषण से मुक्त करते समय हमारी नजर केवल गन्दे नालों पर ही टिकी हुई नहीं रह सकती है; पर्यावरण गिरावट के अन्य कारकों पर भी ध्यान आवश्यक है, जैसे भूमि अपरदन, वृक्षों का बेहिसाब काटा जाना, सीवर पम्पिग स्टेशनों का पूरे समय तक न चलना, हरिकी पौड़ी के प्लेटफार्म पर दुकानों का बने रहना, बर्तन साफ करना एवं गन्दगी का गंगा जल में बहाना आदि। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में गंगा समन्वित योजना (भारत सरकार पर्यावरण विभाग) ने जो तीन रिपोर्ट गंगा पर्यावरण पर तैयार एवं प्रकाशित की इनमें ऋषिकेश, हरिद्वार एवं बिजनौर-सहारनपुर क्षेत्रों में अपकर्ष के कारणों एवं उनके उपचार के लिए विनम्र सुझाव दिये गये हैं (१९८४)। इसके लिए मुख्य अन्वेषक गंगा योजना ने ओ० सी० हरिद्वार नगरपालिका श्री दूबे; डा० अभयसिंह जिला स्वास्थ्य अधिकारी हरिद्वार, सेनीटरी इन्सपेक्टर हरिद्वार; सुपरिन्टेन्डिंग इन्जीनियर पूर्वी गंगा नहर, श्री जैन; ऋषिकेश नगरपालिका के कर्मचारी, हरिद्वार के समाजसेवी श्री ओम्प्रकाश के साथ सभी स्थानों का मौके पर जाकर अध्ययन एवं विचार-विमर्श किया। जलनिगम के अधिशासी अभियन्ता श्री ओ०पी० वीर से भी हरिद्वार की प्रदूषण की समस्या पर बिचार-विमर्श हुआ। उ०प्र० पोल्यूशन कन्ट्रोल बोर्ड के चैयरमेन श्री त्यागी से भी बात हुई।

गंगा के प्रदूषण का एक अन्य स्रोत वे श्मशान हैं जहाँ अधिक संख्या में शव-दाह किये जाते हैं। इस प्रदूषण को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि उपर्युक्त

स्थानों पर विद्युत शवदाहगृह बनाये जायें। पिछले ५–६ जून को श्री कुलपति जी की प्रेरणा से विश्वविद्यालय में गंगा प्रदूषण राष्ट्रीय संगोष्ठी हुई एवं हरिकी पौड़ी पर एक पर्यावरण प्रदर्शनी लगाई गयी। संगोष्ठी ने प्रदूषण को रोकने एवं पर्यावरण को समृद्ध करने के लिए कुछ संस्तुतियाँ प्रस्तुत कीं। इनमें वृक्षारोपण के लिए उपयुक्त पौधों की सूची दी गई, सिन्थैटिक कीटनाशी एवं डेटरजेन्ट के स्थान पर पौधों से प्राप्त उत्पादों के प्रयोग पर बल दिया गया। नदी–तट, पहाड़ियों एवं खाली स्थानों पर सुनियोजित वृक्षारोपण करने की सिफारिश की गई। बायलॉजकिल ट्रीटमेंट प्लांट के निर्माण एवं सौर्य ऊर्जा के उपयोग पर बल दिया गया। यह संस्तुतियाँ इस अंक में विस्तार से दी जा रही हैं। गंगा को शुद्ध और साफ रखने का प्रारूप बनाते समय इनको दृष्टि में रखना आवश्यक होगा। नदी, पहाड़, शहर, जंगल, खेत आदि किसी स्थान के पर्यावरण को प्रदूषण से मुक्त करने में, उसमें हो रही गिरावट को रोकने और उसे समृद्ध बनाने में उस स्थान की सम्पूर्ण तस्वीर दूर तक हमारे सामने होनी चाहिए। इसे टुकड़ों में देखने से काम नहीं चलेगा। अतः गंगा को स्वच्छ करने के प्रयास में निगाह अगर गंगा में गिरते हुए नालों तक ही सीमित है और अन्य बातें ध्यान में नहीं हैं तो सफलता सीमित ही मिलेगी।

—वि० शंकर

हमारे वैज्ञानिक—

डा० वाई० नायुडम्मा

हमारे देश के ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिक और वैज्ञानिक एवं औद्योगि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के भूतपूर्व महानिदेशक डा० वाई० नायुडम्मा का आकस्मिक निधन गत् २३ जून को आयरलैण्ड के समुद्रतट के निकट हुयी कनिष्क विमान दुर्घटना में हुआ। आप अन्तर्राष्ट्रीय विकास ग्रुप की एक विशेष बैठक में भाग लेकर मान्ट्रियल (कनाडा) से नई दिल्ली लौट रहे थे। राष्ट्रीय चर्म अनुसंधान संस्थान मद्रास के संस्थापक सदस्यों में प्रमुख डा० नायुडम्मा देश के उन थोड़े-से वैज्ञानिकों में थे जिन्होंने सी०एस०आई०आर० को एक मजबूत धरातल प्रदान किया।

१० सितम्बर १९२२ को जन्मे डा० येलावर्थी नायुडम्मा का शैक्षणिक रिकार्ड श्रेष्ठ था। औद्योगिक रसायन में स्नातक की परीक्षा १९४३ में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण करने के पश्चात आपने मद्रासस्थित चर्म प्रौद्योगिकी संस्थान में कार्य प्रारम्भ किया। इस क्षेत्र में उच्च अध्ययन एवं विशेष प्रशिक्षण हेतु आप १९४६-४७ में ब्रिटेन एवं १९४७-५१ में अमेरिका गये।

विदेशों से विशेष दक्षता प्राप्त कर लौटने के पश्चात आपने चर्म अनुसंधान संस्थान को एक स्वतन्त्र और राष्ट्रीय शोध प्रयोगशाला का स्वरूप प्रदान करने में समुचित सहयोग दिया। १९५८ में आप इस संस्थान के निदेशक नियुक्त हुये, इनके संरक्षकत्व में संस्थान को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुयी।

१९७१ से १९७७ के मध्य ६ वर्षों तक महानिदेशक पद पर कार्य करते हुये, आपने वैज्ञानिक एवं औद्योगिकीय अनुसंधान परिषद को नई दिशा प्रदान की। उन्होंने उद्योगों में वैज्ञानिक तकनीक को प्रयोग करने हेतु समुचित सुविधायें उपलब्ध करायीं। महानिदेशक पद से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात आप पुनः मद्रास चले गये और अपना अनुसंधान कार्य जारी रक्खा। १९८१ में कुछ समय तक आप जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के कुलपति रहे।

१९७१ में पद्मश्रीप्राप्त, डा० नायुडम्मा खाद्य एवं कृषि संगठन के परामर्शदाता रहे। वे संयुक्त राष्ट्र संघ की अन्य अनेक विकास समितियों से सम्बद्ध थे। आप आन्ध्र प्रदेश सरकार के वैज्ञानिक एवं तकनीकी परिषद के उपाध्यक्ष पद पर भी रहे। डा० नायुडम्मा का यह दृढ़ विश्वास था कि वैज्ञानिकों का कार्यक्षेत्र सिर्फ प्रयोगशालाओं तक सीमित न हो। उन्होंने शोध को दैनिक जीवन और विशेषकर औद्योगिक प्रगति से जोड़ने हेतु महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उनके असामयिक निधन से देश ने एक अप्रतिम वैज्ञानिक, महान तकनीकी विशेषज्ञ और योग्य प्रशासक खो दिया।

*



पर्यावरण दिवस तथा गंगा प्रदूषण संगोष्ठी पर मुख्य अतिथि के रूप में पधारे हुए मेरठ के आयुक्त श्री बी० के० गोस्वामी वृक्षारोपण करते हुए। डा० विजय शंकर, डा० बी डी० जोशी तथा कुलसचिव निकट खड़े हैं।



पर्यावरण दिवस तथा गंगा प्रदूषण संगोष्ठी के अवसर पर हरि की पैड़ी पर विश्वविद्यालय द्वारा लगाई गई प्रदर्शनी का अवलोकन करते हुए पूर्वसांसद् आचार्य भगवानदेव, कुलपति श्री हूजा, गंगा-सभा के अधिकारी तथा यात्रीगण ।

राष्ट्रीय संगोष्ठी : गंगा प्रदूषण

वनस्पति विज्ञान विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

* संस्तुतियाँ *

गंगा प्रदूषण पर विश्वविद्यालय में जून ५-६, १९८५ को हुई संगोष्ठी में सम्पूर्ण गंगा क्षेत्र में विद्यमान पर्यावरण अपकर्ष को, जिसमें प्रदूषण भी शामिल है, दूर करने के लिये एवं गंगा पर्यावरण के संरक्षण एवं समृद्धि के लिये विभिन्न विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिकों, जल निगम एवं कारखानों के इन्जीनियर्स, नगरपालिका एवं स्वास्थ्य अधिकारियों, राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ एवं एन्टीबायोटिक्स फैक्टरी के वैज्ञानिकों आदि ने समस्या के विभिन्न पहलुओं पर शोधपत्र एवं मौखिक रूप से विचार प्रस्तुत किये। संगोष्ठी का उद्घाटन मेरठ मण्डल के आयुक्त श्री वी० के० गोस्वामी ने किया। विश्वविद्यालय के कुलपति श्री जी०बी०के० हूजा, आई०ए०एस० (रिटायर्ड) ने वैज्ञानिकों तथा अन्य अतिथियों का स्वागत किया। डा० विजय शंकर इस संगोष्ठी के संयोजक थे। आयोजन में डा० आर ०पी० एस० सांगू, शोध वैज्ञानिक; डा० अरुण आर्य तथा गंगा प्रोजेक्ट एवं वनस्पति विज्ञान विभाग के कर्मचारियों का योगदान सराहनीय रहा। संगोष्ठी के आयोजन में कुलसचिव मेजर वीरेन्द्र अरोड़ा, उप-कुलसचिव डा० श्यामनारायण सिंह एवं वित्त अधिकारी श्री बी०डी० भारद्वाज का विशेष योगदान रहा।

संगोष्ठी एवं प्रदर्शनी हेतु वित्तीय अनुदान निम्नलिखित से प्राप्त हुआ—

१—पर्यावरण विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली।

२—विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली।

३—वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली।

४—विज्ञान एवं पर्यावरण विभाग, उ०प्र० सरकार।

संगोष्ठी में भावी कार्यक्रम के लिये निम्नलिखित संस्तुतियाँ प्रस्तुत की गई—

१—नगरपालिकायें एवं उद्योग बायोलोजिकल ट्रीटमेन्ट प्लान्ट्स का निर्माण

कराकर एफ्लूएण्ट्स को उपचारित करें और जहाँ संभव हो ईंधन, गैस और उर्वरक का उत्पादन करके एफ्लूएण्ट्स को उपयोगी बनायें।

२—नदियों के किनारे एवं पहाड़ियों पर सघन वृक्षारोपण करके भूअपर्दन को रोकें एवं भूमि की जलावशोषण क्षमता को बढ़ायें। इनमें औषधीय पौधे भी शामिल हों।

३—गंगा के किनारे स्थित उन शहरों में, जहाँ अधिक संख्या में शवदाहन किया जाता है, विद्यु त शवदाहगृहों के निर्माण कराकर लकड़ी की बचत की जाये, जिससे जंगलों की कटाई कम हो सके। इसके लिये जनता को शिक्षित करने की आवश्यकता होगी। लोगों की धार्मिक एवं परम्परागत भावनाओं का आदर करते हुए विद्यु त शवदाहगृहों का वातावरण अत्यन्त प्राकृतिक एवं स्वच्छ रखा जाये। जहाँ विभिन्न प्रकार के पौधे जिसमें धार्मिक पौधे भी शामिल हों जैसे पीपल, बरगद, आम, तुलसी, रराइथ्राइना, नीम, कनेर, बेल, अमलतास, गुलमोहर, गुड़हल, गुलाब, चांदनी आदि लगाये जायें। विद्यु त शवदाहगृह में गंगाजल उपलब्ध होना चाहिये जिससे शवों एवं अस्थियों पर गंगाजल छिड़क कर परम्पराओं एवं भावनाओं का आदर हो सके।

४—कीटनाशक सिंथेटिक एवं डिटर्जेण्ट्स से होने वाले प्रदूषण को रोकने के लिये ऐसे पौधों को उगाया जाए (नीम, करंज, पाइरेथ्रम, इण्डियन हार्स चेस्टनर, सहजन, महुआ, रीठा, जंगलजलेबी आदि) जिनसे प्राप्त उत्पाद कीटनाशी डिटर्जेण्ट्स के रूप में काम कर सकते हैं।

५—भारत में सौर-ऊर्जा की कोई कमी नहीं है। अत: यहाँ सौर-ऊर्जा से चलने वाले उपकरणों को प्रोत्साहन देना चाहिये जिसमें किसी प्रकार का प्रदूषण नहीं होता। इनको अपनाया जा सके इसके लिये आवश्यक है कि इनका गांवों और शहरों प्रदर्शन हो और ये कम कीमत एवं आसान किश्तों पर उपलब्ध हों। इनका मुफ्त बांटना भी राष्ट्रीयहित में प्रभावी होगा।

सौर-ऊर्जा के चूल्हे एवं अन्य उपकरण प्रयोग में आने से जनता की ईंधन-लकड़ी पर निर्भरता काफी कम हो सकती है जिससे वृक्षों का कटना रुक सकता है जो वन संरक्षण में प्रभावी होगा जो नितान्त आवश्यक है, यदि हम अगली सर्दी में आशा और विश्वास के साथ कदम रखना चाहते हैं। आज भूमि अपर्दन में वृद्धि एवं बाढ़ के बढ़ते हुए प्रकोप द्वारा नये २ क्षेत्रों को निगलते जाना, जंगलों का एक बड़े क्षेत्र से अन्धाधुन्ध काट कर समाप्त कर देने का परिणाम है। वनों के अन्य भी बहुत से लाभ हैं।

६—इसी प्रकार ईंधन-लकडी के लिये एनर्जी प्लान्टेशंस को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। इनमें यूकेलिप्टस्, सूबबूल, खैर, बबूल की अन्य किस्में, सिरिस, बेर, नीम, आम, बेल आदि शामिल हैं।

७—वैदिक साहित्य एवं पुराणों में ऐसे पौधों का वर्णन मिलता है जैसे कुशा, शैवाल आदि जिनमें पानी को शुद्ध करने की क्षमता बताई गई है। ऐसे पौधों की पहचान एवं सूचीकरण करके शोध द्वारा यह पता लगाना अत्यन्त आवश्यक है कि वे किस सीमा तक प्रदूषित पानी को साफ करने की क्षमता रखते हैं। जिससे उन्हें उपयुक्त स्थानों में लगाने की सिफारिश की जा सके।

८—भूमि पर खाली पड़े स्थानों में एवं सड़कों के दोनों ओर छायादार, फलदार, औषधीय एवं इमारती लकड़ी वाले वृक्ष लगाये जायें, साथ ही सौन्दर्य की दृष्टि से उपयुक्त स्थानों में सुन्दर फूल वाले पौधे लगाना भी उचित होगा। जैसे– नीम, आम, अर्जुन, हरण, बहेणा, साल, बेल, सागौन, शीशम, जामुन, बकायन, पाठल, शहतूत, इमली, पापलर आदि।

९—पर्यावरण शिक्षा की महत्ता को देखते हुये संबन्धित साहित्य सरल भाषा में तैयार करना आवश्यक है। समय-समय पर अपने-अपने क्षेत्र में संस्थायें पर्यावरण प्रदर्शनियों का भी आयोजन करें। जनता के प्रतिनिधियों को पर्यावरण अपकर्ष के विभिन्न पहलुओं एवं उनके उपचारविधि से परिचित होना अनिवार्य होना चाहिये। जिससे वे अपने क्षेत्र में जनसाधारण एवं प्रशासन-तंत्र को शिक्षित कर सकें।

१०—नदियों से नहर निकालते समय इस बात का ध्यान रखा जाये कि नदी में छोड़ा जाने वाला पानी इतना कम न कर दिया जाये जिससे एक छोटा सा नाला भी उसे प्रदूषित कर दे।

११—जनसंख्या को सीमित रखने के लिये उचित पग उठाये जायें।

—विजय शंकर

संयोजक, गंगा प्रदूषण संगोष्ठी
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
वनस्पति विज्ञान विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

कांगड़ी ग्राम विकास योजना

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

१९८१ से, जब से विश्वविद्यालय ने कांगड़ी ग्राम विकास कार्यों को अपने हाथ में लिया है, अब तक ग्राम में अनेक सामाजिक-आर्थिक-शैक्षणिक-भवन निर्माण एवं पर्यावरण सम्बन्धी कार्यक्रम सम्पन्न हुये हैं। इन सभी कार्यक्रमों में जहाँ मान्य कुलपति श्री बलभद्रकुमार हूजा, आई० ए० एस० (अवकाश प्राप्त) प्रेरणा के स्रोत रहे हैं, वहाँ बिजनौर के जिलाधिकारी एवं इनके विकास विभाग के अधिकारियों ने तथा स्टेट बैंक ज्वालापुर ने इस ग्राम के विकास कार्य में अत्यन्त रुचि ली है और महत्वपूर्ण योगदान किया है। पिछले चार वर्ष में जो विभिन्न विकास कार्यक्रम ग्राम में सम्पन्न हुये हैं, वे इस प्रकार हैं—

१—सड़क निर्माण—

मुख्य सड़क (हरिद्वार–बिजनौर) से गाँव को जोड़ती हुई एवं ग्राम में होती हुई गंगा के तट तक ७११ मीटर लम्बी सड़क का निर्माण। कुल लागत रु० ८६,०००/– आई।

२—निर्बल वर्ग आवास—

पाँच निर्बल वर्ग आवास का निर्माण हुआ। इनके लिए प्रति आवास रु० १९२७/– का अनुदान दिया गया।

३—हरिजन पेयजल कूप—

एक हरिजन पेयजल कूप का निर्माण। इसमें कुल व्यय राशि रु० १७,८४५/– आई है। कूप निर्माण ठीक नहीं हुआ है।

४—बायो गैस—

ग्रामवासियों ने दो बायो गैस प्लान्ट लगाये।

५—शौचालय—

सी०बी०आर०आई० रुड़की ने एक मॉडल–शौचालय विद्यालय परिसर में बनवाया। जिससे ग्रामवासी इस प्रकार के शौचालय अपने निवास में बनवाने के लिए प्रेरित हों।

६—दुकानें—

हरिजनों के लिए चार दुकानों का निर्माण हुआ जिनमें इस समय क्रमशः कपड़े, परचून, नाई, कपड़ा-सिलाई का कार्य चल रहा है। दुकानों के निर्माण पर कुल व्यय रु० ३६,५००/– आया।

७—जनमिलन केन्द्र—

विद्यालय के समीप ही जनमिलन केन्द्र का निर्माण पूर्ण हुआ।

८—ग्राम में एक पक्के चबूतरे का निर्माण हुआ। इसके लिये रोटरी क्लब हरिद्वार ने रु० १०००/– का अनुदान दिया।

९—गोवर्धन शास्त्री स्मृति पुस्तकालय—

ये पुस्तकालय मान्य कुलपति जी के पूज्य पिताजी श्री गोवर्धन शास्त्री, जो स्वामी श्रद्धानन्द जी के समय में विद्यालय के हैडमास्टर थे, की स्मृति में सन् १९८१ में खोला गया। इसका उद्घाटन विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी ने किया। इसमें १००० से ऊपर पुस्तकें एवं पत्रिकाएँ हैं जिनका ग्रामवासी लाभ उठा रहे हैं। संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट, जयपुर पुस्तकालय के लिये रु० ५००/– प्रतिवर्ष देती है।

१०—प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र—

विश्वविद्यालय ने ग्राम में एक प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र स्थापित किया। प्रयास यह है कि ग्राम में कोई भी व्यक्ति अशिक्षित न रहे।

११—पर्यावरण कार्यक्रम—

गंगा और सिद्धस्रोत से होने वाले भूमि कटाव को रोकने के लिए उपयुक्त वनस्पतियों के रोपण का कार्यक्रम बनाया गया। ये कार्यक्रम अन्य ग्रामों जैसे– जगजीतपुर, गाजीवाली, पीली आदि में भी गंगा समन्वित योजना (भारत सरकार पर्यावरण विभाग) गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की ओर से डा० विजय शंकर के निर्देशन में चलाया जा रहा है। ग्राम में एक पर्यावरण गोष्ठी तथा प्रदर्शनी का कार्यक्रम भी वर्ष १९८३ में किया गया। जुलाई १९८५ में गंगा समन्वित योजना ने अपनी नर्सरी से ग्राम में गंगा-तट पर १००० पौधे लगाये जिससे भूमि कटाव रोका जा सके।

१२—वृक्षारोपण—

डेढ़ एकड़ भूमि में यूकेलिप्टस के पौधे लगाये गये। खेतों के बीच में सूबबूल आदि के वृक्ष लगाने की प्रेरणा ग्रामीणों को दी गई।

१३—सब्जी की खेती—

१९८१ से पूर्व ग्राम में सब्जी की खेती उद्योग के रूप में नहीं होती थी। कांगड़ी ग्राम विकास योजना के निदेशक ने ग्रामवासियों को सब्जी की खेती करने के लिये प्रेरित किया। क्योंकि ये ग्राम हरिद्वार शहर के नजदीक पड़ता है, जहाँ सब्जी पूरे वर्ष मंहगी रहती है। जिन ग्रामीणों ने इस प्रोग्राम को अपनाया, उन्हें प्रति एकड़ रु० ३६००/- प्रति वर्ष आय में वृद्धि हुई।

१४—ऋण सुविधा—

प्रारम्भ में ग्रामवासी रोजगार के लिये ऋण लेने को उद्यत नहीं होते थे। जब उन्हें इसके लाभ बताये गये तब धीरे-धीरे ग्रामवासी आगे आये और अब तक ग्राम के एक तिहाई परिवारों ने ऋण-सुविधा का लाभ उठाया है। ग्राम में १६० परिवार हैं। इनमें से प्रायः १/३ परिवारों ने ऋण सुविधा का लाभ उठाकर अपनी मासिक आय में ३०० से ४०० रु० तक वृद्धि की जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ।

जिन अनेक रोजगार कार्यक्रमों के लिये ऋण लिये गये हैं, वे इस प्रकार हैं—

अ. भैंस पालन
ब. कृषि कार्य हेतु बैल जोड़ी
स. झोटा बुग्गी / घोड़ा बुग्गी
द. रिक्शा
य. प्रोवीजन स्टोर / टी स्टाल
च. गोबर गैस संयंत्र
छ. साईकिल / घोड़ा
ज. नाई की दुकान

स्टेट बैंक ज्वालापुर ने लगभग १ लाख रुपये का ऋण दिया है।

१५—ग्राम में भारत एवं विदेश से जिन व्यक्तियों ने जुलाई १९८१ से अब तक ग्राम के विकास कार्यों में रुचि ली और ग्राम में पधारे, और ग्रामवासियों को उत्साहित किया, वे हैं—

सर्वश्री बलराम जाखड़, अध्यक्ष लोक सभा। श्री आर० वैंकटरमन, कृषि उत्पादन आयुक्त, उत्तर प्रदेश सरकार। श्री ए०के० नारायण एवं कु०ए०के० अहूजा-डिप्टी सेक्रेटरी, मिनिस्ट्री आफ रुरल डेवलपमेंट एण्ड रिकन्सट्रक्शन। श्री अरविन्द वर्मा, आई०ए०एस०, आयुक्त मुरादाबाद मंडल। श्री अनीस अंसारी, जिलाधिकारी, बिजनौर। श्री दर्शन सिंह बैंस, बिजनौर जिलाधिकारी; श्री वीरेन्द्र कुलाधिपति; गुरुकुल कांगड़ी; श्री सत्यव्रत, परिद्रष्टा गु०कां०वि०वि०; श्री सी०जी० फूका साग जापान; श्री सत्यदेव भारद्वाज।

गाँव की जो शक्ल १९८१ में थी वो आज बदली हुई है। ३३% लोगों की आय में रु० ३००–४००/– प्रतिमास की वृद्धि हुई है, गाँव में पक्के मकानों का निर्माण अब होता हुआ दिखाई देता है। मिस्त्रियों को फुरसत नहीं है। अनेक व्यक्ति सूती कपड़े से टेरीकाट पर आ चुके हैं। वे अपने बच्चों को इंगलिश स्कूल में भेजने लगे हैं। जहाँ केवल अनेक परिवारों में केवल दाल से रोटी खायी जाती थी, अब सब्जी प्रारम्भ हो चुकी है। लोगों के रहन-सहन के स्तर में सुधार हुआ है और उनके सोचने–समझने की शक्ति भी तीव्र हुई है।

जिला बिजनौर प्रशासन ने ग्रामों की गलियों में खड़ंजा लगाना एवं सम्पर्क–मार्ग को प्लास्टर करना स्वीकार कर लिया है। इसी प्रकार भूमि संरक्षण विभाग ने ग्रामों को, जिनमें कांगड़ी के साथ श्यामपुर, गाजीवाली, पीली आदि सम्मिलित हैं, बाढ़ से बचाने के लिये ठोकरें बनाना (चेक डेम) स्वीकार किया है।

१५ अगस्त १९८५ को मान्य कुलपति जी ने श्यामपुर में कैम्प किया और रात्रि में भी वहीं रहे। यहाँ ग्रामवासियों से स्थानीय समस्याओं जैसे— बाढ़, जंगली जानवरों से फसल को हानि तथा बिजली के अभाव आदि पर विचार हुआ। इस सम्बन्ध में कुलपति जी ने सम्बन्धित अधिकारियों को लिखा है जिससे इस अंचल के ग्रामों को राहत मिल सके। कुलपति जी के साथ के० देशराज, स० मुख्याधिष्ठाता; गंगा समन्वित योजना के श्री ए०पी० रस्तोगी एवं प्रौढ़ शिक्षा विभाग के श्री मलिक ने भी गाँवों में कैम्प किया। इस अवसर पर श्यामपुर में वृक्षों की पौध भी लगाई गईं।

भावी कार्यक्रम

१. रेशम कीट उद्योग
२. कुकुरमुत्ता की खेती
३. सौर ऊर्जा चूल्हा/गोबर गैस प्लान्ट
४. कृषि उत्पादन में वृद्धि योजना
५. सिंचाई के साधनों में वृद्धि
६. भूमि कटाव रोकने की योजना
७. विद्युत सुविधायें प्राप्त कराना
८. ट्राइसेम योजना लागू करना
९. ग्राम में पक्की सड़क
१०. सफाई योजना
११. वृक्षारोपण, फलदार, छायादार, औषधीय एवं भूमिकटाव रोकने वाले पौधे।

—निदेशक : डा० विजय शंकर
अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग
गु०कां० विश्वविद्यालय।

क्या दिया ? क्या लिया ?

—कुमार हिन्दी

गंगा के डेल्टा पर खड़ा
मैं सोचता हूँ,
मैंने क्या दिया, क्या लिया ?
दिया क्या ?
मल-मूत्र, बलगम, बाल, पसीना,
कुछ श्वास छोड़े, कार्बनडाइआक्साइड पैदा की,
पानी को गंदला किया, कागज़ काले किये।
लिया ? लिया ही लिया ? लेता ही रहा।
आक्सीजन ली,
दूध लिया, फल लिये,
शहद लिया, रस लिया—
आँखों से रस लिया,
कानों से रस लिया, नाक से रस लिया,
सब अंगों से रस ही रस लिया,
लिया ही लिया।
दिया क्या ? लेता ही रहा।

गंगे, तूने क्या दिया, क्या लिया ?
तूने भी तो धरती को जी-भर कर चूसा,
गङ्गोत्तरी से लेकर दहाने तक,
राह में पड़ते नदी-नालों का जल बटोरा,
खरबों लोगों की अस्थियाँ बटोरीं,
जब-जब तुम्हें कोप आया, हज़ारों गाँव तबाह किये,
जिन्दा लोगों, बच्चियों, स्त्रियों, मवेशियों को अपनी गोद में समेटा,
वृक्षों-पौधों, फसलों को लपेटा,
और अपने खूनी आँचल का इस तरह रक्तिम श्रृंगार करते हुए,
अपने को संवारते,
तुम चलती गई, बढ़ती गई,
पिया मिलन को।

हूँ ! मैं तो तुम्हारी सेवा में प्रतिक्षण हाजिर हूँ।
मेरा जैसा चाहो उपयोग करो,
जैसा चाहो उपभोग करो,
पर तुम तो काहिल हो, काहिल,
केवल वाग्वीर हो,
पन्ने काले करने में माहिर हो,
ख्याली पुलाव पकाने में दक्ष हो।
कहाँ गया वह भगीरथ ?
जो दुर्गम पहाड़ काट कर,
स्वर्ग से मेरा डोला उठा लाया,
मेरा उपयोग करने के लिये,
मेरा उपभोग करने के लिये।
यहाँ तो बस एक ही हुआ भगीरथ !
क्या तुम उसकी सन्तान हो ?
तो फिर सोचो, तुमने
क्या दिया ? क्या लिया ? क्या किया ?

रूम कूलर

—हरिशचन्द्र ग्रोवर
रीडर एवं अध्यक्ष
भौतिक बिज्ञान विभाग

गरमी के दिनों में धरती सूरज की धूप से तपती रहती है, हवा बहुत गरम हो जाती है और गरमी के कारण लोगों का बुरा हाल हो जाता है। पहले भीषण गरमी से बचने के लिए लोग पंखों का इस्तेमाल करते थे, लेकिन आजकल पंखों के साथ-साथ कूलरों का इस्तेमाल भी अधिक होने लगा है। कूलर न केवल हमें ठण्डी हवा ही देता है बल्कि कमरे के तापमान को भी कम कर देता है।

एक साधारण रूम कूलर चौरस आकार का होता है, इसे अधिकतर घर या दफ्तर के बाहर की तरफ खुलने वाली खिड़की में इस तरह लगाया जाता है कि बाहर की हवा सीधी भीतर न आ सके।

कूलर के भीतरी हिस्से में दायें, बायें और पीछे अर्थात् तीन तरफ खस के परदे लगे होते हैं जिनके ऊपर की ओर नाली लगी होती है। इन नालियों में छोटे-छोटे छेद बने होते हैं, जिनसे गिरने वाले पानी से परदे भीगे रहते हैं। कूलर के अन्दर पानी का पम्प लगा होता है जो पानी को तीनों नालियों में पहुँचाता है।

कूलर के नीचे के हिस्से में पानी भरने के लिए टंकी होती है। इस टंकी के एक कोने में फ्लोड वाल्व लगा होता है जिससे टंकी की क्षमता के अनुसार उसमें पानी भर जाता है और यह वाल्व अपने आप बन्द हो जाता है।

कूलर के सामने के हिस्से में लोहे की ग्रिल लगी रहती है। इस ग्रिल को सुविधानुसार ऊपर–नीचे या दायें-बायें किया जा सकता है। इस ग्रिल के पीछे एक्जास्ट फैन लगा होता है। यह एक्जास्ट फैन हवा को भीतर खींचने का काम करता है।

कुछ कूलरो में पंखे और पम्प का खटका अलग-अलग होता है जबकि कुछ कूलरों में दोनों कामों के लिए एक ही खटका होता है।

जब हम पम्प का खटका खोलते हैं तो पानी टंकी में से खस के परदों के ऊपर लगी नालियों में पहुँचने लगता है। उन नालियों में बने छेदों में से वह पानी परदों पर गिरने लगता है जिससे वे नम हो जाते हैं। फिर पंखे का खटका खोला जाता है, पंखा बाहर की गरम हवा को अपनी ओर खींचने लगता है। वह गरम हवा खस के परदों में से होकर भीतर आती है। परदों के नम होने के कारण इनमें से भीतर आने वाली गरम हवा ठंडी हो जाती है। यह ठंडी हवा सारे कमरे में फैल जाती है। इस प्रकार हमें गरमी से छुटकारा मिल जाता है।

टंकी को कम से कम सप्ताह में एक बार जरूर साफ कर देना चाहिए बरना पानी में बदबू तो फैल ही जाती है, साथ ही मच्छर भी हो जाते हैं जिनसे बीमारी होने का डर रहता है। गरमी का मौसम बीत जाने के बाद कूलर के सभी हिस्सों, खास तौर पर टंकी और पंखे को अच्छी तरह साफ करके रखना चाहिए।

साल में एक बार कूलर पर बाहर और अन्दर से पेन्ट भी कर देना चाहिए, इससे कूलर की टंकी में जंग लगने का खतरा नहीं रहता।

कृषि व वानिकी में हितकारी मिट्टी के सूक्ष्म जीव

डा० पुरुषोत्तम कौशिक
वनस्पति विज्ञान विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

अनेक प्रकार के सूक्ष्म जीव भूमि की ऊपरी सतह में रहते हैं, जैसे—बैक्टीरिया, एक्टीनोमाइसीटीज, कवक, शैवाल व प्रोटोजान्ज। बैक्टीरिया की अनेक प्रकार की किस्में जैसे आटोट्रोफिक, जो अपना भोजन स्वयं तैयार करते हैं, हेटरोट्रोफिक जो अपना भोजन मृत, सड़े-गले पदार्थों से प्राप्त करते हैं। मीजोफाइल्ज जो सामान्य तापक्रम यानि २५–४०°C तक में मिलते हैं, थर्मोफाइल्ज जो उच्च तापक्रम यानि ५०°C से ऊपर मिलते हैं। साइक्रोफाइल्ज जो शून्य तापक्रम पर मिलते हैं। इनमें से कुछ सेल्युलोज पर निर्वाह करते हैं, कुछ सलफर को आक्सीडाइज करते हैं और प्रोटीन्ज को हजम कर सकते हैं। कुछ नाइट्रोजन को फिक्स कर सकते हैं। भूमि में पाई जाने वाली एक्टीनोमाइसीटीज की मुख्य जातियाँ नोकार्डिया, स्ट्रीप्टोमाइसीटीज, माइक्रोमोनोस्पोरा आदि हैं। खेत में हल चलाने के बाद मिट्टी की जो विशेष प्रकार की गन्ध आती है वह एक्टीनोमाइसीटीज नाम के सूक्ष्म जीवों के कारण होती है। ये कई प्रकार के कम्प्लैक्स रसायन पदार्थों को तोड़ने की क्षमता रखते हैं और इनका खेत व वनों की भूमि को अन्य पौधों को उगाने के योग्य बनाने में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण योगदान है। एक्टीनोमाइसीटीज एन्टीबायटिक्स बनाने और छोड़ने की भी क्षमता रखते हैं।

कवक की अनेक जातियाँ भी मिट्टी की ऊपरी सतह में निवास करती हैं। कवक वनों में टहनियों, पत्तों व पौधों के अनेक भागों के ऊत्तक को डिकम्पोज करते हैं। यदि कवक न होते तो खेत में पड़े पौधे और पत्ते सदा के लिए यों के यों पड़े रहते। तेजाबी स्थिति में बैक्टीरिया कार्य करने में असमर्थ होते हैं, कवक वहाँ भी उगते हैं और मृत पौधों के उत्तक को डिकम्पोज करते हैं।

इसके अतिरिक्त भूमि में ब्ल्यू, ग्रीन शैवाल जिन्हें साइनोबैक्टीरिया भी कहते हैं तथा हरे शैवाल व डायरम मिलते हैं। कुछ लाइकन जो शैवाल और

कवक के सहजीवन के परिणामस्वरूप बनते हैं, भी मिट्टी के धरातल पर मिलते हैं।

प्रोटोजोन्स में फलैजलेट्स और अमीबा आदि आते हैं। प्रत्यक्ष रूप में इनका भूमि को उपजाऊ बनाने में कोई महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं है तो भी इनकी उपस्थिति रुचिकर है। ये कुछ बैक्टीरियाज को पूरे का पूरा निगल जाते हैं और भूमि में रहने वाले सूक्ष्म जीवों के इकोसिस्टम को बैलन्स करने में सहायक हैं। क्या ये कुछ अत्यन्त लाभप्रद बैक्टेरियाज को भी खा जाते हैं ? इसके विषय में पूर्ण जानकारी नहीं है।

बैक्टेरियल वायरस व प्लान्ट वायरस भी भूमि में होते हैं। बैक्टेरियल वायरस जिन्हें बैक्टेरियोफेज भी कहते हैं, निःसन्देह बैक्टेरियल पापुलेशन की ईकोलोजी को प्रभावित करते हैं। इस विषय में और अधिक जानकारी की आवश्यकता है।

नाइट्रोजन, कार्बन, फासफोरस, सल्फर व अन्य तत्त्व पृथ्वी पर जीवधारियों की जीवनलीला को चलाते रखने के लिए अति आवश्यक हैं। पृथ्वी में इन सबकी निश्चित मात्रा है। ये सूक्ष्म जीव इस प्रकार से इस चक्र को चलायमान रखने में बड़े उपयोगी हैं और इन महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का पुनः-पुनः प्रयोग होता रहता है।

नाइट्रोजन सभी जीवधारियों के शरीर की संरचना में एक आवश्यक तत्व है। यद्यपि वायुमण्डल में इसका २/३ भाग है। पर पौधे और जन्तु इसको इसी रूप में अपने में नहीं समा सकते। सूक्ष्मजीव नाइट्रोजन को फिक्स करने वाले बैक्टीरिया और साईनोबैक्टीरिया वायुमण्डल की इस नाइट्रोजन को फिक्सअप करने की क्षमता रखते हैं। जो बैक्टीरिया वायुमण्डल की नाइट्रोजन को फिक्स कर सकते हैं, वे हैं राइजोबियम, क्लोस्ट्रीडियम, एजोटोबैक्टर आदि।

नाइट्रोसोमोनास और नाइट्रोबैक्टर भूमि की अमोनिया को नाइट्रेट्स में बदल सकते हैं। सभी बैक्टीरिया नाइट्रोजन को फिक्स नहीं करते। कुछ बैक्टीरिया तो भूमि के नाइट्रेट्स को अमोनिया में बदल देते हैं, जो वायुमण्डल में व्यर्थ जा सकती है। पर ऐसा आक्सीजन के अभाववाली भूमि, जिसमें पानी आदि खड़ा रहता हो, में होता है। जिस भूमि में प्रायः हल चलाया जाता है, ऐसा नहीं होता। क्योंकि हल चलाने से भूमि का एरियेशन होता रहता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि कई प्रकार के सूक्ष्मजीव वायुमण्डल की नाइट्रोजन को फिक्सअप कर सकते हैं। वायुमण्डल की नाइट्रोजन को नाइट्रोजन के योगिक में बदलने की प्रक्रिया को नाइट्रोजन फिक्सेशन कहते हैं।

इनमें दो प्रकार के सूक्ष्मजीव आते हैं—एक सहजीवी, दूसरे असहजीवी। सहजीवी सूक्ष्मजीव दालों वाले पौधों की जड़ों में रहते हैं। सहजीवी बैक्टीरिया में राइजोबियम मुख्य है। राइजोबियम की विशेष किस्म विशेष प्रकार के लैगूम के पौधे जैसे मूंग, उर्द, सोयाबीन, चना व मेथी आदि की जड़ों के साथ सहवास स्थापित करते हैं।

इसी प्रकार सूक्ष्मजीव कार्बन के चक्र को चलाने का कार्य करते हैं। जैसे सैलूलोज से सैलोबायोज, सैलोबायोज से ग्लूकोज तथा ग्लूकोज को कार्बन डाई आक्साइड, पानी व अन्य पदार्थों में बदलना।

कवकीय सूक्ष्मजीव वनों में उगने वाले वृक्षों की जड़ों के साथ सहजीवन व्यतीत करते हैं। जिसे "माइक्रोराहिजा" कहते हैं।

कृत्रिम तरीके से वृक्षों की जातियों को व अन्य फसलो वाले पौधों की जड़ों को लाभकारी कवक से, जो माइक्रोराहिजा बनाने की क्षमता रखता है, इनोकुलेट करके हम वानिकी व कृषि के क्षेत्र में काफी लाभ उठाते हैं।

सूक्ष्मजीवों की रक्षा—

प्रायः देखने में आता है कि खेतों में खड़े खरपतवार को व वृक्षों के नीचे पड़े पत्तों को साफ करने के लिए आग लगा दी जाती है। तीव्र आग की ऊष्मा से मिट्टी के काफी और कभी-कभी तो बेचारे सभी सूक्ष्मजीव मारे जाते हैं और वहाँ की मिट्टी निर्धन हो जाती है।

यह भी ख्याल रखा जाये कि कीटनाशक दवाओं व पैस्टीसाईड्स का कम से कम प्रयोग किया जाये। इनसे भी काफी सूक्ष्मजीव मर जाते हैं। अतः हमारा कर्त्तव्य है कि इनकी रक्षा करें क्योंकि ये भूमि को उपजाऊ बनाये रखने में अत्यन्त उपयोगी हैं।

हिमालय :
पर्यावरणीय समस्यायें एवं समाधान–१

डॉ० बी० डी० जोशी
प्रिंसिपल इन्वेस्टीगेटर—हिमालय शोध योजना
जन्तु विज्ञान विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हिमालय का पर्वतीय क्षेत्र हमारे देश के उत्तर-पूर्व में लगभग २५०० किलोमीटर लम्बा और औसतन २००-५०० किमी० चौड़ा एक विशिष्ट भौगोलिक रचना में विस्तृत है। भूगर्भशास्त्रियों की मान्यता के अनुसार हिमालय की पर्वत-श्रृंखला पृथ्वी की सबसे नवीनतम तथा युवा रचना है। आज से लाखों वर्ष पूर्व जब इस धरती के कुछ महाद्वीपीय भाग अलग होकर उत्तर दिशा की ओर बढ़ने लगे, तब अफ्रीका महाद्वीप तथा मध्यपूर्व से लगा एशिया का भूभाग मंगोलिया के दक्षिण भाग से आ टकराया था। इस टक्कर के फलस्वरूप तथा पृथ्वी के गर्भ की हलचलों के सहयोग से हिमालय श्रृंखला का जन्म हुआ। ऐसा माना जाता है कि आज जहाँ हिमालय की श्रृंखलाएँ विद्यमान हैं, उस क्षेत्र में कभी "टैथिस" नाम का सागर लहराता था और इसके दक्षिण का भाग 'गोंडवाना' भूभाग के नाम से जाना जाता रहा है। लाखों वर्षों की भौगोलिक, भू-गर्भिक तथा प्राकृतिक जलवायु की कोटिश: सहक्रियाओं के बाद हिमालय में वानस्पतिक संसार की रचना संभव हुई। प्रकृति को हिमालय की इन विशाल वन-श्रृंखलाओं के योग्य भूमि तैयार करने में ही लाखों वर्षों का समय लग गया। मानव तथा उसके पूर्वजों का तो तब जन्म भी नहीं हुआ होगा।

हिमालय का अधिकतर भू-भाग रेतीली तथा आग्नेय चट्टान-शिलाओं से निर्मित है। एक समय रहा होगा इन चट्टानों की पर्वत-श्रृंखलाएं पूर्णतः नग्न और किसी भी प्रकार की वनस्पति से विहीन रही होंगी। यह जानकर एक अद्भुद आश्चर्य ही होता है कि चट्टानों को धीरे-२ विदीर्ण कर उन्हें भूमि के पोषक तत्वों में बदलने के कार्य में भी मुख्यत: अत्यन्त उपेक्षित सूक्ष्म जीवाणुओं 'लाइकेन्स, ब्राथोफाइट्स और रेडिफाइट्स' जैसी सरलतम वनस्पतियों का हाथ रहा है। आज जो फल और पुष्पधारी वृक्षों के विशाल वन हमें देखने को मिलते हैं, उनके योग्य भूमि और जलवायु बनाने का श्रेय पौधों की उसी नन्हीं दुनियाँ

को जाता है, और यह भी एक अद्भुदता रही है कि उस समय तक जन्तुओं का कहीं नामोनिशान तक नहीं रहा होगा।

वन-दोहन का प्रारम्भ—

आज पिछले लगभग २०० सालों से मानव, जो स्वयं को प्रकृति की श्रेष्ठतम रचना कहते हुए नहीं थकता, इन वनों के दोहन में इस तरह से व्यग्र है जैसे कि दुर्योधन अपनी पूरी शक्ति से मानों द्रोपदी को निर्वस्त्र करना चाहता हो। यह माना जाता है कि भारतीय संस्कृति की वैदिक-परम्पराओं के अनुसार वृक्षों से, पादपों से बिना प्रयोजन एक पत्ता भी तोड़ना पाप था। हमारा वैदिक साहित्य यहाँ तक आदेश देता है कि सूर्योदय से पूर्व तथा सूर्यास्त के पश्चात प्रयोजनार्थ भी पुष्प न तोड़े जायें, और इतिहास इस बात का साक्षी है कि इन वैदिक परम्पराओं का निर्वाह आज से लगभग १५०० वर्ष पूर्व तक तो अत्यन्त निष्ठा एवं श्रद्धापूर्वक होता रहा। मध्यकालीन भारत और उसके बाद मुगल-काल की साम्राज्यशाही ने भी वन संरक्षण, वृक्षारोपण, उद्यान-निर्माण, चारागाहों का संरक्षण, आखेट के लिए वन-विहारों के संरक्षण को अपने राज्यतंत्र का एक अविभाज्य अंग माना। कश्मीर से कन्याकुमारी तक उक्त काल में अत्यन्त रमणीय उद्यानों और वनस्पतियों का विकास हुआ। यहाँ यह बताना उचित होगा कि भारतवर्ष के वनों पर आक्रमण आज से लगभग ३००-३५० वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ जब ब्रिटेन को साम्राज्यविस्तार के साथ-साथ जहाजों के निर्माण तथा भवन सामग्री के उद्योग के लिए ओक के वृक्षों की कमी होने लगी। तब ब्रिटेन का ध्यान भारत के अनछुए विशाल वनभण्डार की ओर गया। सर्वप्रथम मलाबार पर्वत-शृंखलाओं के, जो सागर के समीप थीं, सागौन वनों पर बलात्कार शुरू हुए। भारत में ब्रितानी साम्राज्य का प्रभुत्व बढ़ता गया और योरुप में जब औद्योगिक क्रांति का पूर्वसन्ध्याकाल था, तो भारत की वनसम्पदा की लूट दक्षिण के वनों से होती हुई उत्तर के हिमालय तक जा पहुँची।

हिमालय मुख्यत: चीड़, देवदार और ओक (बाँज) के वृक्षों का अक्षय भण्डार प्रतीत होता था। ब्रितानी साम्राज्य को भारत में अपने साम्राज्य विस्तार हेतु ही नहीं अपितु योरुप के औद्योगीकरण के लिए तथा रेलवे स्लीपरों के लिए चीड़ और साल के वृक्षों की अत्यधिक आवश्यकता हुई, जो निरन्तर बढ़ती रही और हिमालय क्षेत्र नंगे होते चले गये। इसके साथ-साथ ही तारपीन के लिए चीड़ के वृक्षों से लीसा निकाला जाने लगा, तब तो मानों बीमार होते मरीज से बार-बार रक्तदान लिया जाने लगा। यह अत्यन्त दु:खद ऐतिहासिक बिडम्बना है कि हिमालय के वन, जो आज से २०० वर्ष पूर्व प्राय: ६० से ७०% क्षेत्र को आच्छादित किए हुए थे, इस शताब्दी के आरम्भ में यानी आज से ८०-८५ वर्ष पूर्व लगभग ६५ प्रतिशत और स्वतंत्रता प्राप्ति के समय अर्थात् आज से

४० वर्ष पूर्व ३५ से ४० प्रतिशत रह गये। आज स्थिति इतनी दयनीय हो चुकी है कि हिमालयी वनक्षेत्र मुख्यरूप से उत्तर-पश्चिम हिमालय भू-भाग में, जिसमें कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड तथा नेपाल का भी कुछ भाग आता है, वनों का क्षेत्र मात्र १५ से २०% के मध्य रह गया है।

हिमालय के वन हमें केवल लकड़ी, चारा, फल और औषधियों की वन-सम्पदा ही नहीं देते, वरन उत्तरभारत के लगभग समस्त कृषिक्षेत्र को जैविक-पोषक तत्व तथा पानी की निरन्तर उपलब्धि भी कराते हैं।

हिमालय के वनों की स्थिति—

आज हम हिमालय के किसी भी क्षेत्र में चले जायें, तो सरकारी संरक्षण-तंत्र तथा एक तथाकथित वैज्ञानिक पद्धति के वनप्रबन्ध तथा वनदोहन की नीति के बावजूद भी हिमालय का हरा आँचल तार-तार होता जा रहा है। उत्तराखण्ड के सात पर्वतीय जिलों की स्थिति तो इतनी दयनीय और कुरूप हो चुकी है कि हम जैसे लोग, जो इन घाटियों को निरन्तर विगत ३०-४० वर्षों से देखते रहे हैं, आज की स्थिति को देखकर रुआंसे हो उठते हैं या घिनाने लगते हैं। उत्तराखण्ड के वनों का विनाश तो इतनी तेजी से हो रहा है कि मानो कहीं कोई वनविनाश की नीति चलाई जा रही हो। विगत ५० वर्षों में इन वनों पर निम्नलिखित कारणों से अत्यधिक बोझ आ पड़ा है—

१—रेलपथ निर्माण हेतु स्लीपरों की आवश्यकता।

२—कागज, प्लाइ और कृत्रिमवस्त्र उद्योग हेतु जंगलों का कटान।

३—तारपीन तेल हेतु लीसा-दोहन।

४—अनेक प्रकार के उद्योगों में भवननिर्माण हेतु टिम्बर की आवश्यकता।

५—जनसंख्या विस्फोट से बढ़ते परिवारों के आवास तथा भोजन के लिए योग्य भूमि हेतु वनों का कटाव।

६—पर्यटन तथा उद्योग विकास की मूल आवश्यकता—सड़कों के निर्माण हेतु वनों तथा पर्वत–शृंखलाओं का कटाव।

७—मिश्रित वनों का धीरे २ समाप्त होना और एक ही जाति के वृक्षों का रोपण अभियान।

८—अनेक प्रकार के निर्माण कार्यों में डायनामाइट्स का अन्धाधुन्ध प्रयोग।

९—जल-विद्युत परियोजनाओं से उत्पन्न पर्यावरण असंतुलन।

१०—चारागाहों का कृषि में प्रयोग, फलस्वरूप पालतू पशुओं के चारे हेतु वनों पर दबाव।

११—बढ़ती हुई जनसंख्या द्वारा घटते वनों से ईंधन।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वनविनाश के ११ प्रमुख कारण हैं, लेकिन वन-संरक्षण तथा वनसम्पदा के विस्तार हेतु कहीं भी सुदृढ़, ईमानदार तथा कुशल नीति नहीं अपनाई जा रही है।

विगत दस वर्षों से उत्तराखण्ड के ज्ञानसू, उत्तरकाशी, टिहरी, बागेश्वर, धारचुला, डबराणी तथा पिथौरागढ़ के अनेक क्षेत्रों में वृहत् भू-स्खलन की घटनाएँ निरन्तर बढ़ती जा रही हैं, और इन्हीं के साथ बढ़ रही हैं उत्तर-भारत के मैदानी क्षेत्रों में बाढ़ की विभीषिकाएँ।

लीसा-दोहन के अभिशाप—

हिमालय के अधिकतर क्षेत्रों में चीड़ के वृक्षों का वृहद्तम क्षेत्र फैला हुआ था जो अब तेजी से घटता जा रहा है। इसका एक मुख्य कारण तो रहा है चीड़ के वृक्षों का असमय और कम उम्र में कटान। सन् १९१० के आस-पास वनसंरक्षण नीति के अन्तर्गत एक नियम बनाया गया था कि चीड़ के वृक्ष १२०–१४० वर्ष की आयु के उपरान्त ही काटे जाएँ। यह नियम संभवतः इस शती के दूसरे एवं तीसरे दशाब्द में कुछ ढीले किए किये और ८०–१०० वर्ष की आयु के चीड़ भी कटने लगे। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि स्वतंत्र भारत में जब चाहो चीड़ काट लो।

चीड़ के वनों का सर्वाधिक विनाश अगर हो रहा है तो लीसा–दोहन के फलस्वरूप। लगभग पूरे हिमालय की घाटियों में सरकारी, गैर सरकारी और अवैध रूप से लीसा–दोहन का कार्य बढ़ता ही जा रहा है। निकट के ही उत्तरा-खण्ड के किसी भी पर्वतीय क्षेत्र में जाकर कोई भी देख सकता है कि कच्ची उम्र के चीड़ लीसा-दोहन हेतु घायल कर दिए गये हैं। मध्य आयु के चीड़ के वृक्ष, जिन्हें एक–दो वर्ष के दोहन के पश्चात कुछ आराम देना चाहिए, उन्हें पुनः-पुनः घायल किया जा रहा है, फलस्वरूप चीड़ के वनों को ऐसी क्षति पहुँच रही है जिसकी पूर्ति आगामी हजारों वर्षों तक संभव नहीं है—

१—चीड़ के वृक्षों की बीज उत्पन्न करने की क्षमता निरन्तर कम होती जा रही है।

२—बीजों में उगने की शक्ति निरन्तर क्षीण होती जा रही है।

३—लीसा निकले चीड़ वृक्षों की रोग तथा कीटप्रतिरोधक क्षमता कम होती जा रही है।

४—लीसा–दोहन के फलस्वरूप चीड़ के वृक्षों की बाढ़ (वृद्धि) रुक रही है।

५—वनों में आग लगने की घटनाएँ बढ़ने लगी हैं।

६—जो वन हजारों साल से स्थिर खड़े थे, लीसा-दोहन के बाद इतने कमजोर हो गये हैं कि थोड़े से वायु-वेग से ही चीड़ के वृक्ष धराशायी हो जाते हैं। विगत ५ वर्षों में उत्तराखण्ड के कई क्षेत्रों में ऐसी स्थिति आ गई थी कि चीड़ के लाखों वृक्ष धराशायी हो गये।

७—लीसा निकाली हुई चीड़ की लकड़ी की ईंधन-क्षमता एवं उद्योग-क्षमता में भी कमी आई है।

८—चीड़ के बीजों की प्रजननशक्ति में कमी की वजह से चीड़ के वनों का प्राकृतिक विकास और विस्तार कम होता जा रहा है।

इस तरह हम देखते हैं कि मात्र एक लीसा-दोहन पर्यावरण को कितनी ही तरह से क्षतिग्रस्त कर रहा है।

औद्योगीकरण का प्रभाव—

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश में भी विकास के चतुर्मुखी आयामों में निरन्तर वृद्धि होती रही है। जहाँ किसी भी प्रकार के उद्योगों की स्थापना में पर्वतीय क्षेत्र उपेक्षित रहे, वहीं दूसरी ओर देश के दूर–दराज भागों में खुलते-बढ़ते सैंकड़ों प्रकार के उद्योगों हेतु हिमालय की वन–सम्पदा का अन्धाधुन्ध निर्यात होता रहा है।

उत्तराखण्ड के वन, जहाँ दो दशक पूर्व देवदार, भोज और बांज के गहन वन थे, आज नग्नप्राय से हो चले हैं। उत्तराखण्ड का ओक तो ब्रितानियों को भी बहुत पसन्द आया था। इसी तरह तुन, रीठा, साल, पांगर के विशाल वृक्षों की भी लगभग इतिश्री हो चली है। चौड़ी पत्तियों वाले सभी वृक्ष, न केवल बहुमूल्य इमारती लकड़ियों के भण्डार थे, अपितु समस्त उत्तरभारत को एक सौम्य और समयानुकूल जलवायु प्रदान करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। इसके अतिरिक्त इन पेड़ों की पत्तियाँ प्रतिवर्ष गिर–सड़ कर, न केवल अपने वनों को, अपितु वर्षाऋतु के माध्यम से प्रायः पूरी गंगा–जमुना के दोआब को प्रतिवर्ष बहुमूल्य पोषकतत्वों से पूरित करती रहती थीं।

मिश्रित वनों द्वारा पर्यावरण संतुलन—

पिछले लगभग तीन दशकों में हमने पाया कि हिमालय के हजारों वर्ष पुराने वन जब तेजी से कटते चले गये और सरकार के वनतंत्र को यह समझ आने लगा कि उसकी भ्रष्ट अफसरशाही और जंगल के ठेकेदारो की सांठ-गांठ से होने वाली हानि, साथ ही वन-विभाग से सरकार को होने वाली आय के स्रोत

सूखते जा रहे हैं, तब जल्दबाजी में लगभग सम्पूर्ण पर्वतीय क्षेत्रों में ही, न केवल चीड़ के मोनोकल्चर को प्रोत्साहन दिया जाने लगा, अपितु जलवायु की प्रतिकूलता के बावजूद हिमालय की तराइयों में सदाबहार मिश्रित वनों के स्थान पर यूकलिप्टिस के कृत्रिम वन पोषित होते चले गये।

मिश्रित वनों द्वारा पर्यावरण का संतुलन इतनी सहजता से होता रहता है कि हमारा सारा किताबी वैज्ञानिक-ज्ञान धरा रह जाता है। चौड़ी पत्तियों वाले ये वृक्ष मुख्यतः निम्न रूप से पर्यावरण को विशेष लाभ पहुँचाते हैं—

१—मध्यम गति से बढ़ने की वजह से जमीन से धीरे २ ही जल तथा पोषक तत्वों का चूषण करते हैं। इससे जमीन की उपजाऊ शक्ति पर कुप्रभाव नहीं पड़ता।

२—चौड़ी पत्तियों और घनी शाखाओं के योग से तीव्र वर्षा की बौछारों को भूमि पर टकराने से रोकते हैं, अतः पानी का काफ़ी भाग पत्तियों, टहनियों और तने के माध्यम से धीमे-धीमे वनों की भू-सतह तक पहुँचता है। इस क्रिया के फलस्वरूप न तो बरसाती बौछारों को सीधे २ भूमि अपरदन का अवसर मिलता है और न ही पानी के बहाव से होने वाले कटाव की समस्या आती है।

३—मिश्रित वन अपनी पत्तियों से उत्पन्न खाद के माध्यम से परस्पर दूसरी जातीयों के वृक्षों की पोषण आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं जो कि मोनोकल्चर में संभव नहीं है। इस तरह भूमि की उर्वराशक्ति का ह्रास नहीं होने पाता।

४—मिश्रित वन पर्यावरण विज्ञान की भाषा और आवश्यकता के अनुकूल वनों में न केवल वनस्पति वर्ग को अपितु विभिन्न प्रकार के जन्तुओं को भी सहजीवन की सुविधाएँ प्रदान करात हैं, जो कि वन-सम्पदा की प्राकृतिक वृद्धि के लिए अत्यन्त अनिवार्य हैं।

५—मिश्रित वन वायुमण्डल से अधिक कार्बनडाइआक्स।इड लेकर वातावरण को और भी आक्सीजन और नमी प्रदान करते हैं।

६—मिश्रित वन एक ऐसा पर्यावरणीय संतुलन पैदा करते हैं जिससे इनके नीचे धीमी धूप और धीमी छाँव तथा धीमे २ पहुँचने वाले मेह की सुलभता से सैंकड़ों प्रकार की वनस्पति औषधियाँ, बेल-बूटे पनप पाते हैं। मोनोकल्चर वाले वन इस दृष्टि से प्रायः पूर्णतः अनुपयुक्त होते हैं।

७—मिश्रित वनों की सघनता वायु के प्रचण्ड वेग को रोककर आँधी-तूफानों को आने से रोकती है।

८—मिश्रित वन, वन्य जन्तुओं के लिए प्राकृतिक अभयारण्य होते हैं जहाँ प्रत्येक प्राणी पर्यावरण के भोजनचक्र से पूर्णतः संतुष्ट होता है और उसकी समस्त आवश्यकताएँ सहजता से पूर्ण होती रहती हैं। यह सहज ही देखा जा सकता है कि ओक, बुरुंस, पांगर, सागौन, साल, तुन आदि के वृक्ष स्वयं में ही एक नन्हीं-सी दुनियाँ बसा लेते हैं, जबकि चीड़, देवदार या यूकलिप्टिस के वृक्ष तथा वन प्रायः एकाकी से होते हैं। न तो ये अपने नीचे अन्य वनस्पतियों को उगने-बढ़ने के योग्य वातावरण देते हैं और न ही विभिन्न प्रकार के पशुपक्षियों एवं अन्य जन्तुओं को आकर्षित करते हैं। वन्य जन्तुओं के विकास एवं प्रसार के लिए यह एक अत्यन्त विषम स्थिति है।

९—मिश्रित वन अपनी घनी छाया की वजह से वन-पर्वतों की भूमि से वाष्पन को रोकते हैं जिससे भूमिगत जलाशयों में पानी की कमी नहीं होने पाती।

१०—सघन वन बाढ़ की विभीषिकाओं पर भी नियंत्रण रखते हैं।

पर्यटन का पर्वतीय पर्यावरण पर प्रभाव—

आज पर्यटन अब एक शौक ही नहीं अपितु एक बहुत मंहगा और कठिन उद्योग बन चुका है। निश्चय ही पर्यटन के कई सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक लाभ हैं, लेकिन ज्यों २ पर्यटन उद्योग बढ़ता जा रहा है, पर्यावरण पर इसके दूषित प्रभाव भी बढ़ते जा रहे हैं। उदाहरण के लिए उत्तराखण्ड के पवित्र तीर्थस्थलों में गंगा, यमुना तथा सहायक नदियों का जल, जो अत्यन्त निर्मल तथा पवित्र हुआ करता था, अब अपने मूल से ही पर्यटकों के मल-मूत्र, मादक द्रव्यों के खाली डिब्बे अथवा बोतलों की बहुलता, प्लास्टिक तथा टिन के लिफाफों तथा डिब्बों से यत्र-तत्र दूषित होता रहता है।

इसी तरह पर्यटन उद्योग हेतु हिमालय की घाटियों में सड़कों, पर्यटक आवासगृहों, होटलों तथा सरकारी विभागों हेतु भवनों का जाल-सा बिछता जा रहा है। इन सब आवश्यकताओं के लिए जिस अनुपात में वन कटते हैं और पर्यावरण दूषित होता है, पर्यटन द्वारा अर्जित लाभ कुछ भी महत्व नहीं रखता। इससे भी अधिक दुःखद स्थिति होती है जब पर्यटक बिना वजह ही दुर्लभ वनस्पतियों, फूलों एवं लताओं को खेल-खेल में नोचते-उखाड़ते हैं।

यह महसूस किया जा रहा है कि अनेक बहुमूल्य जन्तु, हिमालय की घाटियां ही जिनका घर रहा है, धीरे २ समाप्त होते जा रहे हैं। जैसे—हिमालयन पण्डा, भालू, घुरड़, तीतर और कस्तूरी मृग। अब कस्तूरी मृग का ही जिक्र करें तो यह पाया गया है कि इसकी प्रजननशक्ति में भी कमी आई है। यद्यपि सरकार ने पिथौरागढ़, अल्मोड़ा एवं चमोली जनपदों में कस्तूरी मृग के लिए कुछ मृग

विहार निश्चित कर दिए हैं। लेकिन इससे मृगों की जनसंख्या में कोई आशातीत वृद्धि नहीं हो पाई, अपितु घट ही गई। क्योंकि बुरूस, जो हिमालय की घाटियों का एक सुन्दरतम पुष्प-वृक्ष था, धीरे२ समाप्त होता जा रहा है और यही कस्तूरी मृग का एक प्रिय और आवश्यक भोजन भी रहा है।

पर्यटन विकास के साथ२ हिमालय की गहराइयों तक डीजल और पेट्रोल के वाहन पहुँच चुके हैं। जहाँ वातावरण को स्वच्छ करने वाले वन समाप्त होते जा रहे हैं वहाँ वातावरण को जहरीला बनाने वाले वाहन बढ़ते ही जा रहे हैं। पर्यटकों की बढ़ती संख्या, अधिक मात्रा में जलते ईंधन से उत्पन्न ऊष्मा और कार्बनडाइआक्साइड और तेजी से घटती वनस्पतियाँ हिमालय की जलवायु को गर्म करती जा रही हैं। परिणाम – शुष्क होती जलवायु, वर्षा एवं बर्फ का अभाव, ग्लेशियर्स का पीछे खिसकना एवं भूमिक्षरण तथा बढ़ती बाढ़ विभीषिकाएँ। पर्यटन व्यवसाय की वजह से ही गंगोत्री और गोमुख के बीच के दुर्लभ भोज वृक्षों का लगभग सफाया हो गया है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि दक्षिण एशिया में हिमालय की बद्री-केदार तथा गंगोत्री घाटियाँ ही भोजवृक्षों को अनुकूल जलवायु एवं भौगोलिक पर्यावरण प्रदान करती हैं।

(क्रमशः...)

शैवाल से खाद

डा० अरुण आर्य
वनस्पति विज्ञान विभाग
गुरुकुल कांगड़ी वि० वि०, हरिद्वार

जन-साधारण के लिए शैवाल या काई लगभग गंदे एवम् अनावश्यक वर्ग के पौधे हैं जो हर प्रकार के घृणित स्थलों पर उगते हैं तथा जिन्हें वह पौधे कहने में भी हिचकिचाता है। यद्यपि यह सच ही है कि न हमें इनसे सुन्दर, पौष्टिक और स्वादयुक्त फल ही मिलते हैं, न जानवरों के लिए हरा चारा और न ही इनका उपयोग सुन्दरता और सुगन्धयुक्त फूलों के लिए किया जा सकता है। परन्तु फिर भी शैवालें पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाली आदि-वनस्पतियाँ हैं, जिनके नाना रूप मीठे एवं खारे जलों में सहजता से दिखाई पड़ते हैं। वर्तमान युग में अनेक वैज्ञानिक-अनुसंधानों द्वारा इनके विविध उपयोग सुझाये गये हैं।

वैज्ञानिकों का मत है कि वातावरण में जब आक्सीजन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं थी तो सर्वप्रथम नील-हरित-शैवालों का प्रादुर्भाव हुआ। वोनॉय (१९६१) के अनुसार इस समूह के शैवालों का जन्म आक्सीजनरहित वातावरण में हुआ। आज भी अन्य किसी पादप समूह के विपरीत इस कोटि के शैवाल हाइड्रोजन सलफाइड, गन्धक के अन्य यौगिकों एवं स्वतन्त्र गंधकयुक्त वातावरण में सफलतापूर्वक जीवन व्यतीत कर सकते हैं। ज्वालामुखियों के लावा में भी इनकी वृद्धि और विकास सर्वप्रथम देखी गई है। ये ८०° से ८५° से० तापक्रम पर भी अपना जीवनचक्र सफलतापूर्वक पूरा कर सकने में सक्षम हैं। ज्हॉल (१९७४) के अनुसार "बिना शैवाल के मानव का विकास एवं उसकी उत्पत्ति संदेहास्पद है।" वस्तुतः बहुधा जीव वैज्ञानिकों का यह मत है कि एककोशीय शैवाल ही बहु-कोशीय जीवधारियों के आदि-वंशज हैं।

इनके द्वारा प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया के फलस्वरूप वातावरण में आक्सी-जन की मात्रा बढ़ी, जिसका उपयोग अन्य जन्तुओं तथा वनस्पतियों ने श्वसन क्रिया में किया। वर्तमान काल में भी कुछ वनस्पतिज्ञों के मतानुसार वातावरण की लगभग ८० प्रतिशत से अधिक आक्सीजन की मात्रा शैवालों की प्रकाश-

संश्लेषण क्रिया द्वारा प्राप्त होती है। उल्लेखनीय है कि पृथ्वी का तीन-चौथाई भाग पानी से घिरा हुआ है, जिनमें शैवालें ही बहुतायत से उत्पन्न होती हैं।

नील-हरित शैवाल द्वारा नाइट्रोजन का स्थरीकरण—

प्रयोगों के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि नील-हरित-शैवाल की लगभग ६० प्रजातियाँ वातावरण से नाइट्रोजन संग्रह करने में सक्षम हैं। नाइट्रोजन खाद्यान्न फसलों में रासायनिक खाद के रूप में अनिवार्यतः दिया जाता है। अतः शैवालों की इस क्षमता का कृषि में विशेष महत्त्व है। अपने देश के ख्यातिप्राप्त शैवालविद् डा० पी० के० डे (१९३९) ने प्रोफेसर फ्रिट्ज के साथ कार्य करते हुये उनकी लन्दनस्थित प्रयोगशाला में यह सिद्ध कर दिखाया कि भारतवर्ष में धान की फसल में पर्याप्त नत्रजन खाद न दिये जाने पर भी उसकी उपज में कोई विशेष अन्तर नहीं आता। इसका कारण उन्होंने बताया कि धान के खेतों में इतनी अधिक नाइट्रोजन संचय करने वाली नील-हरित-शैवालों की प्रजातियाँ उगती हैं कि उनके द्वारा स्थिर की गई नत्रजन, फसल की समुचित वृद्धि के लिये पर्याप्त होती है। अतएव फसल की उपज भी यथावत बनी रहती है। वनारस हिन्दू वि० वि० के प्रो० रामनगीना सिंह के अनुसार भारत के धान के खेतों में बहुतायत से मिलने वाले नील-हरित-शैवाल **ऑलोसिरा फर्टिलिसिमा** द्वारा सर्वाधिक नत्रजन का संचय होता है !

जापान में प्रो० वातानवे एवं उनके सहयोगियों (१९५१, १९६०, १९७०) ने कई स्थानों पर नील-हरित शैवालें, विशेषकर **टोलिपोथ्रिक्स टेनुइस** को चार वर्ष तक धान की फसल के साथ उगाकर, इसकी उपज में क्रमशः २, ८, १५ और २० प्रतिशत की वृद्धि रिकार्ड की। इसी प्रकार के प्रयोगों द्वारा रूस में शाटिना ने धान की उपज में १३—२० प्रतिशत और **चीन** में ले तथा उनके सहयोगियों ने **एनाबिना एजोटिका** नामक शैवाल के प्रयोग द्वारा २४ प्रतिशत की वृद्धि प्राप्त की।

भारतीय धान के खेतों में नाइट्रोजन संस्थापित करने वाली कुछ प्रमुख शैवाल प्रजातियाँ हैं—ऑलोसिरा, एनाबिना, सिलिन्ड्रोस्परमम्, टालिपोथ्रिक्स, साइटोनिमा, नॉस्टाक, कैलोथ्रिक्स, ग्लियोट्रिकिया, स्टाइजोनिमा इत्यादि। इन शैवालों के द्वारा प्रति हेक्टेयर प्रति मौसम लगभग १५ से ४८ कि०ग्राम नाइट्रोजन भूमि को प्राप्त होता है।

इसके अतिरिक्त शैवाल अन्य वनस्पतियों की तरह कार्बनिक पदार्थ, जैसे फाइटोहार्मोन्स, ऑक्जिन, जिब्रेलिन, अमीनो एसिड, कार्बनिक अम्ल, विटामिन इत्यादि भी उत्पन्न करते हैं जो कि पौधों की चयापचय क्रियाओं को सुधार कर

उनकी वृद्धि और फसल की उपज को बढ़ाते हैं। कुछ परीक्षणों में यह पाया गया कि यदि बीजों को काई के साथ मिलाकर बोया जाय तो बीज पहले की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से उगते हैं (गुप्ता १९६६; गुप्ता एवं पाण्डेय १९७८) और उनकी वृद्धि भी अच्छी होती है।

नाइट्रोजन स्थरीकरण में सहायक : हेटेरोसिस्ट

हेटेरोसिस्ट, नील-हरित शैवालों में पायी जाने वाली कुछ विशेष कोशाओं में से एक हैं। इनकी संरचना कायिक (वेजिटेटिव) कोशाओं से भिन्न है। ये उनसे आकार में बड़ी, लगभग गोलाकार, अधिक मोटी कोशिका भित्ति वाली एक या दो ध्रुवीय नाड्यूल (गांठ) युक्त संरचनायें हैं। ये शैवाल की फीतासदृश संरचना के मध्य या एक किनारे पर हो सकती हैं तथा कभी-कभी एक लगातार क्रम में भी पायी जाती हैं।

परमाणु सूक्ष्मदर्शी की मदद से किये गये नवीन अनुसंधानों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि जब एक कोशा हेटेरोसिस्ट में परिवर्तित होती है तो धीरे-धीरे इसके आकार में वृद्धि होती है। कोशाभित्ति अनेक पर्तोयुक्त हो जाती है। अन्तःभित्ति स्टार्चसदृश पदार्थ सेल्यूलोज और बाह्यभित्ति पेक्टिक यौगिकों द्वारा निर्मित होती है। ध्रुवीय क्षेत्रों को छोड़कर सम्पूर्ण कोशा म्यूसिलेज पदार्थ की मोटी तह से घिरी होती है। कैरोटिनायॅड्स के अतिरिक्त प्रकाश-संश्लेषण में सहायक अन्य सभी लवक समाप्त हो जाते हैं। नील-हरित शैवालों की कोशाओं में पाया जाने वाला प्रमुख आहारोत्पादक लवक फाइकोसाइनिन इन कोशाओं में नहीं पाया जाता। नाइट्रोजन स्थरीकरण में सहायक एन्जाइम 'नाइट्रोजिनेज' की इन कोशाओं में उपस्थिति वोक (१९६८) तथा फे एवं उनके सहयोगियों (१९६८) द्वारा ज्ञात की गई है।

स्टीवर्ट एवं उनके सहयोगियों (१९६९) ने इस बात के निश्चित प्रमाण प्रस्तुत किये कि हेटेरोसिस्ट नाइट्रोजन के संस्थापन में सहायक है। काले एवं तल्पासाई (१९६९) ने भी संरचना एवं कार्य की दृष्टि से इन विशेषीकृत कोशाओं को नाइट्रोजन के स्थरीकरण में प्रमुख भूमिका निभाने हेतु सक्षम माना है। ब्रेडली एवं कार (१९६६) ने भी उपरोक्त मत व्यक्त किया है, जबकि पोस्टगेट (१९७४) का कहना है कि सूक्ष्म मात्रा में नाइट्रोजन का स्थरीकरण हेटेरोसिस्ट-युक्त प्रजातियों की कायिक कोशाओं में भी सम्भव है। यॉट और सिल्वे (१९६९) ने 'ग्लियोकैप्सा' नामक नील-हरित-शैवाल में नाइट्रोजिनेज एन्जाइम की उप-स्थिति और नाइट्रोजन स्थरीकरण क्रिया देखी। इस प्रकार हमारी यह अव-धारणा कि सिर्फ हेटेरोसिस्टयुक्त शैवाल ही यह विशेष गुण रखते हैं, पूर्ण सत्य

नहीं है। ग्लियोकैप्सा, ओसिलेटोरिया, ट्राइकोडेस्मियम और प्लेक्टोनिमा प्रजातियाँ, जिनमें हेटेरोसिस्ट नहीं पाये जाते, वातावरण से नाइट्रोजन स्थरीकरण में सक्षम हैं।

शैवाल से खाद ?

जी हाँ, शैवाल से खाद बहुत ही सरल विधि से बनाई जा सकती है। वैज्ञानिक ढंग से बनाई गई खाद के प्रयोग से २०–३० कि०ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से नाइट्रोजन का संस्थापन होता है जिससे धान की उपज दो–गुनी, कभी २ तीन-गुनी भी प्राप्त कर सकते हैं। आज, जबकि साधारण कृषकवर्ग के लिए इतनी मंहगी रासायनिक खादें खरीदना उनकी सामर्थ्य के बाहर की बात है, शैवाल से बनी यह खाद बहुत सस्ती होने के कारण उनके लिये वरदानस्वरूप है। इसको किसान थोड़े से मिश्रण (कल्चर) के द्वारा पर्याप्त मात्रा में प्राप्त कर सकते हैं।

अ—खाद बनाने की विधि—

काई की खाद बनाने के लिए विशेष प्रकार की काई की उपजातियों के मिश्रण (जिसमें ऑलोसिरा, हैप्लोसाइफॉन, नास्टाक, एनाबिना, प्लेक्टोनिमा, लिंजबिया, माइक्रोसिस्टिस इत्यादि हैं) की आवश्यकता होती है। जिसे किसी प्रशिक्षण केन्द्र, कृषि विश्वविद्यालय से प्राप्त किया जा सकता है। इस कार्य के लिये अप्रैल से जून तक का समय अधिक उपयुक्त है। इसके लिए पानी (तालाबों) के निकट ऐसे खेतों का चुनाव करते हैं जिसमें सूर्य की रोशनी और शुद्ध वायु का अभाव न हो। २० वर्गमीटर की समतल क्यारी बनाकर उसके चारों ओर १५ सेमी० ऊँची मेंढ़ बाँध देते हैं। अब इस क्यारी में 5½×4½ मीटर आकार की पोलीथीन की चादर बराबर करके इस प्रकार बिछाते हैं कि पूरी क्यारी अच्छी प्रकार से ढक जाय और आधा मीटर पोलीथीन की चादर बाहर की ओर लटकती रहे। इसको भली-भाँति ढकने के बाद इसके ऊपर १० सेमी० ऊँची मेंढ़ चारों ओर और बना देते हैं। इस तैयारी के बाद क्यारी में ४० कि०ग्राम भुरभुरी मिट्टी बराबर से बिछा देते हैं। यदि पोलीथीन की चादर उपलब्ध नहीं है तो उस क्यारी की मिट्टी को ही भुरभुरी और फिर समतल बनाकर काम में ला सकते हैं। अब क्यारी खाद बनाने के लिए तैयार है।

इस तैयार क्यारी में १० से १२ सेमी० पानी भर देते हैं। फिर इसमें १ कि०ग्राम सुपर फास्फेट, १०० ग्राम कार्बोफ्यूरान ग्रैन्यूल्स; अगर ये उपलब्ध न हों तो इसके स्थान पर १०० ग्राम १० % पी०एच०सी० चूर्ण और २ कि०ग्राम लकड़ी का बुरादा मिलाकर बराबर करके क्यारी में छिड़क देते हैं। तदुपरान्त

क्यारी को समतल करके उसमें भली–भाँति लेवा लगा दिया जाता है। अब इसमें २½ कि०ग्राम नील-हरित शैवाल का मिश्रण बराबर से छिड़क दिया जाता है।

समय-समय पर पानी देते रहते हैं जिससे कि पानी की सतह ५ सेमी० ऊँची रहे। यदि पोलीथीन की चादर बिछाई गई है तो पानी की अधिक आवश्यकता नहीं होती। १० या १५ दिनों के पश्चात् क्यारी में काई भली-भाँति दृष्टिगोचर होने लगती है, इसकी एक मोटी तह जम जाती है। अब इसे पानी की कम आवश्यकता होती है। ३–४ दिनों के बाद काई को खुरचा जा सकता है। लगभग ½ सेमी० की गहराई से खुरपी की मदद द्वारा काई को खुरच लेते हैं। नमी होने से काई अपने-आप उखड़ आती है।

अब सूर्य के प्रकाश में इसे ऐसे ही या बालू के साथ मिलाकर सुखा लिया जाता है। इसे पोलीथीन की थैलियों में भरकर सूखी जगह पर रख लेते हैं। इसे अन्य उर्वरकों से दूर रखना चाहिये। अब यह खाद फसल में डालने के लिये तैयार है। इस प्रकार २½ कि०ग्राम मिश्रण से ३५ किलो खाद तैयार हो जाती है। यह ३ हेक्टेयर खेत के लिये पर्याप्त है। एक मौसम में काई की खाद की एक ही क्यारी में ४ फसलें आसानी से ली जा सकती हैं।

ब – सावधानियाँ—

(१) खाद बनाते समय जगह का चुनाव सही ढंग से करना चाहिये। स्थान नम हो, हवादार हो, पर्याप्त मात्रा में धूप मिलती हो और निकट ही पानी की सुविधा भी हो।

(२) क्यारी की मिट्टी को अच्छी प्रकार से भुरभुरी करके समतल कर लेना चाहिये।

(३) मिट्टी उपजाऊ हो और कीड़े-मकोड़ों से सुरक्षित हो।

(४) काई को खुरचते समय भूमि नम होनी चाहिये और ½ सेमी० से अधिक मिट्टी नहीं खुरचनी चाहिये।

(५) शैवाल की खाद को धूप में भली-भाँति सुखाकर, पोलीथीन की थैलियों में भरना चाहिए।

स – खाद का खेत में प्रयोग—

उपरोक्त विधि से प्राप्त खाद को धान के खेतों में डालने के लिए रोपाई हो जाने तक इन्तजार करना पड़ता है। जब खेत में रोपाई हो जाये, उसके ४–५ दिन पश्चात् १० कि०ग्राम खाद प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़क दी जाती है।

खाद छिड़कते समय करीब ५-६ सेमी० पानी भरा होना चाहिये। यह पानी कम से कम १० दिन तक भरा रहे जिससे काई के पनपने में आसानी रहे।

काई की खाद को अकेले या पूरक खाद के रूप में खेत में प्रयोग किया जा सकता है। लगातार ५-६ वर्षों तक इसका प्रयोग करने से अतिरिक्त रासायनिक खाद डालने की आवश्यकता नहीं रहती और उपज भी बढ़ जाती है।

आज, जबकि रासायनिक खादों के मूल्य आसमान छू रहे हैं, इस प्रकार की जैविक खादों की मदद से कृषि में आशातीत फसल की पैदावार करके हम अपनी खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। शैवाल की खाद और शैवाल के निष्कर्ष (एक्सट्रैक्ट) का उपयोग गेहूँ, मटर, धान एवं सूरजमुखी इत्यादि अन्य फसलों में भी किया जा रहा है और इन फसलों के बीजों के अंकुरण एवं इनकी पैदावार में भी कई गुना वृद्धि प्रयोगों द्वारा ज्ञात की गई है। आज किसानों के मध्य इस प्रकार की जानकारी को फैलाने का दायित्व शिक्षा-संस्थाओं, विश्वविद्यालयों एवं स्वयंसेवी संस्थाओं को वहन करना चाहिये।



उ० प्र० कृषि उत्पादन आयुक्त श्री आर० वेंकटरमन, बिजनौर के जिलाधिकारी श्री दर्शन सिंह बेन्स से बात करते हुए। दायें से श्री बी० एन० श्रीवास्तव, प्रिंसिपल टी० ई० पी०, बिजनौर जिलाधिकारी श्री दर्शनसिंह बेन्स, श्री आर० वेंकटरमन, कृषि उत्पादन आयुक्त उ० प्र०।



श्री आर० वेंकटरमन राष्ट्रीय सेवा योजना के विद्यार्थियों से बात करते हुए। डा० बी० डी० जोशी, प्रोग्राम आफिसर रा० से० यो० भी साथ में है।

"कण्व आश्रम एवं हिमालय-शोध-योजना"

संक्षिप्त परिचय

—डा० बी० डी० जोशी
प्रिंसिपल इन्वेस्टीगेटर
हिमालय शोध योजना
एवं अध्यक्ष, जन्तु विज्ञान विभाग

मानवों की इस धरती पर पर्यावरण संतुलन बनाए रखने में सर्वत्र ही पर्वत-श्रृंखलाओं का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। हिमालय पर्वत की श्रृंखला अपने आप में इस धरती की अनन्यतम रचनाओं में से एक है। हिमालय श्रृंखला का सम्बन्ध पश्चिम में हिन्दुकुश से होता हुआ बर्मा से लगे अरुणाचल तक एक अटूट कड़ी के रूप में लगभग २५०० कि०मी० तक विस्तृत है। इस पर्वत–श्रृंखला का जन्म आज से लगभग ४००–५०० लाख वर्ष पूर्व हुआ था।

आज मानव अपने विषैले होते हुए पर्याबरण के प्रति बहुत अधिक जागरूक एवं संवेदनशील हो चुका है। यह किसी की भी समझ में नहीं आ रहा है कि बिगड़ती स्थितियों को किस तरह सुधारा जाय। वायुमण्डल में आक्सीजन और नमी घटती जा रही है। कार्बनडाइआक्साइड तथा ताप बढ़ता चला जा रहा है। हमारा देश भी अपनी निर्धनता के बावजूद पर्यावरण–संरक्षण की दिशा में बहुत ही व्यग्रता एवं रुचि से कार्यरत है। इसका श्रेय भारत की भूतपूर्व यशस्वी प्रधान-मंत्री स्वर्गीया श्रीमती इन्दिरा गांधी की जागरूक नीतियों को जाता है कि उनकी अत्यन्त चैतन्य प्रवृत्ति के फलस्वरूप भारत सरकार के पर्यावरण–मंत्रालय ने हिमालय पर्वतीय पर्यावरण–संरक्षण एवं सुधार हेतु विशेष शोध–योजनाओं हेतु एक अलग विभाग स्थापित किया है।

योजना—

यह अत्यन्त सुखद स्थिति है कि प्रधानमंत्री के रूप में श्री राजीव गांधी हिमालय के पर्यावरण-संरक्षण, गंगा-प्रदूषण निवारण, तथा सम्पूर्ण भारत में ही वृहत् वृक्षारोपण के कार्यों में गहन रुचि रखकर हम सबके लिए प्रेरणा के स्रोत बने हुए हैं। इसी श्रृंखला में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति

श्री बलभद्रकुमार हूजा (रिटायर्ड आई० ए० एस०) की सतत् शुभ-प्रेरणा के फलस्वरूप भारत सरकार के पर्यावरण मंत्रालय ने हमें ९.६८ लाख रुपये की एक वृहत् पर्यावरण सुधार हेतु शोध-योजना स्वीकृत की है। यह अपने आपमें इस क्षेत्र को स्वीकृत हुई प्रथम सबसे बड़ी योजना है।

इस शोध-योजना के अन्तर्गत मुख्य रूप से निम्न कार्य किए जाने हैं :

१ - हिमालय की पर्वतीय घाटियों में विभिन्न प्रकार के वनों की भूमि की उपजाऊ-शक्ति आदि का तुलनात्मक रासायनिक विश्लेषण।

२—हिमालय श्रृंखला में बिगड़ते अथवा नष्ट होते पर्यावरण संरक्षण तथा संवर्धन हेतु शोध-कार्य, फील्ड वर्क एवं नये संरक्षण उपायों का सृजन।

३—भूमि क्षरण की रोकथाम।

४—बाढ़ नियंत्रण सम्बन्धी विभिन्न प्रकार के उपायों का प्रभावी क्षेत्रों में आयोजन।

५—वन-वृक्षहीन क्षेत्रों में वृहत् वृक्षारोपण अभियान हेतु शिविरों का आयोजन।

६—क्षेत्र में वानिकी एवं उद्यानों के प्रचार एवं प्रसार हेतु नर्सरी की स्थापना।

७ - यूकेलिप्टिस के वृक्षारोपण से उत्पन्न स्थानीय क्षेत्र की भूमि की उर्वरता, रासायनिक बनावट तथा सम्बद्ध पर्यावरण का तुलनात्मक अध्ययन।

८—पर्यावरण की वर्तमान स्थिति के आलोक में भविष्य की योजनाओं तथा आवश्यकताओं का पूर्ण मूल्यांकन।

९—पहाड़ी नदियों से उत्पन्न नदी तट के कटाव को रोकने हेतु बंध निर्माण।

१०-क्षेत्र में पर्यावरण संतुलन के सापेक्ष विभिन्न प्रकार के जीव-जन्तुओं का सर्वेक्षण।

११-वन-सम्पदा तथा क्षेत्र की फसलों को क्षति पहुँचाने वाले जीव-जन्तु, विशेषतः कीट-समुदाय का सर्वेक्षण एवं रोकथाम के उपाय।

१२-सामान्य जनता में पर्यावरण संरक्षण के सम्बन्ध में जागरूकता पैदा करना।

योजना स्थल—

उक्त समस्त कार्य कोटद्वार के निकट महाकवि कालिदास द्वारा वर्णित महर्षि कण्व की तप:आश्रमस्थली के क्षेत्र में किए जायेंगे। कण्व आश्रम का यह क्षेत्र अत्यन्त ही ऐतिहासिक महत्त्व का है, जिसका वर्णन महाभारत के आदिपर्व के "शकुन्तलोपाख्यान" नाम के सर्ग ६९ से ७४ तक पाया जाता है। महाभारत में वर्णित उक्त सन्दर्भ के आधार पर ही महाकवि कालिदास ने अपनी अमर

रचना "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" की रचना की थी। तदनुसार महर्षि विश्वामित्र एवं देवांगना मेनका के संयोग से शकुन्तला का जन्म इसी क्षेत्र में हुआ था। महर्षि कण्व (काश्यप) ने मेनका द्वारा त्यक्त सद्यजात शकुन्तला का लालन-पालन पिता की तरह ही किया। कवि कालिदास ने इसी प्रसंग में जब महाराज दुष्यन्त कण्व आश्रम में शकुन्तला से मिलते हैं और तदनन्तर महर्षि कण्व शकुन्तला को पतिगृह के लिए विदा करते हैं—तो कण्व आश्रम की प्राकृतिक सुन्दरता का विलक्षण वर्णन किया। आज के पर्यावरण की दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि हजारों वर्ष पूर्व हमारे ऋषि-मुनियों के प्रकृति-संरक्षण और सम्वर्धन के अपने ऐसे नियम से थे जो नियम न रहकर प्रत्येक नर-नारी के दैनिक जीवन का अंग बन चुके थे। जैसे कि राजा दुष्यन्त एक मृग का पीछा करते हुए जब कण्व आश्रम की परिधि में प्रवेश पाते हैं तो उनको सुनने को मिलता है "भो-भो राजन्! आश्रम मृगोअयम् न हन्तष्यो न हन्तव्यः" और राजा इस अनुशासन को मानता है।

दूसरी ओर कण्व ऋषि को अपने आश्रम की वनस्पतियों से कितना प्रेम था कि स्वयम् शकुन्तला को उन्होंने आश्रम की पुष्प-लताओं की देखभाल का कार्य सौंपा हुआ था। लेकिन शकुन्तला पिता की आज्ञावश नहीं, अपितु वृक्षों को अपने बन्धु समान मानकर उनका सम्मान करती थी। तभी तो उसने कहा "न केवलम् तात नियोग एव, अस्तिमेसोदरस्नेह एतेष"। पुनः शकुन्तला को विदा करते समय महर्षि काश्यप कह उठते हैं—

भो-भो संनिहितास्तपोवनतरवः!
पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥

इससे भी अधिक मार्मिक क्षण तब आता है जब शकुन्तला कण्व आश्रम से विदा हो रही होती है तो मृगशावक उसका आँचल पकड़ लेता है, काश्यप कहते हैं—

वत्से!
यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्द्धितको जहाति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते॥

धन्य थे वे आश्रमवासी, धन्य थी शकुन्तला एवं धन्य थे वे मूक वन्यपशु जो परस्पर एक ही परिवार के भाई-बहिनों की तरह रहते थे। तब क्यों-कर न

पर्यावरण और कण्व आश्रम की घाटियाँ अत्यन्त सुन्दर, मोहक एवं स्वास्थ्य-वर्धक रही होंगी। जहाँ आज भी हमारे बच्चों का गुरुकुल आश्रम मालिनी नदी के तट पर अपनी विशिष्टता लिए हुए हमें सहज ही अभिज्ञान शाकुन्तलम् में वर्णित राजा दुष्यन्त तथा शकुन्तला की प्रणयलीला का स्मरण करा देता है।

आज भी अनङ्गप्रिय वसन्त ऋतु के आगमन पर कण्वघाटी अत्यन्त सुन्दर, विहंगम एवं मोहक हो उठती है। और हो भी क्यों न—

द्रुमाः सुपुष्पाः सलिलं सपद्मं,
स्त्रियः सकामाः पवनः सुगंधिः।
सुखाः प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः,
सर्वं प्रिये! चारूतरं वसंते॥

तो ऐसी रही है कण्व आश्रम की प्राकृतिक परम्परा। आज कण्वघाटी के वनक्षेत्र विरलतर होते जा रहे हैं, कालिदास द्वारा वर्णित लतावृक्षादि एवं मृगादि लुप्त होते जा रहे हैं। सुन्दर मालिनी रेत का घाट अथवा बरसाती नदीमात्र रह गई है। और समस्त पर्यावरण अत्यन्त अस्त–व्यस्त नजर आता है। इन्हीं ऐतिहासिक और वर्तमान वास्तविकताओं की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर ही यह निश्चय किया गया कि हिमालय पर्वतीय पर्यावरण शोध-योजना के अन्तर्गत महर्षि कण्व के गुरुकुल आश्रम की स्थली को ही अपनी योजना के प्रथम चरण का केन्द्र बनाया जाए।

विगत माह में जन्तुविज्ञान विभाग द्वारा कण्व घाटी में स्थित ग्राम पंचायतों के प्रधानों से तथा वहाँ स्थित गुरुकुल विद्यालय के संस्थापक-व्यवस्थापक ब्रह्मचारी श्री विश्वपाल जयन्त जी से सम्पर्क स्थापित कर विचार-विनिमय किया गया है। और हमें विश्वास है कि इन सभी के सहयोग से पर्यावरण सुधार की दिशा में कण्व आश्रम की घाटी और कोटद्वार क्षेत्र में सफलतापूर्वक कार्य किया जा सकेगा।

समाज के लिये गणित की उपयोगिता

—विजयेन्द्र कुमार
रीडर, गणित विभाग
विज्ञान महाविद्यालय,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
तथा
कु० सरिता रानी

गणित को प्राय: कठिन और नीरस विषय समझा जाता है। यद्यपि वास्तव में ऐसा नहीं है। गणित का अध्ययन करते हुए छात्र प्राय: पूछते हैं कि हम गणित क्यों पढ़ रहे हैं ? ऐसा कठिन विषय पढ़ाकर क्यों हमारा समय नष्ट किया जा रहा है ? यह हमारे क्या काम आयेगा ? प्रस्तुत लेख में इसी प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया जा रहा है। वैसे यह विषय अति विस्तृत है। सब उपयोग यहाँ पर देना संभव नहीं है। इन प्रश्नों के उत्तर में यदि यह कहा जाये कि पूरी सभ्यता गणित पर ही आधारित है तो अतिशयोक्ति न होगी। जिन विज्ञानप्रदत्त साधनों का हम प्रयोग करते हैं उन सबके आविष्कारों में उच्च तथा प्रयुक्त गणित का ही उपयोग हुआ है। लेकिन केवल यह कहना संतोषजनक नहीं है।

व्यक्ति अपनी बाल्यावस्था में ही आधुनिक गणित के सिद्धान्तों से परिचित होता है। यदि दो बच्चों को अलग-अलग संख्याओं में खिलौने दिये जाते हैं (उदाहरण के लिए एक बच्चे को दो तथा दूसरे को तीन) तब उसे अपने प्रति किये गये अन्याय का आभास हो जाता है। इस आभास का कारण बच्चे के द्वारा अपने तथा दूसरे बच्चे के खिलौनों में एक-एकसंगतता स्थापित करने के कारण होता है। एक-एकसंगतता का एक और उदाहरण देखिये। इसके लिए दो समुच्चयों पर विचार कीजिए।

N={१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०......} तथा
E={२, ४, ६, ८, १०......}

क्या इन समुच्चयों में तत्वों की संख्या समान है अथवा असमान। इस प्रश्न का उत्तर गणित की जिस शाखा से प्राप्त होता है उसे आधुनिक गणित कहते हैं तथा एक-

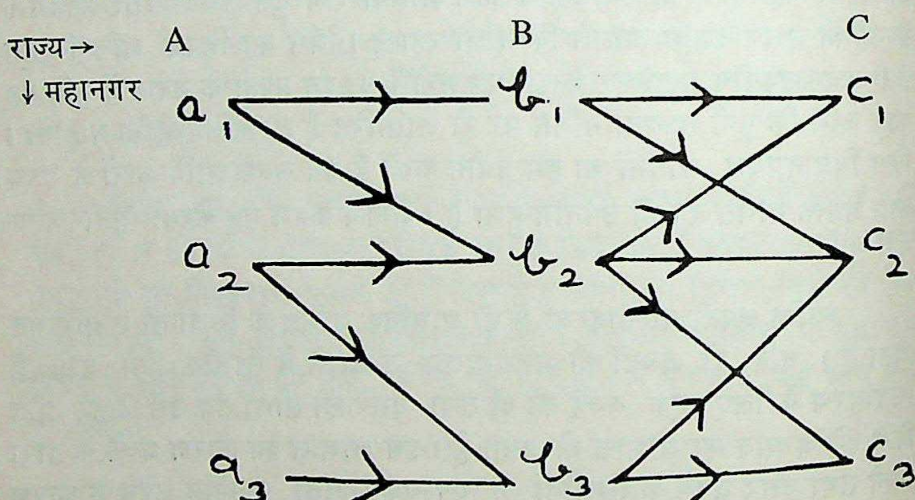
एकसंगतता के आधार पर यह तय करते हैं कि तत्वों की संख्या समान है अथवा असमान। बच्चे इसी एक-एकसंगतता के आधार पर अपने खिलौनों की तुलना दूसरे बच्चों के खिलौनों से करके सन्तुष्ट अथवा असन्तुष्ट होते हैं।

अब यह आवश्यक नहीं रहा कि सब व्यक्ति अच्छा गणित जानते हों। जो व्यक्ति अधिक गणित नहीं जानते वे भी साधारण गणक की सहायता से काम चला सकते हैं। कुछ अन्य उपयोग नीचे लिखे जा रहे हैं। निम्न समस्या पर विचार कीजिए।

A राज्य में तीन महानगर a_1, a_2, a_3 हैं। इसी प्रकार B राज्य में b_1, b_2, b_3 तथा C से c_1, c_2, c_3 ।

a_1 महानगर का b_1 तथा b_2 महानगर से रेल सम्बन्ध है। इसी प्रकार a_2 का b_2 तथा b_3 से, a_3 का b_3 से, इसी प्रकार b_1 का c_1 से तथा c_2, b_2 का c_1, c_2 तथा c_3 से तथा b_3 का c_2 तथा c_3 से। महानगरों में आपसी रेल संबन्धों को ज्ञात कीजिए।

उपरोक्त कथन में दी गयी सूचना को चित्र द्वारा निम्न प्रकार प्रदर्शित किया जा रहा है।



A तथा B राज्यों के रेल संबधों को मैट्रिक्स की सहायता से निम्न प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है।

$$\begin{array}{c} \\ a_1 \\ a_2 \\ a_3 \end{array} \begin{array}{c} \begin{array}{ccc} b_1 & b_2 & b_3 \end{array} \\ \left|\begin{array}{ccc} १ & १ & ० \\ ० & १ & १ \\ ० & ० & १ \end{array}\right| \end{array} = X \text{ (माना)}$$

(दो महानगरों में संबध होने को १ अंक से तथा न होने को ० से प्रदर्शित किया गया है।)

इसी प्रकार B तथा C नगरों के संबधों की मैट्रिक्स निम्न प्रकार वनती है :

$$\begin{array}{c} \\ b_1 \\ b_2 \\ b_3 \end{array}\begin{array}{c} \begin{array}{ccc} c_1 & c_2 & c_3 \end{array} \\ \left|\begin{array}{ccc} १ & १ & ० \\ १ & १ & १ \\ ० & १ & १ \end{array}\right| \end{array} = Y \text{ (माना)}$$

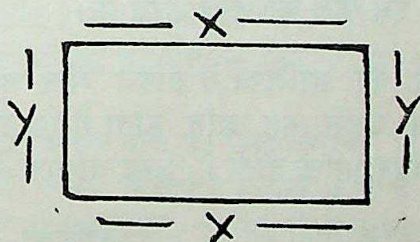
अब A तथा C महानगर के संबंध X तथा Y की गुणन मैट्रिक्स से प्राप्त हो सकते हैं।

$$XY = \left|\begin{array}{ccc} १ & १ & ० \\ ० & १ & १ \\ ० & ० & १ \end{array}\right| \left|\begin{array}{ccc} १ & १ & ० \\ १ & १ & १ \\ ० & १ & १ \end{array}\right| = \begin{array}{c} \\ a_1 \\ a_2 \\ a_3 \end{array}\begin{array}{c} \begin{array}{ccc} c_1 & c_2 & c_3 \end{array} \\ \left|\begin{array}{ccc} २ & २ & १ \\ १ & २ & २ \\ ० & १ & १ \end{array}\right| \end{array} = Z$$

परिणाम मैट्रिक्स Z से यह ज्ञात होता है कि महानगर a_3 तथा c_1 में कोई रेल संबध नहीं है तथा a_1 तथा c_1 में दो रेल संबध हैं, आदि।

आइये, एक दूसरे प्रकार की समस्या पर विचार करें। एक मनुष्य के पास १००० फीट लम्बी बाढ़ करने की व्यवस्था है। वह उस बाढ़ को कितनी लम्बाई, कितनी चौड़ाई में प्रयोग करे जिससे अधिकतम क्षेत्रफल सुरक्षित हो सके।

मान लिया वह X फीट लम्बाई तथा Y फीट चौड़ाई रखता है। तब



$२x + २y = १०००$
अथवा $x + y = ५००$
सुरक्षित क्षेत्रफल $A = xy$

$$A = x\,(५०० - x) = ५००x - x^2$$

$$\frac{dA}{dx} = ५०० - २x = ० \Rightarrow x = २५० \Rightarrow y = २५०$$

$$\frac{d^2A}{dx^2} = -ve \text{ (ऋणात्मक)}$$

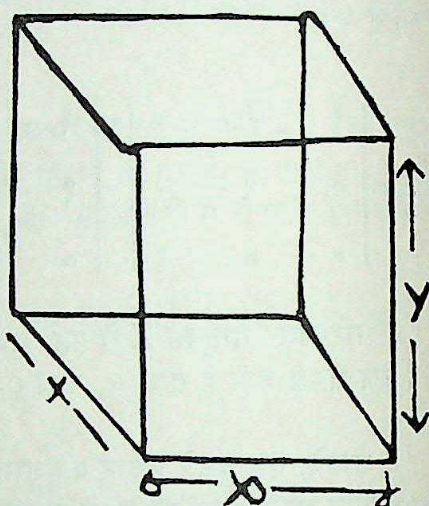
हल यह प्राप्त हुआ कि प्रत्येक भुजा की लम्बाई २५० फीट होनी चाहिए अथवा यह कहा जा सकता है कि क्षेत्र वर्गाकार हो।

अब मान लिया किसी व्यापारी को १००० लीटर क्षमता वाली वर्गाकार आधार वाली ढक्कनसहित टंकिया (धातु की चादर की) बनाने का आदेश प्राप्त हुआ है। यदि वह प्रत्येक टंकी में निम्नतम धातु का प्रयोग कर सके तो अपने लाभ को अधिकतम बना सकेगा।

आइये आप इसकी टंकी की विभायें निर्धारित कीजिये।

मान लिया आधार x मीटर का वर्ग है तथा ऊंचाई y मीटर है। तब यह ज्ञात है कि $x^2y = १०००$

टंकी में लगी चादर



$z = ४xy + २x^2$

$\frac{dz}{dx} = ४ \times \frac{2000}{x^2} + २x^2$

$\frac{dz}{dx} = \frac{8000}{x^2} + ४x = ० \Rightarrow$

$x = १०, \Rightarrow y = १०$

$\frac{d^2z}{dx^2} = +ve$ (धनात्मक)

अतः टंकी को १०×१०×१० आकार का होना चाहिए—

$z = ४ \times १० \times १० + २(१०)^2 = ६००$ वर्ग मीटर

अब इस फल की जाँच करते हैं।

नीचे की तालिका में साइज और लगने वाली चादर का विवरण दिया जा रहा है। इससे यह ज्ञात होता है कि उपरोक्त आकार के अनुसार न्यूनतम धातु की चादर प्रयुक्त होती है, अन्य आकारों में अधिक।

तालिका

ल०(मी०)	चौ० (मी०)	ऊं०(मी०)	आ० (घन मी०)	प्रयुक्त धातु की चादर (वर्ग मीटर)
१	१	१०००	१०००	४००२
५	५	४०	१०००	८५०
१०	१०	१०	१०००	६००
२०	२०	२.५	१०००	१०००

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गणितीय ढंग से प्राप्त विभायें रखने पर प्रयुक्त चादर अल्पतम है। अतः व्यापारी का लाभ अधिकतम होगा।

गणित का प्रयोग करके पहुँच से बाहर स्थलों की ऊँचाई अथवा दूरी ज्ञात की जा सकती है। उदाहरण के लिये निम्न समस्या पर विचार करें।

कोई आदमी नदी के किनारे खड़े होकर देखता है कि नदी के दूसरे किनारे पर एक वृक्ष ६०^0 का कोण बनाता है। और जब किनारे से ४० फुट पीछे हट जाता है तब वृक्ष ३०^0 का कोण बनाता है। वृक्ष की ऊँचाई तथा नदी की चौड़ाई ज्ञात करो।

AB वृक्ष CDEF नदी के एक किनारे पर है। EF किनारे के G बिन्दु पर खड़ा मनुष्य पर वृक्ष ६०^0 का कोण तथा H बिन्दु पर जहाँ HG=४०', ३०^0 का कोण बनाता है।

इन जानकारियों के आधार पर बिना वृक्ष तक जाये वृक्ष की ऊँचाई ज्ञात की जा सकती है।

गणित की सहायता से कुछ व्यक्तियों के समूह के विषय में जानकारी प्राप्त की जा सकती हे।

आइये निम्न प्रकार की समस्या पर विचार करें। व्यक्तियों के एक समूह की औसत ऊँचाई ६८ इंच है तथा औसत भार २०० पाऊँड। सह-संबन्ध गुणाँक .६ है। ऊँचाई तथा भार के प्रमाप विचलन क्रमशः २.५ इंच तथा २० पाउन्ड हैं। जिस व्यक्ति का भार २०० पाउन्ड है उसकी ऊँचाई ज्ञात कीजिए। इस प्रकार की समस्या का हल रिग्रेसन समीकरणों की सहायता से निकाला जा सकता है।

वस्तुओं के निर्माता सर्वे करके इस बात का पता लगाना चाहा करते हैं कि जनता किस प्रकार की वस्तुएँ पसन्द करती है। इस कार्य के लिये विशेष व्यक्ति नियुक्त किये जाते हैं। इनकी दी हुई सूचना पर भी बिना जाँच के विश्वास नहीं किया जाता।

गणित ने ऐसे टैस्ट भी दिये हैं जिनसे यह पता लगाया जा सकता है कि प्रस्तुत आँकड़े ठीक हैं या नहीं। वास्तविक सर्वे द्वारा प्राप्त किये गये हैं अथवा घर बैठकर ही गढ़ लिये गये हैं। नीचे इसका उदाहरण है।

किसी बी० बी० सी० के पर्यवेक्षक ने ७०० व्यक्तियों से उस संगीत की

राष्ट्रीयता के बारे में जानकारी प्राप्त की जो उन्हें पसन्द हैं। उसने जो उत्तर प्रस्तुत किये वह इस प्रकार थे :

५७० इंगलिश, ६५० फ्रेन्च, ४८० जर्मन, ४४० इंगलिश तथा फ्रेन्च, ३६० फ्रेन्च तथा जर्मन, २४० इंगलिश तथा जर्मन तथा २२५ ने तीनों संगीत पसन्द किये। क्या यह सूचना सत्य है ?

प्रस्तुत उदाहरण में N=७००, (A)=५७०, (B)=६५०, (C)=४८०, (AB)=४४०, (BC)=३६०, (AC)=२४० तथा (ABC)=२२५

परीक्षण सूत्र $(\alpha\beta r)=N-(A)-(B)-(C)+(AB)+(BC)+(AC)-(ABC)$ से $(\alpha\beta r)$ का मान ऋणात्मक आता है जिससे यह सिद्ध होता है कि ये सूचनाएँ असत्य हैं।

भारत सरकार को योजना बनाने के लिये यह जानना होता है कि जनसंख्या कितनी है। किसी विशेष समय पर जनसंख्या जानना अति व्ययसाध्य है। और भविष्य की जनसंख्या की वास्तविक गणना तो असंभव है। परन्तु गणितीय रीतियों से यह गणना संभव है। उदाहरण के लिये १९३१, १९४१, १९५१, १९६१, १९७१, १९८१ की जनसंख्या की जानकारी होने पर १९९१ अथवा १९८७ अथवा १९९५ आदि की जनसंख्या की गणना की जा सकती है।

केवल रचनात्मक कार्यों में ही नहीं, विध्वंसात्मक कार्यों में भी गणित का उतना ही उपयोग किया जाता है।

उर्ध्वाधर समतल में गति के ज्ञान से युद्ध की कितनी ही समस्याएँ हल की जाती हैं।

युद्ध की निम्न समस्या पर विचार कीजिए। एक वायुयान X किलोमीटर की ऊँचाई पर Y किलोमीटर प्रति घन्टे के क्षैतिज वेग से उड़ रहा है। इसे पृथ्वी पर स्थित एक लक्ष्य पर बम गिराना है। लक्ष्य से कितनी क्षैतिज दूरी पर यह बम छोड़ा जाय कि वह ठीक लक्ष्य पर गिरे ?

अथवा

h मीटर ऊँची पहाड़ी पर शत्रु किसी कोण x पर अपना मोर्चा लगाये हुए है। कम से कम किस वेग से गोला फेंकने वाली तोप से उस पर प्रहार किया जा सकता है ? इन सभी प्रश्नों का हल हम गणित के साधारण प्रयोग द्वारा ज्ञात कर सकते हैं।

प्रस्तुत लेख में कुछ उदाहरण देकर गणित का प्रयोग दर्शाया गया है। वास्तव में शायद ही कोई क्षेत्र हो जहाँ गणित का कोई हस्तक्षेप न हो। इस विषय का संसार पर सबसे अधिक आधिपत्य है। * *

गंगा के सलिलीय कवक

प्रो० विजयशंकर एवं डा० गंगाप्रसाद गुप्त
गंगा समन्वित योजना
(भारत सरकार पर्यावरण विभाग)
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

गंगानदी विश्व की पवित्रतम नदी है। यह सदियों से विश्व के अनगिनत लोगों का केन्द्रबिन्दु रही है। ऐसा विचार है कि चूंकि गंगा का उद्गम-स्थल हिमालय है, वहाँ से चलने के बाद गंगा के जल में अनेकों प्रकार के औषधीय पौधों के गुण एवं खनिजों का सम्मिश्रण होना स्वाभाविक है, जो इसे रोग-उत्पादक जीवाणुओं से पर्याप्त सीमा तक मुक्त रखने में सहायक हो सकते हैं।

चूंकि गंगा के जल का उपयोग एक बड़े पैमाने पर पीने एवं सिंचाई हेतु होता है, अत: इसका सीधा सम्बन्ध देशवासियों के स्वास्थ्य एवं अर्थ से है। अत: यह जरूरी है कि गंगा को प्रदूषण से बचाया जाये। बीसवीं सदी की औद्योगिक क्रान्ति ने देश में उद्योगों की स्थापना में लगातार वृद्धि की है। जनसंख्या की वृद्धि भी असाधारण रूप से हुई है। इनका पर्यावरण पर प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रकट हुआ है। देश के ४४ प्रथम एवं ६६ द्वितीय श्रेणी के शहरों में सीवेज संशोधन प्लांट्स के अभाव में दूषित पदार्थ गंगा के जल में सीधे डाले जाते हैं। साथ ही फैक्ट्रियों का कचड़ा बिधा शोधन किए डाला जाता है। आज गंगाजल की स्थिति यह है कि अनेकों स्थानों पर गंगाजल बिना शोधन किए पीने योग्य नहीं है। इस गम्भीर समस्या को हल करने हेतु केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण का गठन हुआ है। इसके अध्यक्ष देश के युवा प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी जी की संरक्षता में गंगा को साफ करने और रखने पर तीव्र गति से कार्य प्रारम्भ किया गया है।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार में "गंगा समन्वित योजना" के अन्तर्गत गंगा क्षेत्र का समन्वित अध्ययन प्रगति पर है। जिसमें गंगा के जल में पाये जाने वाले कवकों का अध्ययन भी शामिल है।

कवक मिट्टी, जल एवं वायु में पाये जाते हैं, तथा मानव-जीवन को परोक्ष या अपरोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। इनमें से कुछ मानव के लिए उपयोगी हैं। कुछ कवक हानिकारक भी हैं। ये कवक जैविक पदार्थों का विखण्डन करते हैं।

यदि इस प्रकार के सूक्ष्म जीव न होते तो शायद पृथ्वी पर जीवन के परिचक्र कल्पना कर पाना असम्भव होता। जहाँ एक ओर कुछ कवकों का उपयोग भोज्य-पदार्थों के रूप या औषधि निर्माण आदि में होता है, वहीं दूसरी ओर कुछ कवक अनाजों, पौधों, फलों, पशुओं एवं मानव में अनेकों व्याधियों को भी जन्म देते हैं। जिसके फलस्वरूप जन एवं धन दोनों प्रकार की गम्भीर हानि होती है।

कवकों द्वारा पशुओं एवं मनुष्यों में उत्पन्न व्याधियों को **माइकोजेज** कहा गया है (मेडिकल माइकोलोजी, तृतीय संस्करण, के०एम० वर्घी प्रकाशन)। इस प्रकार की व्याधियाँ निम्न एवं उच्च दोनों ही प्रकार के कवकों से उत्पन्न होती हैं। **ऊमाईसिटीज** श्रेणी के कवकों द्वारा उत्पन्न बीमारियों को **ऊमाईकोजेज** तथा **सैप्रोलिग्निया** के द्वारा उत्पन्न बीमारी को **सैप्रोलिग्नियोसिस** कहते हैं। यह रोग मछलियों में पाया जाता है। **पेन्सीलियम** (हरित कवक) की कुछ प्रजातियाँ जैसे **पे० वर्टीसी, पे० एक्सपेन्सम** एवं **एसस्परजिलस क्लैवेटम पैटुलिन** नामक कवक विष बनाती है जो **कार्सिनोजेनिक** है। खाये जाने वाले मशरूम की कुछ प्रजातियाँ गैस्ट्रोइन्टेस्टाइनल इरिटेन्ट को जन्म देती है। **फ्यूजेरियम** (अपूर्ण कवक) की प्रजातियाँ जैसे **फ्यू० सोलेनायी, फ्यू० निवाले, कारनेल** अल्सर पैदा करती हैं। जोन्स सैक्टन एव रेबेल (१६७०) बास्कम पामरनेत्र संस्थान मियामी फ्लोरिडा, ने अपने अध्ययन के दौरान ३८ व्यक्तियों में से (१६५६-१६६६) २६ लोगों में यह व्याधि फ्यूजेरियम के द्वारा उत्पन्न हुई ऐसा बताया है। इसके अलावा कवकों की ७० जातियाँ घातक व्याधियाँ, ४५ गम्भीर व्याधियाँ, एवं सैंकड़ों अन्य प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न करती हैं। सैंकड़ों प्रकार की बीमारियाँ, पशुओं, कृषिपौधों पर भी इन्हीं के द्वारा होती हैं। बीमारी के इन कवकों का स्रोत मिट्टी, जल एवं वायु है।

सर्वेक्षण विधियाँ एवं परिणाम—

इस अध्ययन के दौरान मुनि की रेती जनपद ऋषिकेश से लेकर हरिद्वार, गढ़मुक्तेश्वर जनपद मुरादाबाद तक के विभिन्न नमूने बिन्दु (Sampling points) से गंगा के जल एवं उसमें कारखानों के गिरने वाले व्यर्थ पदार्थों को लेकर प्रयोगशाला में बेटिंग टैक्नीक (Baiting technique) से अनेक प्रकार के कवक प्राप्त हुए हैं। जिनमें कुछ प्रजातियाँ **सैप्रोलिग्निया** एवं **एक्लिया** की भी हैं। वीरभद्र के आई०डी०पी०एल० का व्यर्थ कचड़ा जहाँ गंगा में मिलता है वहाँ से **लैप्टोमाईटस लैक्टस** प्राप्त हुआ है, गढ़मुक्तेश्वर से जहाँ एक बड़ा श्मशान घाट है, कम कवक प्राप्त हुये हैं। कुछ नमूने बिन्दुओं से फ्यूजेरियम की जातियाँ भी प्राप्त की गई हैं। बिहार में भी गंगा में अनेक प्रकार के कवक पाये जाने की रिपोर्ट भागलपुर विश्वविद्यालय के प्रो० के० एस० बिलग्रामी एवं मुन्सी दत्ता

(१९७९) ने दी है। गंगा क्षेत्र में ये कवक कृषि पौधों, जलीय जीव, मुख्यतः मछलियों की कुछ जातियों एवं मानव को किस सीमा तक प्रभावित करते हैं, इसका अनुमान लगाने के लिए विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता है।

आभार—लेखक, पर्यावरण विभाग, भारत सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए आभारी हैं। वे गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति माननीय श्री जी० वी० के० हूजा (अवकाशप्राप्त आई० ए० एस०) के उत्साहवर्द्धन, नेतृत्व, शैक्षणिक-अनुसन्धात्मक अभिरुचियों एवं शोध-कार्यों हेतु साधन प्रदान करने हेतु हृदय से आभार प्रकट करते हैं।

सन्दर्भ—(१) बिलग्रामी, के० एस० एवं जे० एस० दत्ता मुन्सी (१९७९) लिम्नो-लोजिकल सर्वे एण्ड इम्पैक्ट आफ ह्यूमेन एक्टीविटीज आन दि रीवर गैन्जेज, पृष्ठ : १—८७।

(२) चेस्टर डब्लू एमान्स, चैप्मैन एच बिनफोर्ड, जान पी पूत्ज एवं के० के० नोनचंग, मेडिकल माईकोलोजी, तृतीय संस्करण, पेज नं० १-५९०, के०एम० वर्धी प्रकाशन।

(३) जोन्स, डी०बी० सैक्सटन, आर० एवं रेबेल०जी० (१९६९), माइको-टिक केरेटाईटस इन साउथ फ्लोरिडा, ट्रांस आफ्थल सी०, यू० के० ८९, पृष्ठ ७८१-७९७।

गंगा समन्वित योजना

(भारत सरकार पर्यावरण विभाग)

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

गंगा विश्व की पवित्रतम नदियों में से एक है। जिसका उद्गम हिमालय पर्वत के गोमुख नामक स्थान से है। गंगा हिमालय पर्वत से निकलकर देश के तीन घनी आबादी वाले राज्यों उत्तरप्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल के मैदानी भागों में करीब २५२५ किलोमी० की दूरी तय करके बंगाल की खाड़ी के पास समुद्र में अपना अस्तित्व समाप्त कर देती है। प्राचीन काल से ही भारत की संस्कृति-सभ्यता गंगा से जुड़ी हुई है।

पिछले दो दशकों से जनसंख्या में असाधारण वृद्धि, तकनीकी विकास तथा पारिस्थितिकी असंतुलन के कारण गंगा की पवित्रता काफी सीमा तक प्रभावित हुई है, जिसके फलस्वरूप गंगा के किनारे पर बसे छोटे-बड़े नगरों से निकलने वाले घरेलु उत्प्रवाह से गंगा का जल रासायनिक एवं जैविक कारणों से दिन-प्रतिदिन प्रदूषित हो रहा है। इसी प्रकार तकनीकी विकास में किये गये नये-नये अनुसंधानों द्वारा नये-नये रसायन खोजे जा रहे हैं तथा कारखाने लगाये जा रहे हैं, जिनका औद्योगिक उत्प्रवाह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से नदियों में ही आ रहा है। नदियों पर बांध आदि बनाकर नयी-नयी नहरें अथवा विद्युत परि-योजनाएँ क्रियान्वित की जा रही हैं, जिनके कारण नदियों का प्राकृतिक प्रवाह बहुत कम हो रहा है, जो प्रदूषण में सहायक है।

गंगा की पवित्रता को बनाये रखने के लिए तथा विभिन्न स्रोतों से होने वाले प्रदूषण की मात्रा पर शोध एवं अध्ययन हेतु भारत सरकार के पर्यावरण विभाग द्वारा "पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण" अध्ययन के अंतर्गत कुछ धनराशि विभिन्न विश्वविद्यालयों को प्रदान की गयी है, जिनमें से गुरुकुल कांगड़ी विश्व-विद्यालय, हरिद्वार भी एक है। इस विश्वविद्यालय के वनस्पति विभाग के अध्यक्ष डा० विजय शंकर के निर्देशन में उक्त परियोजना का कार्य सुचारू रूप से प्रगति पर है।

प्रथमवर्षीय कार्य का विवरण—

इस योजना की अवधि भारत सरकार द्वारा तीन वर्ष निर्धारित की गयी है, जिसके फलस्वरूप योजना के कार्य को भी तीन चरणों में विभक्त किया गया है। प्रथम चरण में निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार निर्धारित सभी उपलब्धियाँ प्राप्त कर ली गयीं हैं। जो कि निम्न प्रकार हैं—

(अ) गंगा के दोनों किनारों पर सेम्पलिंग स्टेशनों का निर्धारण करके उक्त स्थानों से नियमित रूप से जल एवं मृदा तथा वानस्पतिक, सभी प्रकार के नमूने एकत्र किये जा रहे हैं।

(आ) गंगा में मिलने वाले विभिन्न प्रकार के शहरी एवं औद्योगिक प्रदूषण-स्रोतों का पता लगाकर उनसे निकलने वाले उत्प्रवाह का सेम्पलिंग भी किया जा रहा है। जिससे कि यह पता लगाया जा सके कि उनकी प्रदूषण-क्षमता क्या है तथा इसमें उपस्थित प्रदूषक गंगा में मिलने के उपरान्त किस सीमा तक गंगा की पवित्रता को प्रभावित करते हैं।

(इ) गंगा पर बांध आदि का निर्माण करके उनसे जो नहरें अथवा विद्युत परियोजनाएँ तैयार की जा रही हैं, उनसे लवणता तथा जलरिसाव (सीपेज) की समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं, उन क्षेत्रों का भी पता लगा लिया गया है।

(ई) वर्षा ऋतु के दौरान गंगा की बाढ़ से होने वाली हानि एवं भू-अपरदन जैसी गहन समस्याओं से निपटने लिये गंगा के किनारे बसे गांव-जैसे कांगड़ो ग्राम, गाजीवाली, श्यामपुर, पीली, सजनपुर तथा जगजीतपुर आदि गांवों में पौधों की कुछ ऐसी प्रजातियों का रोपण किया गया जो कि भू-अपरदन को रोकने में सहायक हों।

(उ) उक्त क्षेत्रों के नक्शे एवं चार्ट आदि भी अग्रिम कार्यवाही हेतु तैयार कर लिये गये हैं।

(ऊ) विभाग के बगीचे में एक पौधशाला भी तैयार की गयी है जिसमें अनेक प्रकार के लगभग १०,००० पौधों को उगाया गया है जो कि भूमि अपरदन एवं बाढ़-नियंत्रण में सहायक हो सकते हैं। इसी के साथ उन औषधीय पौधों को भी उगाया जा रहा है जो गंगा क्षेत्र में तीव्र गति से समाप्त हो रहे हैं या जिनका अस्तित्व खतरे में है।

(ए) इस योजना के कार्यक्षेत्र में उपलब्ध अधिकांश औषधीय पौधों एवं सौन्दर्य-प्रसाधन में उपयोगी पौधों की सूची तैयार की गयी है, जिससे यह पता

लगाया जा सके कि गंगा क्षेत्र से किस मात्रा में ये पौधे प्राप्त किये जा सकते हैं।

(ऐ) गंगा के किनारे बसे कुछ ग्रामों के सामाजिक एवं आर्थिक पहलुओं का भी अध्ययन करके उनका तुलन-पत्र तैयार किया जा रहा है, ताकि उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये सरकार से सिफारिश की जा सके।

शोध स्टाफ—

इस परियोजना में निम्नलिखित स्टाफ कार्यरत है :

(१) शोध वैज्ञानिक	डा० आर० पी० एस० सांगू
(२) सीनियर रिसर्चफैलो	(अ) डा० जी० पी० गुप्ता (वनस्पति) (आ) श्री ए० पी० रस्तोगी (वनस्पति)
(३) जूनियर रिसर्चफैलो	(अ) श्री जी० सी० जोशी (जन्तु विज्ञान) (आ) श्री मिश्रा (वनस्पति) (इ) श्री नीरजकुमार त्रिवेदी (वनस्पति) (ई) श्री गोविन्दकान्त श्रीवास्तव (रसायन शास्त्र)
(४) फील्ड/लैब अटैंडेण्ट	(अ) श्री चन्द्रप्रकाश (आ) श्री पौखपाल
(५) माली	श्री रामअनोर
(६) चालक	श्री मांगेराम

सर्वेक्षण तथा सैम्पलिंग स्टेशन—

ऋषिकेश से गढ़मुक्तेश्वर तक फैले क्षेत्र का सघन सर्वे निर्धारित अवधि के अन्तर्गत कर लिया गया। सर्वे के दौरान इस क्षेत्र में आने वाले प्रदूषण-स्रोतों की पहिचान कर ली गयी है तथा सभी छोटे तथा बड़े प्रदूषण–स्रोतों से निकलने वाले घरेलु तथा औद्योगिक उत्प्रवाहों का यथासम्भव सैम्पलिंग भी नियमित रूप से महीने में एक बार एवं कुछ स्थानों में दो बार किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में गंगा की बाढ़, जल-प्लावन, जलरिसाव आदि समस्याओं से ग्रस्त क्षेत्रों का पता लगाया गया। सर्वेक्षण एवं सुविधा की दृष्टि से पूरे क्षेत्र को दो क्षेत्रों में विभाजित किया गया है—(अ) हरिद्वार से ऊपर ऋषिकेश तक का क्षेत्र, (आ) हरिद्वार से नीचे गढ़मुक्तेश्वर तक का क्षेत्र।

(अ) हरिद्वार तथा उससे ऊपर ऋषिकेश तक के क्षेत्र के प्रदूषण-स्रोत तथा उनकी प्रदूषण-क्षमता—

यह क्षेत्र करीब ३० किमी० दूर तक फैला हुआ है। इसके अन्तर्गत ऋषिकेश, भारत सरकार का उपक्रम आई०डी०पी०एल० एवं उसका टाउनशिप आदि प्रदूषण-स्रोत आते हैं।

ऋषिकेश में गंगा के दायें किनारे पर त्रिवेणी घाट नाला एक प्रमुख प्रदूषण-स्रोत है जिसके द्वारा गंगा के दायें किनारे पर स्थित सम्पूर्ण शहर का घरेलु मल-मूत्र (घरेलु उत्प्रवाह) इस नाले द्वारा आकर त्रिवेणी घाट के पास गंगा में मिल जाता है तथा गंगा की जलगुणता को काफी सीमा तक प्रभावित कर प्रदूषित करता है। इसके अतिरिक्त इस किनारे पर कुछ छोटे-छोटे मौसमी नाले, जैसे शीशम की झाड़ी ड्रेन तथा मुनी की रेती ड्रेन आदि गंगा में मिल जाते हैं। इन नालों का प्रवाह अधिक न होने के कारण गंगा के तेज प्रवाह में इनका प्रभाव नगण्य-सा हो जाता है।

गंगा के बायें किनारे पर स्थित कुछ धार्मिक आश्रमों एवं स्थानों जैसे- स्वर्ग आश्रम, गीता भवन, परमार्थ निकेतन, लक्ष्मणझूला बस्ती आदि से निकला हुआ घरेलु उत्प्रवाह सीधे गंगा नदी में आकर मिल जाता है। करीब १० नाले स्वर्गाश्रम क्षेत्र से तथा ५ लक्ष्मणझूला क्षेत्र से गंगा में मिल रहे हैं। सर्वेक्षण के दौरान इन नालों की एक प्रमुख विशेषता यह पायी गयी कि इन नालों का प्रवाह संध्या तथा दोपहर की अपेक्षा सुबह अधिक नोट किया गया है। दूसरी प्रमुख विशेषता इन नालों की यह पायी गयी है कि इन नालों की निकासी प्रमुख स्नान-घाटों के पास है जहाँ पर तीर्थयात्री तथा श्रद्धालु भक्तजन गंगा-जल का आचमन करते हैं। जिसका सीधा प्रभाव स्नान करने वाले श्रद्धालुओं के स्वास्थ्य पर पड़ता है। तथा इसके अतिरिक्त इन आश्रमों से निकलने वाली गन्दगी का ढेर भी गंगा के किनारे लगा दिया जाता है। वर्षा के दौरान गंगा में प्रवाह बढ़ने से सम्पूर्ण ठोस पदार्थ गार्वेजा पत्तों के दोने, कागज, प्लास्टिक, आम की गुठली आदि गंगा में मिल जाते हैं तथा गंगा की पवित्रता को नष्ट करते हैं। ऋषिकेश में स्थित धोबीघाट, स्नान घाट, श्मशान घाट भी गंगा के प्रदूषण का कारण हैं।

ऋषिकेश से करीब १० कि.मी. नीचे की ओर भारत सरकार उपक्रम आई. डी. पी. एल. संस्थान वीरभद्र पर स्थित है जिसमें जीवनरक्षण औषधियों, जैसे- पैनसीलिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन का निर्माण बड़ी मात्रा में किया जा रहा है, इसकी अपनी अलग टाउनशिप है। ऋषिकेश तथा हरिद्वार के बीच पड़ने वाले क्षेत्र में यह संस्थान एक प्रमुख प्रदूषक-स्रोत के रूप में मार्क किया गया है। इस संस्थान से दो मुख्य नाले, क्रमशः खदरी ग्राम तथा पशुलोक बैराज के पास आकर

गंगा में मिल जाते हैं। खदरी ग्राम के पास मिलने वाले नाले में टाउनशिप का घरेलु उत्प्रवाह तथा फैक्टरी का औद्योगिक उत्प्रवाह गंगा में मिलकर गंगा की पवित्रता को नष्ट कर देते हैं। इस उत्प्रवाह के पीने से गांव वालों के जानवर आदि मर रहे हैं तथा इसमें नहाने आदि से शरीर में खुजली तथा अन्य प्रकार की त्वचा की बीमारियों की शिकायत ग्रामवासियों से निरन्तर मिलती रहती है। इस उत्प्रवाह में घुलनशील आक्सीजन की मात्रा निर्धारित मापदण्ड से अत्यधिक कम अथवा शून्य मिल रही है जो कि गंगा के पानी में रहने वाले जीव-जन्तुओं के लिए घातक सिद्ध हो रही है। इसके अतिरिक्त अधिकतर अवसरों पर इस उत्प्रवाह की पी०एच० भी अम्लीय पाई गयी है जोकि जीव-जन्तुओं तथा छोटे पौधों के लिये हानिकारक सिद्ध हुयी है। पशुलोक बैराज से (चीला नहर में) गंगा का अधिकतर जल विद्युत उत्पादन हेतु ले लिया जाता है जिससे गंगा में प्राकृतिक प्रवाह की मात्रा काफी कम हो जाती है। साथ ही प्रवाह की गति भी काफी धीमी हो जाती है। ऐसी स्थिति में एक छोटा-सा नाला भी इसे प्रदूषित कर सकता है। चीला नहर क्षेत्र सीपेज से ग्रस्त है।

वीरभद्र से करीब ७ कि मी. नीचे की ओर गंगा की सहायक नदी सोंग भी गंगालहरी के पास अपना अस्तित्व गंगा में मिला देती है।

उपरोक्त प्रदूषण-स्रोतों को दृष्टि में रखते हुए ऋषिकेश तथा हरिद्वार के वीच निम्नलिखित सैम्पलिंग स्टेशन निर्धारित किये गये हैं:

(१) त्रिवेणी घाट
(२) पशुलोक बैराज
(३) आई० डी० पी० एल० नाला
(४) श्यामपुर खादर
(५) सोंग नदी
(६) मुनी की रेती, स्वर्गाश्रम आदि (सीजनल सैम्पलिंग)

हरिद्वार हिन्दुओं की एक धार्मिक नगरी है, जो ऊपरी गंगा नहर के दायें किनारे पर स्थित है। इसमें आश्रमों और मन्दिरों की संख्या इतनी अधिक है कि लोग इसे आश्रमों एवं मन्दिरों की नगरी के नाम से पुकारते हैं। देश-विदेश से लाखों तीर्थयात्री इस पवित्र नगरी में अपने पापों का पश्चाताप करने एवं उन्हें धोने के लिए गंगा में स्नान करने हरिद्वार आते हैं। हरिद्वार में स्नान घाटों, श्मशान घाटों, धोबी घाटों, पूजा के दौरान विसर्जित किये जाने वाले आर्गेनिक पदार्थ, जैसे- फूल, पत्ती, चिराग आदि के अलावा सात प्रमुख नालों जैसे भीमगोड़ा, कांगड़ा मन्दिर, नाईसोता, ललितारावं, विष्णुघाट, कुशाघाट, गऊघाट, एवं बी. एच. ई. एल. का विशेष योगदान गंगा एवं गंगा नहर के प्रदूषण में है। इसमें सबसे अधिक कुप्रभाव बी. एच. ई. एल. नाले का है।

बी. एच. ई. एल. नाला गंगा नहर पर बने रेलवे पुल के पास औद्योगिक उत्प्रवाह एवं ज्वालापुर की गन्दगी को गंगा में मिला रहा है जो दूर तक गंगा के पानी को काला बना देता है। इस नाले में हमेशा घुलनशील आक्सीजन की मात्रा शून्य मिली है जो नाले में भारी मात्रा में आर्गेनिक प्रदूषण लोड भार को प्रदर्शित करती है। इस स्थान से नीचे पड़ने वाले सभी स्नान-घाटों पर इसका प्रभाव नोट किया गया है। इसमें बी ओ. डी., एम. पी. एन. इन्डैक्स प्रदूषण की निर्धारित मापदण्ड की तुलना में काफी अधिक मिले हैं।

हरिद्वार में गंगा में मिलने वाले सभी नालों की स्थिति को देखते हुए निम्न सैम्पलिंग स्टेशन निर्धारित किए गए हैं तथा महीने में दो बार नियमित रूप से जल-नमूने, आने वाले कुम्भ मेले की महता को देखते हुए, एकत्र करके उनका विश्लेषण किया जा रहा है—

(१) कांगड़ा मन्दिर
(२) हरि की पौड़ी
(३) ललिताराव नाला
(४) ज्वालापुर नाला–२ (बी. एच. ई. एल.)
(५) सतीघाट, भीमगोड़ा एवं दक्ष प्रजापति (सीजनल)

(आ) हरिद्वार से नीचे गढ़मुक्तेश्वर तक क्षेत्र के प्रदूषण–स्रोत तथा उनकी प्रदूषण-क्षमता—

यह क्षेत्र हरिद्वार से नीचे की ओर करीब २०० कि.मी. दूरी तक गढ़मुक्तेश्वर तक फैला हुआ है। इसके अन्तर्गत बिजनौर, मुरादाबाद, मुजफ्फरनगर तथा गाजियाबाद जिलों के क्षेत्र आते हैं। बिजनौर जिले में कोई बड़ा कारखाना अथवा शहर गंगा के किनारे स्थित नहीं है, लेकिन गंगा के किनारे श्मशान घाटों की राख, अर्ध-जले शवों, लकड़ियों के हिस्सों के अलावा छोटी-बड़ी शुगर मिलों का औद्योगिक उत्प्रवाह ही है जो स्थानीय रूप से गंगा की गुणता को प्रभावित करते हैं।

इस क्षेत्र में गजरौला (मुरादाबाद) का औद्योगिक क्षेत्र गंगा का प्रमुख प्रदूषण–स्रोत है। इस औद्योगिक क्षेत्र में बाय–आर्गेनिक, रसायन, सैन्चुरी पेपर मिल, श्री एसिड एवं कैमिकल्स के अतिरिक्त अन्य छोटी-छोटी औद्योगिक इकाइया अपना औद्योगिक उत्प्रवाह बगध नाले द्वारा गढ़मुक्तेश्वर से नीचे गंगा में डाल रही हैं। बगध नाले की प्रदूषण-क्षमता राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्डों से काफी अधिक है। इसमें घुलनशील आक्सीजन की मात्रा हमेशा शून्य तथा पी. एच. अम्लीय मिली है। यहाँ के स्थानीय लोगों के अनुसार इसमें कुछ ऐसे घातक जहरीले तत्व भी विद्यमान हैं जिनके पीने से उस क्षेत्र में पशुओं और

पक्षियों की जान चली गयी है। इस नाले की बी. ओ. डी. तथा सी. ओ. डी. हजारों की संख्या में पाई गई है जो कि यह प्रदर्शित करती है कि इसमें आर्गेनिक तथा इनार्गेनिक प्रदूषण का अत्याधिक भार विद्यमान है।

इस क्षेत्र में गंगा के किनारे पड़ने वाला दूसरा छोटा शहर गढ़मुक्तेश्वर है। इस शहर में कोई बड़ा औद्योगिक प्रतिष्ठान आदि नहीं है। लेकिन शहर से निकलने वाले घरेलु उत्प्रवाह के अलावा बृजघाट श्मशान घाट विशेष प्रदूषण-स्रोत हैं। ऐसा बताया गया कि बृजघाट श्मशान घाट पर औसतन ३० से ७० शव प्रतिदिन जलाये जाते हैं। जिनकी राख तथा अर्धजली लकड़ी एवं शव के हिस्से गंगा में प्रवाहित कर दिये जाते हैं। शव के अर्धजले हिस्सों को कुत्ते तथा अन्य जंगली जानवर खाते हुए देखे गये हैं। बृजघाट पर एम०पी०एन० इन्डैक्स की मात्रा काफी अधिक मिली है। इसके अलावा घुलनशील आक्सीजन की मात्रा मापदण्ड से कम, जबकि बी० ओ० डी० की मात्रा मापदण्ड से अधिक मिली है जो कि इस क्षेत्र में आर्गेनिक प्रदूषण को प्रदर्शित करती है।

उक्त प्रदूषण-स्रोतों को देखते हुए इस क्षेत्र में निम्न सैम्पलिंग स्टेशन निर्धारित किये गये हैं—

(१) चण्डीपुल
(२) नांगल
(३) रावली बैराज दोनों किनारे
(४) तिगरी
(५) गढ़मुक्तेश्वर दोनों किनारे

गंगाजल की गुणता तथा प्रदूषण-स्रोतों की प्रदूषण-क्षमता—

गंगाजल की गुणता एवं विभिन्न प्रदूषण-स्रोतों की प्रदूषण-क्षमता का पता लगाने हेतु एकत्र किये गये जल-नमूनों का निम्न भौतिक, रसायन एवं जैविकात्मक कारकों का विश्लेषण फील्ड तथा प्रयोगशाला दोनों में ही किया जा रहा है; जिसमें गुणात्मक एवं मात्रात्मक अध्ययन निहित है।

(अ) भौतिक-रसायन कारक—

इस विश्लेषण के अन्तर्गत **टरविडिटी** (मैलापन), **कन्डक्टिविटी, पी. एच., रंग, गंध, कठोरता, क्षारीयता, सल्फेट, क्लोराइड, नाइट्राइट, नाइट्रेट, घुलनशील आक्सीजन, बी.ओ.डी., सी.ओ.डी.** आदि प्रमुख कारकों का अध्ययन किया जा रहा है, जिनके आधार पर गंगाजल की गुणता तथा विभिन्न प्रकार के प्रदूषण-स्रोतों की प्रदूषण-क्षमता का पता लगाया जा रहा है।

औद्योगिक उत्प्रवाहों का डी० ओ० (I. D. P. L. ऋषिकेश, BHEL, रानीपुर) ० से ३ मि०ग्राम/लि० एवं बी०ओ०डी० २५० से ४५० मि०ग्रा०/लि० पाया गया।

विभिन्न स्थलों से गंगा के पानी का डी० ओ० ४.५ से १२.० मि०ग्रा०/लि. पाया गया। इसी प्रकार बी०ओ०डी० और सी०ओ०डी० क्रमश: २० से १३० मि० ग्रा०/लि० एवं ८० से २६० मि०ग्रा०/लि० पाये गये। गंगाजल का पी०एच० प्राय: ७ से ८ तक रहा। टर्बिडिटी ०–६ एन० टी० यू० (शरद ऋतु में) एवं १२०० एन० टी० यू० वर्षा ऋतु में पाई गई।

(आ) **जैविकात्मक—**

इस विश्लेषण के अन्तर्गत पानी में पाये जाने वाले फाइटोप्लाक्टन, जूप्लाकटन, कवक एवं जीवाणुसम्बन्धी कारकों का अध्ययन किया जा रहा है। जो निम्न प्रकार है :

(क) फाइटोप्लाकटन—

शैवाल के ८५ जैनरो जो मुख्यत: **क्लोरोफाइसी, साइनोफाइसी, वेसीलिरियो फाइसी, जैन्थोफाइसी** परिवार के सदस्य हैं, पाये गये। इसमें से कुछ जातियां (स्पीशीज) ऐसी हैं जो प्रदूषित जल में मिलती हैं तथा कुछ ऐसी जातियाँ हैं, जो साफ जल में मिलती हैं। प्रदूषित जल में मिलने वाली जातियाँ निम्नलिखित हैं : जैसे **ओसीलीटोरिया, फोरमीडियम, स्टाइजिओक्लेनियम, आरथ्रोस्पाइरा, सिनेडरा, मीलोसीरा**, एनासिसटिस आदि। साफ जल में मिलने वाली प्रमुख जातियाँ **क्लेडोफोरा, यूलोथिक्स, नेवीकुला, साइक्लोटिला** आदि हैं।

(ख) जूप्लाक्टन—

जूप्लाकटन मुख्यतया सीलीएट, फलैजीलेट, रहाइजोपोडस, रोटीकर्स, क्लैडोसीरा, कोपीपोडस वर्ग के पाये गये। मछलियों की १६ किस्में पाई गईं।

(ग) जीवाणु सम्बन्धी—

गंगा के जल में पाये जाने वाले एम०पी०एन० इन्डैक्स की मात्रा २१ से ११०० प्रति० १०० एम०एल० की रेंज में प्राप्त हुयी है, जबकि गिरने वाले गन्दे नालों की एम.पी.एन. इन्डैक्स प्रति १०० एम एल. ४५०×१०^2 से २४००×१०^2 तक प्राप्त हुई है। श्मशान भूमि में एम. पी. एन. इन्डैक्स प्रति १०० एम. एल. ४३×१०^2 (तिगरी) से २१०×१०^2 (गढ़मुक्तेश्वर) तक पाया गया।

क्षेत्र के पौधों का अध्ययन—

करीब ३४ विभिन्न परिवारों की १९० जातियों के पौधों को एकत्र करके हरबेरियम शीट पर लगाया गया। ये पौधे ऋषिकेश से गढ़मुक्तेश्वर तक फैले क्षेत्र से विभिन्न सैम्पलिंग स्टेशनों से एवं आसपास से एकत्र किये गए।

प्रदूषित स्थलों से एकत्र किये गये कुछ पौधे इस प्रकार हैं—**एकाईरेन्थस एस्पेरा, लैन्टाना स्पी., एमेरेन्थस स्फाइनोसस, आइपोमिया कारनिया, ओक्सेलिस, केलोट्रोपिस स्पी, मैलीलोटस इण्डिका, सैकेरम स्पी., विट्रानिया सोमनीफेरा,** साइनोडान आदि।

औषधीय पौधे—

अभी तक ४७ प्रमुख औषधीय पौधे अध्ययन के दौरान एकत्र किये गए हैं। **ईजिल मारमीलोस, ओरोजाइलम इन्डिकम, सोलेनम इन्डिकम, सो० जैन्थोकारपम, डैस्मोडियम गंगेटिकम, यूरेरिया पिक्टा, टरमीनैलिस चेवुला, ट० वैलेरिका** आदि स्थानीय रूप से समाप्त हो रहे हैं क्योंकि औषधि निर्माताओं द्वारा इनको बड़े पैमाने पर एकत्र किया जाता है।

सामाजिक आर्थिक-सर्वेक्षण—

कुछ गांव, जैसे कांगड़ी, जगजीतपुर, श्यामपुर तथा गाजीवाली की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन करने हेतु उनके तुलन-पत्र तैयार किये जा रहे हैं।

प्रयोगात्मक कार्य—

भारत सरकार उपक्रमों, क्रमशः आई.डी.पी.एल. तथा बी.एच.ई.एल. के औद्योगिक उत्प्रवाहों को एकत्र करके आइशोरनिया, लेमना तथा अजौला पौधों को उनमें उगाने के प्रयोग प्रगति पर हैं, ताकि यह पता लगाया जा सके कि कौन-कौन पौधे किस सीमा तक औद्योगिक उत्प्रवाहों में विद्यमान विभिन्न प्रदूषकों को कम करते हैं जिससे भविष्य में उन पौधों को उत्प्रवाहों पर उगाकर प्रदूषण कम किया जा सके और बायोमास उत्पादन एवं उसमें ऊर्जा की क्षमता का पता लगाया जा सके। गंगा क्षेत्र में पाये जाने वाले नाइट्रोजन-फिक्सिंग शैवाल, एजोला आदि का सूचीकरण कर उनकी नाइट्रोजन फिक्सिंग क्षमता का अध्ययन करने के लिए प्रयोग प्रारम्भ किये जा रहे हैं।

लेख एवं रिपोर्ट—

गंगा के ऊपर ४ लेख एवं तीन रिपोर्ट प्रकाशित कीं जिनसे गंगा के अपकर्ष के विषय में जानकारी मिलती है। रिपोर्टों में पर्यावरण अपकर्ष को रोकने

के लिये सुझाव दिये गये हैं। डा० वि० शंकर का A. I. R. नजीबाबाद एवं हिन्दुस्तान टाइम्स की पत्रकार कु० गार्गी पारसाई ने इन्टरव्यू लिया जिसके आधार पर उक्त पत्र में तीन लेख गंगा के ऊपर प्रकाशित हुये।

गंगा के किनारे कतिपय ग्रामों को बाढ़ से बचाने हेतु सम्बन्धित अधिकारियों से सम्पर्क किया। इस विषय में जो प्रगति हुई है उससे आशा है कि गंगा के कुछ क्षेत्र में चैक डैम शीघ्र बनेंगे। कुलपति श्री जी० बी० के० हूजा एवं बिजनौर के जिलाधिकारी का इसमें विशेष योगदान है।

गंगा समन्वित योजना टीम विश्वविद्यालय के कुलपति श्री जी. बी. के. हूजा, आई ए.एस. (अ०प्रा०) की इस कार्य में अत्यधिक रूचि एवं प्रदत्त सुविधाओं के लिए हृदय से कृतज्ञ है। भारत सरकार के पर्यावरण विभाग द्वारा दी गयी आर्थिक एवं शोध-सुविधाओं के लिए गंगा योजना एवं विश्वविद्यालय उनका विशेष आभार प्रकट करता है।

—डा० वि० शंकर
मुख्य अन्वेषक
गंगा समन्वित योजना
(भारत सरकार पर्यावरण विभाग)
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

"एक समय था जब जल तथा वायु सभी के लिए मुफ्त उपलब्ध थे, लेकिन अब उनकी भी कीमत है। हमें उनका मूल्य चुकाना पड़ता है.........या तो जल तथा वायु को प्रदूषणरहित बनाने का मूल्य अथवा अपने स्वास्थ्य में गिरावट और शांतिपूर्ण जीवन में बाधा के रूप में चुकाया गया मूल्य।"

—इन्दिरा गाँधी

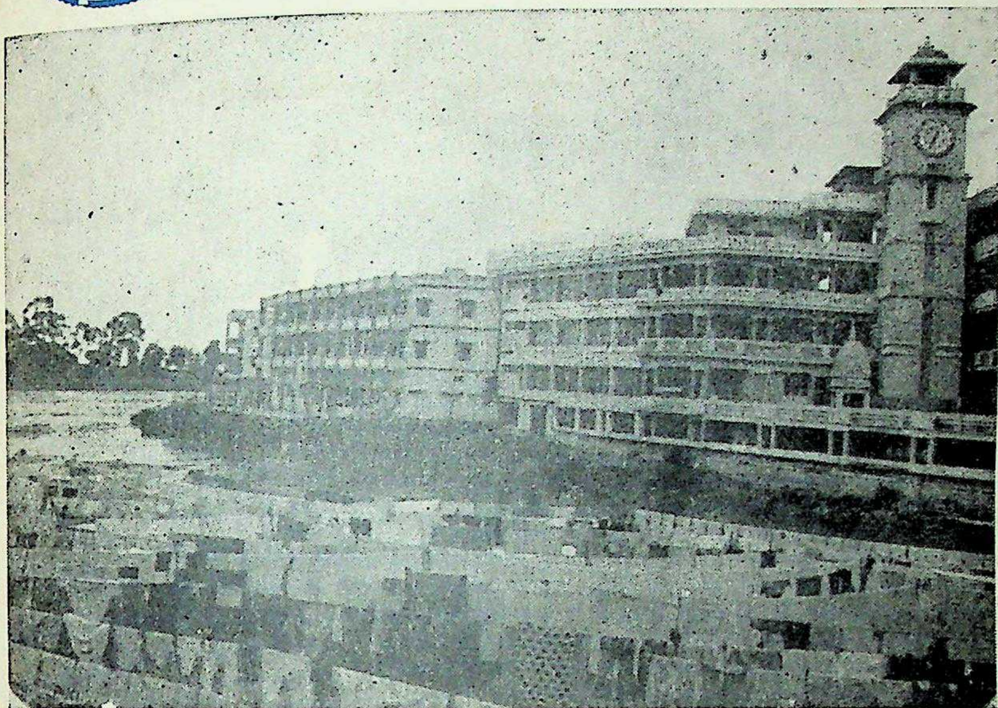
"गंगा भारतीय संस्कृति की प्रतीक, पुराणों तथा कविता का स्रोत और लाखों लोगों की जीवनदायिनी है, किन्तु खेद का विषय है कि आज यह सर्वाधिक प्रदूषित नदियों में से एक है। केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण का गठन करके गंगा तथा इसकी सहायक नदियों के प्रदूषण को समाप्त करने की योजना को अमली जामा पहनाया जायेगा।"

—राजीव गाँधी



ARYA - BHATT

VIGYAN-PATRIKA

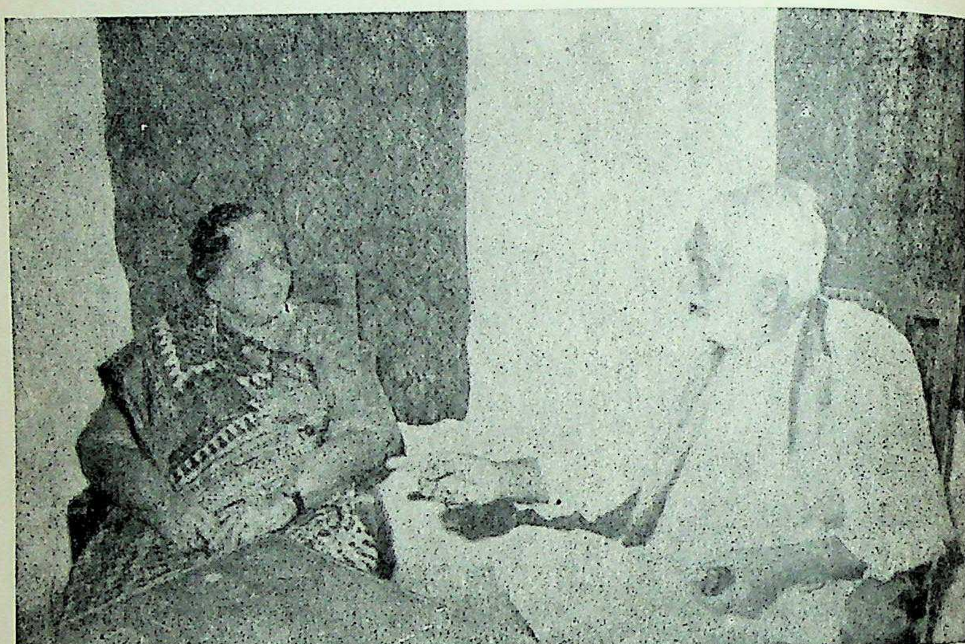




March
1985

SCIENCE COLLEGE

Editor
Dr. Vijay Shanker



Sri G.B K. Hooja, I.A.S. (Retd), Vice-Chancellor, Gurukula Kangri Vishwavidyalaya, chalking - out the future plans for Vishwavidyalaya with Smt. Madhuri Shah, Chairman, U.G.C.

— OM —

ARYA - BHATT

VIGYAN - PATRIKA

March 1985



Editor :

Dr. Vijay Shanker

Head : Botany Department

Advisor :

Prof. Suresh Chandra Tyagi

Principal, Science College

Price : Rs. 5.00

Published by :

Virendra Arora
Registrar
Gurukula Kangri Vishwavidyalaya
Hardwar

Printed at :

Jaina Printers
Jwalapur

CONTENTS

Cover Page Photographs :

Pollution of Ganga at Hardwar

(Top) : Lalta-Rao Nala flowing into the Ganga near Arya Samaj Mandir, Hardwar. The Dhobi Ghat, a common sight on the banks of Ganga is a perpetual source of pollution.

Last year a car was swept in the Lalta Rao Nala to be finally dumped into the Ganga during a brief spell of rains.

(Bottom) : Vishnu Ghat Nala carrying the city-effluents into the Ganga at Hardwar.

Editorial

FORESTS : A Plea for Conservation

The world today is faced with numerous environmental problems. Our soil and forests, rivers and oceans, atmosphere, life styles, development activities and population pressures, all have started drawing the attention of the thinking men and women all over the world. There are reasons for this. The tongue always turns towards the aching tooth. The way we have treated rather abused our resources and the very life-supports, has resulted in their damage and it is to this damage and pain that the tongue of our attention has turned. Population pressures force the people higher and higher up the mountain side to find land for cultivation In the process a large proportion of forest cover is destroyed. This happened in Nepal. Here, now when the monsoon rains come, the surface soil is washed down into streams, pours into the Ganges river and is carried to the Bay of Bengal to be finally deposited in the Indian ocean. This valuable soil does never return.

There is the grim story of acid rain in Scandicavia and Canada. There is Carbon-Dioxide build-up in the atmosphere because of deforestation and burning of fossils fuel. According to an estimate in 60 years the amount of CO_2 would have doubled resulting in the increase of average of world temperature by four or five degrees. This will melt sufficient Antarctic ice to raise the level of the ocean by fifteen feet flooding many cities.

One of the most damaging effects upon life on earth has been the enormous destruction of tropical rain forests largely due to population growth and aggressive timber harvesting.

Forests play an important part in the global cycling of Carbon, Oxygen, Water and Nitrogen on which all life depends. They tend to stablise water system and prevent flooding by slowing the rate at which rain water runs into rivers and streams. To remove them is to invite environmental chaos. Their destruction is the cause of drought in Indonesia, floods in India clogging of waterways in Thiland, reduced hydro-power in the Philipines and silting of reservoires in various parts of the world. Deforestation creats enormous problems for those (90% of population of developing world) who depend on wood for cooking and heating. Half of the total wood used in the world is burned as fuel. Each person in the developing countries uses every year about three quarters of a cubic meter of wood. An American consumes more than this in paper alone. Deforestation results in the shortage of wood which leads to the other problems. When people dont find enough wood for cooking purpose they burn animal dung & farms

wastage which normally would have been used to fertilize the soil. According to an FAO estimate the amount of additional food which could be produced, if all the dung that is burned is used to fertilize the soil would feed 100 million people—more than the annual increase in population in Asia, Africa and Latin America. Every ton of dung that is burnt deprives the world of 50 kilograms of grain. Cutting down trees is also one of the main causes of desertificaton. Because of deforestation in water sheds, reservoirs in India are silting up at three times the expected rate. The American appetite for hamburgers shows a direct relationship with destruction of forests. In other developed countries also rising affluence has brought with it a rising demand for beef and other meat products. To satisfy this demand natural forests such as those of Costa Ricas have been cleared to create artificial pasturelands for the cattle which are slaughtered and exported as beef. This shift in diet from vegetarian to non-vegetarian is environmentally unsound as it increases the per capita cosumption of grain (2 to 4 kg of grain are needed to produce 0.5 kg of meat) and is the fastest growing cause of death among the rich. Heart attacks and cancer which are the diseases of afflueuce, are in part a product of over rich diet. What an irony of fate that while 20% of world's population is in danger of dying from over-eating, the other 20% is in danger of dying from undernourishment. The world harvest of grain is one and a half billion tons a year which is enough to give everyone well above the minimum needed to sustain health.

Yet despite their central ecological and economic importance, the forests are shrinking at a rapid rate all the world over. Tropical moist forests are being cut at a rate of **fourteen hactares a minute.** Thus each year a forest area of the size of **Hungary** is being destroyed. Besides millions of hactares of open woodland are being degraded by overgrazing and firewood collection. One quarter of the worlds population now lives in areas where collection of wood outdistances new growth, resulting in the depletion of resource. Multinational Corporations effectively treat forests as mines to be worked out as rapidly as possible. This complex problem of ecological degradation can be overcome only if the government experts, universities and social activists, individual, villages all work together. What is missing most often is the political will to do it. The success of China and Korea in this regard are examples to be followed. In recent years the area under forest in China increased dramatically from 5 to 12. 7 percent and in South Korea by nearly a million hactares.

—V. Shanker

ENVIRONMENTAL CONSERVATION AND AGRICULTURAL PRODUCTION*

Dr. B.P. Pal

Born in 1906, educated in Burma, Dr. B.P. Pal obtained his doctoral degree from Cambridge University. On his return, he joined the Imperial Agricultural Research Institute (presently, Indian Agricultural Research Institute) where his work on breeding of disease-resistant wheat varieties brought him international recognition. In 1950, he became its Director and in 1965, the first Director-General.

Dr. Pal was the Chairman of the National Committee on Environmental Planning and Co-ordination from 1977-81.

His interests are not limited to genetics alone and his devotion to ornamental horticulture is well-known. He has successfully bred quite a few varieties of roses. He was the President of the Rose Society for a number of years and is an Honorary Member of the Indian Rose Federation and the Royal National Rose Society, UK.

Dr. Pal is a recipient of several awards and medals. He is a Fellow of the Royal Society of London. He has been awarded The Rafi Ahmed Kidwai Memorial Award of the Indian Council of Agricultural Research (ICAR) in 1957, the Birbal Sahni Medal of the Botanical Society of India in 1962, the Srinivasa Ramanuja Medal of the Indian National Science Academy (1964) and the Sanjay Gandhi Memorial Award for the Environment and Ecology (1982). He was awarded the Padma Shri (1958) and later, the Padma Bhushan (1968) by the President of India for his outstanding contributions.

According to the 1981 census, India's population had reached the staggering figure of 684 million. It is estimated that, by the turn of the century, it will be close to 1,000 million. It is further estimated that we will need to increase our foodgrain production very

Abstract from the **Sanjay Gandhi Memorial Lecture,** *delivered on November 30, 1983.*

substantially to meet the requirements for our population. But, besides foodgrains, we will also have to meet the greatly increased demand for edible oils, fibres. plantation crops, horticultural products and many other items including those required by industry. To achieve all this in about 17 years is a tremendous challenge to agriculture—animal husbandry, fisheries and other cognate fields. And the task has been made much more difficult by the colossal, continuing degradation of the natural environment.

Human beings constitute an integral part of the biosphere, *i.e.* the portion of the earth's surface that sustain life. This biosphere is our sole life-support system. Primarily because of the huge increase in human population, its ever-increasing and ever-diversifying demands, and the out-sized capabilities that science and technology have provided man for snatching from Nature what he wants, there has been, especially in the past few decades, tremendous damage to soil, to forests, grasslands and other plant and animal life. There has been reduction and even extinction of plant and animal species and pollution has reached an appalling level. Thinking people in many parts of the world are perturbed seriously and feel that unless drastic remedial steps are taken in time—and time is fast running out—human civilization and the world of Nature as we know it may be destroyed.

The discovery of agriculture by the early man introduced a revolutionary change. It enabled him to live a settled life and to develop the beginnings of civilization. To grow the crops he needed, the required areas of land were stripped of vegetation and prepared for planting. There was a time when vast areas of the globe were under forests and grasslands, and the gradual diversion of some of these for agriculture and animal husbandry did not create any problems. Agriculture was the principal means by which food, a prime necessity, was being provided. It was, therefore, considered to be inevitable development that more and more areas should come under the plough.

The greater portion of food for human beings comes from plants grown on soil, either the plants themselves are directly consumed or animals which feed on them are utilised. While fish and other aquatic animals found in the oceans and freshwaters do provide a large and significant amount of food, it should be clearly understood that it is primarily land and the plants and animals on it that enables the huge human population to survive. Not all land is available for this. It is the thin top layer of soil produced through hundreds of

years of weathering of rocky materials and the activities of myriads of micro-organisms which can support farming. Certain parts of the globe have fertile areas where both the soil and the climate are congenial. These are indeed the granaries of mankind. Certain other areas are suitable for forests and grasslands. Again, there are portions of the earth where conditions are too severe.

Agriculture, to be capable of yielding the very high levels of production which are now necessary, needs to have reserved for it a large proportion of the area with fertile soil, and the climatic and other requisites essential for agricultural production. But in this country, and some others also, the soil is being subjected on an ever-increasing scale to water and wind erosion, and agricultural land is shrinking because of numerous other pressing demands The expansion of urbanisation and the rapid development of industries, for example, make large demands on land. And what causes great concern is that the best agricultural land is often taken for building and other activities. However, the subject of soil and its management and protection cannot be considered in isolation, without simultaneously considering another of the prime necessities of life, namely, water.

Water is essential for all life. To live, we must have food to eat, water to drink and air to breathe. Water is also absolutely essential for the utilisation of land resources. Agriculture depends on the availability of water supply either from rainfall or from surface or underground freshwater resources.

Most of the rainfall we receive goes into the ocean, carrying with it soil and plant nutrients. Therefore, water conservation has to be adopted as a national objective, not only for the sake of water availability but also for protecting our land which is a precious resource. Since rainfall in a major portion of India, received mostly during the relatively short monsoon period, is inadequate for intensive agricultural purposes, a vast canal system—one of the largest in the world—has been developed by taking advantage of our magnificent river systems. After Independence, a large number of hydel and irrigation projects have also come into being. Unfortunately, the results have not always been entirely beneficial. In certain areas, a large amount of land has become waterlogged, alkaline or saline, and unfit for agriculture. There are glaring examples of the havoc that can be brought if an irrigation

canal system is not meticulously planned and proper arrangements made for the disposal of the water after its dispersion in the fields. We can ill afford to lose precious agricultural land at a time when productivity has to be increased manifold. Obviously, in planning major irrigation projects, there is a case for close cooperation among irrigation engineers, agricultural experts, health experts and environmentalists.

Let us consider briefly what measures have to be undertaken.

Controlling the Population Growth :

It is necessary to refer briefly to the population problem, though it does not strictly come within the purview of this paper. Obviously, as a developing country, India has to take determined action to slow down the demographic momentum so that food and other vital supplies do not run out in the not too distant future.

Reserving Land for Agriculture :

The highest priority must be accorded to reserving an adequate area of our most productive agricultural land for growing food crops and other essential economic plants for meeting the requirement of an estimated one thousand million people by the turn of the century. India has been endowed with a larger proportion of arable land than most countries of the world, but this is now under brutal assault. More towns are coming up and older ones, like the pseudopodia of an amoeba, are spreading out and engulfing large chunks of choice agricultural land. Industrial plants, brick-kilns and many other agencies are encroaching on the limited land resource. A recent development has been the diversion of good agricultural land, sometimes even irrigated land, for growing trees, particularly the now ubiquitous eucalyptus.

As pointed out already, the precious top soil is being damaged and lost because of wind and water erosion accelerated by deforestation. Perhaps it is still not fully realized by many that the major part of man's food comes from plants grown on soil, which is therefore a prime resource. The identification and earmarking of suitable land for the intensive agriculture of the future is a matter of highest importance for this country. The subject is complex and has many socio-economic and other implications. But there is no escape to facing it at the highest level, and finding suitable solutions without further loss of time.

Stopping the Destruction of Natural Forests and Speeding up Afforestation:

There is a close relationship between agriculture and forestry in this country. What happens to the forests of the Western Ghats has important consequences for the whole of the Deccan; what transpires in the forests of the great Himalayas affects significantly the basin of the Ganga, considered to be one of the greatest potential granaries on earth. But, alas, because of pressures from forestbased industries and the like, and because of the construction of a large number of roads which have made transport of timber easy, there has been vast felling of the forests that once protected our soil and sources of water, and exercised a beneficial influence on the climate. Nature has retreated before man in the Himalayas, and even the *Valley of the Gods* has not been spared by the aggressive, acquisitive greed of man.

There is another aspect of forest management that is a matter of grave concern to the future of agriculture. The natural forests are the habitat of tribals and other communities, and of many species of plants and animals. Besides containing precious hard-woods, they are the source of many products of great importance to the local people. These forests must therefore be conserved.

Saving Our Precious Plant Genetic Resources :

I would like to stress particularly the importance of preserving plant-genetic diversity because of its crucial importance for future agriculture and for medicine. There has been a glaring imbalance in both our thinking and preservation plans for plants and animals. While there have been intensive campaigns throughout the world, including India, for the conservation of large animals such as the tiger, the rhinoceros, the crocodile and also certain birds, the plant kingdom has been largely neglected.

However, it is not the plants with beautiful flowers alone that need to be conserved but even more importantly, non-glamorous plants which are so vital for genetic improvement of our crop and other economic plants and also for the fields of medicine and health. It is well-known that about 90% of the world's food comes from about 20 plant species and that modern plant breeders find that they have to turn more and more to the wild plants. The plant genetic resources are, therefore, an insurance, a great treasure for the future which must

be zealously safeguarded. Equally well known is the fact that a very large proportion of our medicines come from plants, most of them growing wild. Besides their importance for agriculture and pharmaceutical, plants are now being recognized as an important energy source satisfying man's burgeoning needs for energy, and for a large number of industrial requirements. Their conservation is of vital importance.

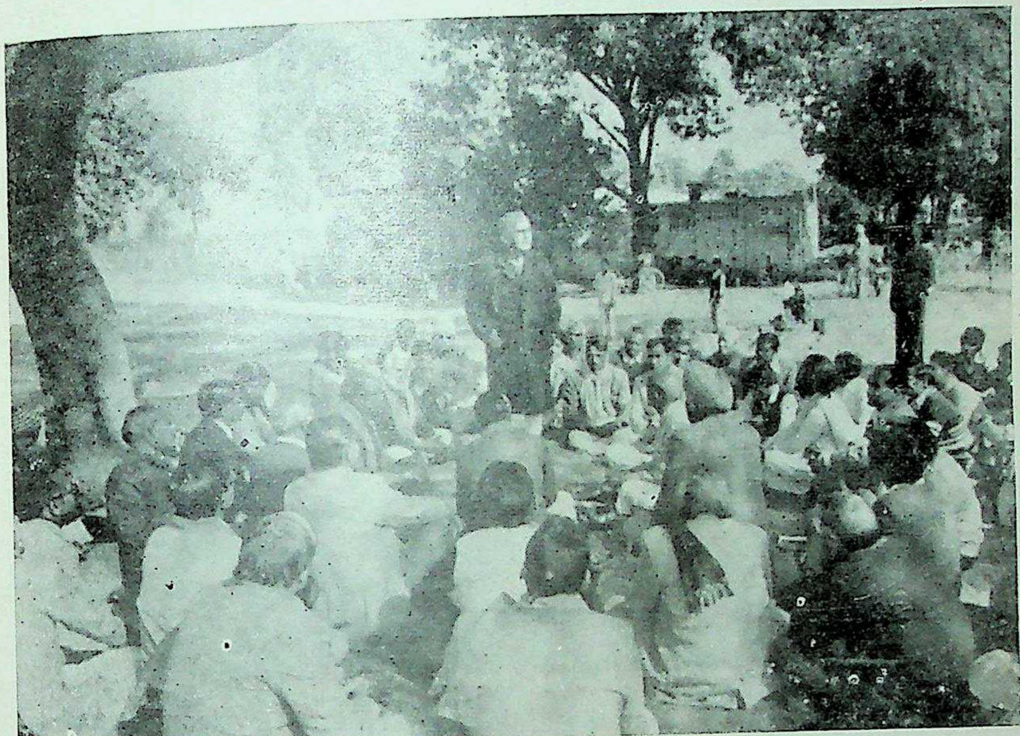
To promote better understanding of forests and enlightened forest management by all concerned, it would be desirable to establish departments and faculties of environment and forestry in agricultural universities.

Along with the destruction of forests, another major cause of deterioration of the land is the huge populations of livestock which are maintained in numbers far beyond the carrying capacity of the land and they do grievous damage both by over-grazing and continuous trampling. While in the case of forests and forestry, there is no widespread awareness of the problem, the great havoc done by the huge flocks and herds of livestock has not received the attention it merits. It is necessary to establish immediately a high - level body which will suggest proper policies for the control, health and productivity of the cattle population in India.

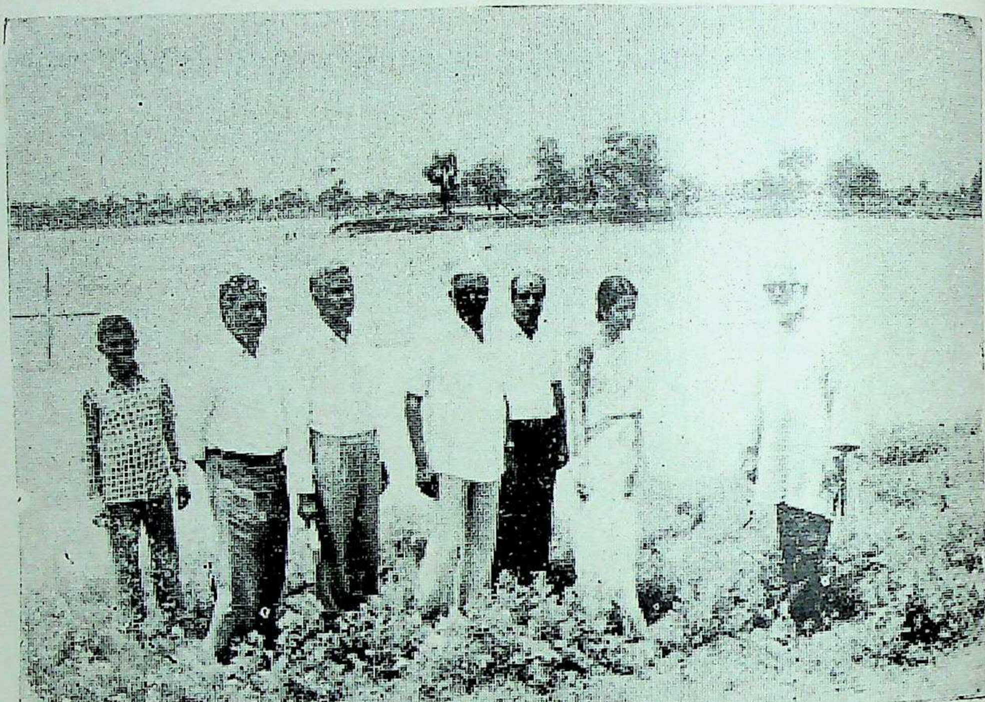
If we can protect the environment and the basic natural resources referred to, we will be giving a fair chance to Indian agriculture to develop its tremendous potential for meeting future needs. But one must not underestimate the magnitude of the problem of food and providing other agricultural products for the vast human population which will continue to grow beyond 2000 A D. Meeting this challenge will require meticulous and integrated planning and full support for agriculture, not only in terms of financial resources but also in terms of scientific manpower to spearhead the sophisticated agronomic methodology of the future. It is also necessary to set up a high level inter-ministerial and inter-disciplinary body to protect the symbiosis between environment and agriculture, and to work out a viable strategy for earmarking an adequate area of land exclusively for the high productive agriculture vital for future needs.

There is an old Chinese saying which warns, "It is later than you think." The time to take action is now.

***Reproduced with thanks from 'Paryavaran' Vol. I, No. 2, Oct. 1984.*



Sri Virendra Ji, Chancellor, G. K. V. is addressing a meeting at the inauguration of N.S.S. Camp at Kangri Village.



Km. Ahuja, I.A.S., Secretary Ministry of Rural Development and Re-construction at the bank of river Ganga. Sri G.B.K. Hooja, Vice-Chancellor; Sri Virendra Arora, Registrar; Dr. Vijay Shanker, Chief Investigator, Ganga Project and others are accompanying her.

"Water Pollution and Human Health"

Dr. R.P.S. Sangu, Research Scientist, ISOG

Water is one of the important components of the environment around the mankind. The existence of life is impossible without water. Therefore, the water is considered an enigma in itself. The water is not only essential for life but also equally indispensable for agriculture and industry, etc. The quality of life depends upon the quality and quantity of water available for various needs. The safe and adequate water is not only a public health necessity but also an infrastructure for economic developments (Mohanrao).

The life on this earth is governed by certain laws of nature eversince the inception of life on this sphere. Man has to follow them. But in the recent age of science and technology man has conquered the nature and put aside these laws. With the result the exploitation of our natural resources started which pose a severe threat to life in the biosphere.

The purity of water can be maintained only in isolated places. As it flows through the plains and cities, it is contaminated to some extent or the other. The extraneous material which bring about the change in the natural quality of water and make water unuseable are called pollutants and the phenomenon called pollution.

Factors Responsible For Water Pollution

There are a number of factors which are directly or indirectly responsible for this acute problem of water pollution. The hydrological factors, snow and rainfall, play an important role in the maintenance of sufficient flow of water in the streams for the dilution of various pollutants discharged in large amount of city wastes and industrial effluents containing toxic pesticides and other chemicals. Reduction in snow and rainfall effected the dilution process of streams upto a great extent. Apart from, the rapid and explosive rate growth

of population and recent advances in technology resulted fast urbanization and rapid pace of industrialization as well. Thus the haphazard urbanization and unplanned industrialization in the developing country like India created a direct impact upon the environment which disturbed the ecology of living being.

Sources of Water Pollution

The major sources of water pollution are the following wastes:

(a) domestic
(b) industrial
(c) agricultural
(d) maritime.

(a) **Domestic Wastes** : The man himself is one of the major sources of water pollution. The cities and sub-cities located on the bank of any river and lake dump their domestic wastes into it. The domestic waste consists of discharges of dirty water from kitchens, lavatories and bathrooms. The sewage contains about 99.9% of water and 0.1% solids made up of inorganic and organic matter. The domestic waste from kitchen and bathroom contains a good amount of unbiodegradable detergents. The excreta of the human being carry a number of pathogenic organisms i.e., bacteria, protozoa, viruses and other parasites. While the waste from lavatories contains readily decomposable organic compound which deplete the oxygen in the streams, lakes or rivers and can create odour nuisance which cause several water borne diseases. The important water borne diseases and their causative organisms are given in the tabular form.

Water borne Bacterial Diseases (Table 1)

Causative agent	Disease	Reservoir
Salmonella typhosa	Typhoid fever	Faeces and urine of typhoid carrier and patient
S. paratyphii	Paratyphoid fever	Faeces and urine of typhoid carrier and patient
Shigella dysenteria	Bacillary dysentery	Bowel discharges of carriers and infected persons.

Causative agent	Disease	Reservoir
Vibrio cholerae	Cholera	Bowel discharges, Vomit carriers.
Pasteurella	Tularemia	Rodent, rabbit, house fly, wood tick, dog, fox etc.
Brucella melitensia	Brucellosis (Undulent fever)	Tissues, blood, milk, urine, infected milk.
Escherichia coli	Gastroenteritis	Faeces of carrier
Laptospira (spirochete)	Leptospirosis (Welvs Disease)	Urine and faeces of rats, dogs, cats etc.

Water borne Viral Diseases (Table II)

Group	Sub group and No.	Disease	Organ of virus multiplication.
Enterovirus	Poliovirus (3)	Muscular paralysis Aseptic meningitis Febrile episode	Intestinal mucosa spinal cord brain Meninges. Intestinal mucosa and lymph.
Echovirus	Echovirus (34)	Aseptic meningitis Muscular paralysis	Intestinal mucosa spinal cord brain Meninges. Intestinal mucosa and lymph.
		Respiratory diseases	Respiratory tracts and lungs.
	Coxsackie virus 24	Herpangina	Mouth.
Adenovirus	31	Respiratory disease	Nose
		Acute conjuctivitis Acute appendicitis	Conjunctival cells and blood vessels Appendia and lymph nodes
		Sub acute thyroiditis	Thyroid.
Hepatitis	2	Infectious hepatitis	Liver
		Serum Hepatitis	Liver
		Sarcoma in hamsters	Muscle cells

Water borne Diseases from Parasites (Table III)

Causative agent	Disease	Symptoms
Endamoeba hystolytica	Amebiasis	Diarrhoea, alternating with constipation, chronic dysentery with mucus and blood.
Naeglerice gruberi	Amoebic meningocephalitis	Death
Tacnia saginata (beef tape worm)	Ascariasis	Abdominal pain, digestive disturbance and loss of weight, vomiting, live worm in faeces.
Ascaris lumbricoides (round worm)		
Schistosoma mansen (blood fluke)	Schistosomiasis	Liver and bladder infection

(b) **Industrial Wastes :** The liquid wastes resulting from manufacturing and industrial process are termed as "Industrial Wastes." The term industrial wastes is generally restrided to liquid wastes which by reason of their colour, solid content, salinity, acidity, alkalinity and other toxic characteristic create problems of stream pollution. The discharge of liquid wastes from such establishments has been the principal cause of river pollution. The industrial wastes greatly vary in nature and composition and their polluting strength depends upon the products and processes of manufacturing plants from which they come out. Such discharges are inevitably contaminated with small amounts of all material used in these factories (i) raw material, (ii) manufactured product, (iii) intermediate products, (iv) by products and (v) other substances used in processing.

Solid industrial wastes when dumped in the water courses or when they come in contact with rain or ground water may leach out contaminants and become sources of water pollution.

The water pollutants in major industries are shown in table IV.

Water Pollution in the Major Industries

Sl.No.	Name of the Industry	Major Pollutants in Untreated Wastes
1.	Distillaries	Low ph, high organic contents (very high BOD) colour and dissolved solids.
2.	Tanneries	High organic content, high salt contents, high colour, large amount of precipitable calcium content.
3.	Textiles	
	(a) Cotton	High pH, sodium content, organic matter and colour.
	(b) Synthetic	Low pH, high dissolved solids content and toxic organics.
4.	(a) Pulp Mills	High pH, high colour, some dissolved and suspended organics, high suspended inorganics, and large volume of wastes.
	(b) Paper Mills	High suspended solids (mostly fibre) some BOD.
	(c) Board Mills	High suspended solids, medium BOD and colour.
5.	Dairies	High BOD, colloidal solids, high rate of biodegradation grease acids, alkalies odours on stagnation.
6.	Slaughter Houses	High BOD, colour, offensive, odour on stagnation, Iron.
7.	Antibiotics	High BOD, colour odour and toxicity due to solvents.
8.	Synthetic Drugs	High acidity or alkalinity toxic organics.
9.	Organic chemicals	High acidity or occasionally high alkalinity, toxic organics, toxic metals and salts.
10.	Oil Refineries	Petroleum oils in emulsion or soluble form, acids alkalies, salts phenols, soaps and resinous material.
11.	Petrochemicals	Mineral oils in various forms toxic and non-toxic organics acids and alkalies.

Sl.No.	Name of the Industry	Major Pollutants in Untreated Wastes
12.	Fertilizers	
	(a) Nitrogenous	High pH, and amonia content, resulting in toxicity to fish and scorching of plant roots when used for irrigation.
	(b) Phosphatic	High fluoride content.
13.	Plating shops	High acidity and toxic metals or high alkalinity.
14.	Steel Mills	
	(a) Coal washeries	High suspended solids mostly coal and ash.
	(b) Cock ovens	High pH and ammonia, high mono hydric phenols, and its derivatives, and some cynides and cyanates.
	(c) Blast furnace	High suspended solids, mostly mineral oxides.
	(d) Pickling shop	High acidity and Iron salts.

(c) **Agricultural Wastes :** A remarkable progress in the field of agriculture has been achieved during last two decades by modernising agriculture. Modern agriculture is resorting to improved genetic breeds, Fertilizers and pest control. Among these three factors for application of fertilizers and pesticides have an direct effect on water pollution. The excess fertilizers and pesticides are known to run off at the time of sharp rainfall or to leach into ground water.

(i) **Fertilizers :** The nitrogenous and phosphatic fertilizers are known to create algal blooms in river and lakes creating a variety of problems. The eutrophication (cmassive growth of algae) is one of them. Some of the algae flourish under such conditions are reported poisonous and caused the death of fish and aquatic birds. Many species of algae viz. Volvox, Hydrodictyon Synura, Nitella Synedra and Anacystis impart unpleasant taste and odour to the water that is difficult to remove to them by conventional treatment processes.

(ii) **Pesticides :** The pesticides are the chemicals used in agricultural fields and forest areas to control the various types of agricultural pests which cause loss to the growing crops or

vegetation. All the pesticides partly or entirely (i) incorporated into parts of plants or remain on them as residue, (ii) volatilized (iii) fixed in the soil to be partly degraded or left unchanged and (iv) leached from the soil by rain or irrigation-water to appear as run-off or percolation. The large scale application of these pesticides like Captan, DDE, DDD, and DDT etc. can cause serious threat to the natural water courses through precipitation etc. It is clear that the wide spread of chemical pesticides has created a new and difficult water pollution problem.

(d) **Maritime Wastes :** The pollution of harbour and coastal water by oil spilting, and off shore drilling is termed as maritime or ocean pollution, which has lately become considerably significant because of the heavy use of oil in modern living. Oil spills during emptying of the cargo ships is a regular process in the harbour. Oil pollution from the accidental breakage of supertankers has been gaining considerable importance due to the size of the ships. Oil being lighter than water spread into large areas, and make a film on water which gives an ugly appearance. Such film also reduces the dissolution of oxygen into water. Being lighter the oil tends to drift to shore due to winds and currents. Wherever the quantity of oil is enough there is risk of fire also. Drilling operations also contribute their share of oil to the sea.

References :—

1. Mohanrao, G. J. General Review of Water Pollution. Paper presented at the I Scientific Conference on Environmental Pollution.
2. Mahida, U. M. (1981) Water Pollution and disposal of waste on land.
3. Nebel, J. Bernard (1981) Environmental Sciences.
4. Samuel, D. Faust and Osman M. Aly (1983) Chemistry of Water Treatment.

Let's Go Trekking

Devasheesh Lal

When the leaves turn yellow and the grass on the lawns starts to wither away and the hot winds keep people indoors most of the time, the thoughts of the populace turn to the hills. The lazy and the ease-loving think of spending the hottest part of the year in some cosy hotel in the hills, but those bitten by the mountain bug-I mean the mountaineers and the trekkers-dust their jungle shoes and take the jersies out of the mothbails preparatory to a jaunt in the mountains. Frantic rushing about in forming teams, gathering finances and buying rations for a trek are very much in evidence.

How do yo go about organising a trek ? How to form the teams, buy rations, organise equipment to be taken along are some of the problems the trekkers and particularly the organisers face. Here are a few tips.

Team :

The very first thing about trekking is to know how to form a team. Those comprising a trekking should be persons of a particular age group, with similar interests and keenness about the trek. Don't include persons who are easy going and are loners. They are the people would not mix with the rest of the party and will surely do not work. Many times people have heard stories from their friends and colleagues who have gone on treks. Human nature being what it is, people are likely to forget the unpleasant things and remember only the part which concerns enjoyment. They will remember the dinner and the scenery which you have described but are likely to lose sight of the bit about the 20 kilometres which you may have walked to reach that beautiful place where you had a memorable dinner.

The ideal size of trekking team is 10 to 12. I am saying this from experience. A larger team will create problems of food, of

starting early from the camp and also of discipline. One person helped by his team-mates can easily cook for 10 to 12 persons but a larger team will need more cooks, more time for them to have their breakfast and for leaving the camp.

Do not allow any member of the team to carry transistor, radios or playing cards. If you do, you can be sure that the carriers will be listening to the music and probably dancing to it or playing cards when you are busy in the kitchen or at the mountain stream cleaning utensils. I have known some enthusiasts playing cards on the way, to the consternation of their leader who is worried about their safety.

Another point is a matter of bitter controversy but I think I should touch upon it. See that there are no rabid vegetarians in your team. They would object to your taking eggs even if you do it without forcing them to follow suit. Some would insist on a diet free from onions. It is very difficult to conform to various cullinary tastes during a trek. I know many cases where insistence on strict vegetarianism has led to bickerings and worse troubles in treks.

Equipment :

A. Personal equipment needed for a trekking party, unless it proposes to cross snow-bound areas for length of time, is—

1. A Sleeping Bag : In some cases a couple of blankets would do. Don't pamper the trekkers by allowing them to carry pillows, durries and bed sheets.

2. A Rucksack : Before starting, check it up and see that all the straps are in order and the pockets free from the residue of earlier use.

3. Jungle Shoes : Any other type of shoes will create problems. Those who are going for the first time will not know it, and the leader should, therefore, personally see that all members of the party are having jungle shoes. And remember they should be one size larger than the trekker wears so that they do not suffer from blisters. A tight shoe is the best guarantee of blisters.

4. Socks : They should be cotton. Nylon socks add to discomfort and cause blisters. A pair of woollen socks should also be carried if you are likely to go beyond 10,000 feet.

5. Sun goggles : To protect your eyes from the glare. Remember that the mountain air being free—comparatively speaking—from dust particles, the sun shines more brightly in the hills than in the plains. Add if you move about in the snow-bound area for any length of time without goggles, you may get snow blindness.

6. Water bottle : Fill it before you leave camp, without fail. While walking you lose body fluids through perspiration and also because of the low atmospheric pressure on the heights. At 16,000 feet the atmospheric pressure is fifty percent of what it is at sea level and the body loses at least one ounce of fluids per hour. You must drink water or other fluids in order to compensate for the loss; otherwise you are inviting the danger of dehydration, a serious thing to deal with when you are miles away from civilisation.

7. A torch for each trekker : You are not likely to find electric lighting in the areas you will be moving about and the only recourse is to have a torch for your personal use.

8. Clothes : Don't take more than two changes of clothes because you are to carry your things yourself. The heavier your personal load is, the quicker you will tire. Remember that at those altitudes, every ounce counts.

B. The equipment needed for the collective use of the team :

1. A rope : In case you are likely to cross broken bridges, or climb areas where walking is not possible.

2. Cooking utensils : This list is long. Cast an eye around your own kitchen and decide which are the things you can do without, but take the rest.

3. An axe : You may need it to cut fire-wood.

4. Plywood box : To carry your provisions in.

5. Kit bags : These are ideal to carry dry rations like wheat flour, sugar etc.,

6. Tent or tents : In case you are going to an area where built-up accommodation is not available. If you do, be sure that you are having all the tent pegs, ropes and other paraphernalia.

7. Stoves : In case you are depending upon kerosene oil to cook your food. Have them cleaned and carry enough pins to be able to light them properly.

8. Hurricane lanterns or primus burners : They are more reliable than candles. The only problem they pose is that they are more difficult to carry than candles.

Food :

Like the army, the trekkers are also prone to march on their stomachs. The food carried should be compact (so that it does not take more space), wholesome and palatable. Carry eggs in cardboard frames made specially for stocking them. Provide plenty of sugar in the diet, as it replaces lost energy most quickly. Sucking lozenges must never be forgotten because they sustain you while you are puffing up and incline, producing saliva which is lost when you breathe through your mouth and also giving instant energy. Porridge is an excellent breakfast food, if you are not averse to it. It does not take much of cooking and provides all the elements of nutrition. I have always made it a rule to serve porridge for breakfast. In Trekking or mountaineering expedition in which I had to look-after kitchen.

Lunch—it has to be packed since you are to trek and cannot stop on the way to cook it–must be light and portable. Trekkers carry it in their lunch packs and eat it as and when they feel hungry on the way. Don't feed the trekkers a heavy lunch; if you do, don't blame them if they show a total reluctance to walk afterwards. I have found buttered bread and boiled eggs or tinned fish an excellent lunch. Vegetarians can have buttered bread with cooked potatoes or jam. They generally want puries or parathas for their lunch but it has a tendency to upset the stomach.

For dinner, you can have anything provided you have the energy and the patience to cook it without losing your sleep. A heavy dinner will not harm. It will help the trekkers to supplement their lost energy quickly.

As for drinks, better avoid them. Carry a bottle of brandy for medicinal purposes by all means, but use it strictly for medicinal use. If drink you must, do not come out of your tent or rest house after having had a few drinks. The liquor in your body opens the pores and the risk of exposure is increased manifolds in the hilly areas where winds have a greater velocity, generally speaking, than in the plains.

Medicines :

The most commonly used medicines during a trek are aspirin and drugs for diahorrea. Carry plenty of them. Other medicines advised are those dealing with sore throats, fever, stomach ache and dressings for minor injuries with tincture iodine etc. Carry a few elastic bandages in case a member of the party has a sprain.

Medical facilities being almost non-existent in the hills, the local people will importune you for medicines for curing ailments they have been suffering from for a long time. Being unused to medicines, even a tablet of aspirin is likely to relieve a fever. Help them by all means by giving them some tablets but do not be too generous lest you should find yourselves without the necessary cures when you need them most.

Carry a few tablets of Lasix in case one of the party has dehydration or oedema. The moment a trekker finds that he is passing scanty urine or there is a swelling on his hands and feet with pitting (when you press the skin, a pit forms there and take some minutes to disappear. In a healthy person it will not form at all) give him a Lasix every six hours till the symptoms are relieved.

Use the medicines sparingly and only when needed, since you are not a qualified doctor and may make a fatal mistake.

Porters and Mules :

When you reach the hills, you will need porters or mules to carry your equipment and rations. Haggle with the porters and muleteers

all that you like but after having hired them, treat them kindly and as members of your team. If possible carry a stock of bidis for them. Help them with sugar or tea-leaves if your budget allows. Above all, treat them kindly because when in those areas, the safety of the team and its comfort may depend upon a batch of porters who are happy with you. Unhappy or discontended porters can only pose problems and not be of any help. I have found that mules are generally cheaper than porters. And more amenable to dicipline. A porter will generally refuse to carry a tin of kerosene oil, but the mute beast will gladly carry anything which its master foists on it.

Travel Arrangements :

You will need to travel by train or bus to reach the starting point of the trek. After your itinerary has been finalised, make the bookings in advance. Check up the timings yourself; dont depend on hearsay. And sweeten the bus driver and the conductor with cigarettes or just sweet talk. If you don't, you may face some problems. The Bus Company Rules may be found which forbid carrying of rucksacks without being weighed first.

On the Trek

After you have actually started on the trek, make it a point to wake up at 4.30 in the morning. It should be the duty of the leader to be the first to get up and the last to go to sleep. He should exhort his team to work collectively so that breakfast is ready and the lunch packed before sun-rise. The ideal time to start is just when the sun is coming up. Suppose you have to walk twenty kilometers and the average time according to the terrain is about two kilometers per hour, you will take ten hours to reach the next stop. It is better that those ten hours should start from 6 a.m. than from 10 a.m. By starting early you will avoid walking when it is very hot and will reach the next stop in time. Whatever relaxation you need can be had when you are at the next halt.

Instruct the trekkers that they should not halt for more than a few minutes on the way. The ideal stop is five minutes after an hour. After you have walked for about three hours, stop for 15 minutes and refresh yourselves with something to eat. Do not take off your shoes or lie down. You will find it difficult to start walking again.

If you reach the next stop a little after 12:00 hours let the team relax. But under no circumstances let them sleep during the day. It would only cause mountain lethargy which is a great morale-shatter. Let the trekkers walk about and explore the surroundings, cautioning them not to stray too for afield.

Allot some work to each member of the party. One could be the cook, another quarter master, another to look after the porters and mules and yet another to help you in keeping accounts. See that the work is equally distributed so that none of them can blame you for playing favourities. Rotate the kitchen duty, particularly that of washing utensils which is generally shirked by most members of the party. One member must be put in charge of the luggage of the party; it should be his duty to look after it in all the stages of travel.

Brief the party before you leave a camp about the forth-coming trek, about the terrain, the bridges or streams to be crossed and the points where they have to be extra careful.

Don't carry any weapons under the mistaken notion that you might need them in case of wild animals There are no animals wild enough to harm you. The moment a wild animal sniffs a human being, he slinks away; it will attack you only if it is in danger of being attacked by you. Carrying on weapons can only complicate matters. A member of the party may turn but to be a shikar-enthusiast and may start firing in disregard of instructions to the contrary.

Keep a diary in which note down the expenses so that you can prepare the accounts the moment you are back.

"ENUMERATION OF ECONOMIC PLANTS OF VYASI VALLEY, DISTRICT TEHRI GARHWAL"

V. SHANKER[1], S.K. DHYANI[2], R.K. SHARMA[3]

ABSTRACT

The present paper reports 192 useful, economic plants collected from the Vyasi Valley, District–Tehri Garhwal (U.P.), during the years 1975 to 1977. The study revealed the possibility of commercial exploitation of the available economic plants from the Valley. Certein aspects of the study were completed later–on under 'Integrated Study of the Ganga' project based at Gurukula Kangri University, Hardwar.

Introduction

Our country has a very rich flora of plants which are useful from the economic point of view. The present paper gives an account of the collection of economic plants from the Vyasi Valley of district Tehri Garhwal (U.P.) made during the years 1975 to 1977 The survey revealed the coverage of 192 species of angiospermic plants belonging to 72 families. Important features of the area studied and vegetational composition have been outlined. Botanical name, family, Hindi and Vernacular names, part used and uses, have been given for each plant. The plants are listed in alphabetical sequence. The study has opened up the possibility of indicating the availability of the economic plants in the Valley and this might be of immense use for commercial exploitation.

1—Principal Investigator, Integrated Study of the Ganga (Govt. of India, Deptt. of Environment) G.K. University, HARDWAR.

2—Plant Science Division, Central Soil and Water Conservation & Training Institute, (ICAR), DEHRADUN–248 195 (U.P.)

3—Pharmacognosy Division, Central Indian Pharmacoposia Laboratory, GHAZIABAD–201 002 (U.P.)

The Vyasi Valley is situated on the right bank of river Ganges at an altitude of 455 Metre above the mean sea level, between 30°20′ to 30°50′ N and 78°35′ to 78°55′ E, in district Tehri. The "whole valley" is "narrow" with the Ganga flowing swiftly in the centre. The vegetation of Vyasi and its vicinity consist of chiefly thick Sal forests, which according to Champion and Seth (1968) is sub-group 3C–North Indian Tropical Moist Deciduous forest. However, this forest differs from the typical which has been described in having **Olea glandulifera** Wall., and **Madhuca indica** Gmel., as the common associates. This type of combination has not been described. The presence of Himalayan and plain elements together appears to be the unique feature of this forest.

The presence of Sal so deep in Himalayan valley is an unusual phenomenon.

The information regarding the utility of plant species for various purposes was collected by the author from local people, villagers or local Vaidyas (Physicians) and it was compared with some important reference work on economic and medicinal plants (Anonymous, 1976; Chopra, 1933; Nadkarni, 1954; Wealth of India, 1948–72).

Abrus Precatorius L. (Papilionaceae), Ratti, Ghumchi. Red shining seeds with black hilium are used as purgative, emetic and aphrodisiac and used in nervious disorder.

Abutilon indicum (L.) Sweet (Malvaceae), Kanghi, Tepari. Leaves and seeds are used as demulcent and laxative.

Acacia catechu willd. (Minosaceae), Khair. Bark used as astringent, digestive and is useful for cough and diarrhoea. Externally appried to boils and eruptions on skin.

Acacia farnesiana willd (Mimosaceae), Vilaiti babul, Kikar. Bark used as astringent, and demulcent.

Achyranthes aspera L. (Amaranthaceae), Chirchita. Used in cough, and decoction is given in renal dropsy and bronchial infection.

Adhatoda Vasica Nees (Acanthaceae), Basak, Bousa. Leaves contain alkaloid (Vasicine) and essential oil, leaves are source of drug used mainly as an expectorant in form of juice or decoction.

Aegle marmelos (L.) Corr. (Rulaceae), Bel, Bilva. Ripen fruit is edible, sweet drinks (Sherbets) prepared from pulp of fruits are good in chronic diarrhoea and dysentery. Pulp is aromatic, cooling and laxative.

Agave americana L. (Agavaceae), Rambans, Kantala. Roots are diuretic and diaphoretic.

Allium cepa L. (Alliaceae), Piyaz. Cultivated. Bulbs are used as stimulant, expectorant, aphrodisiac and in flatulence and dysentry.

Allium sativum L. (Alliaceae), Lasun. Cultivated. Bulbs (rhizones) used as condiments and flavouring agent. Also, as carminative and gastric stimulant in medicinal preparations. Garlic has anti-bacternial, germicidal properties. A strong antiseptic, relieves rheumatism, clears chest and improves lungs.

Amaranthus spinosus L. (Amaranthaceae), Kataili Chaulai. Roots and leaves are laxative.

A. Tricolor L., Bari Chaulai, Lal sag. Cultivated, Plant is astringent and used in diarrhoea and dysentery.

Amorphophallus campanulatus (Roxb.) Blume ex Dcne. (Araceae), Zamin-Kand. Cultivated, Tubers used in acute rheumatism.

Ampelocissus latifolia (Roxb.) Plench (Vitidoceae), Panibel. Roots applied to wounds.

Anisomeles indica (L.) D. Kuntze (Lamiaceae), Kalabhangra. Used as carminative, astringent, and for flavouring purposes.

Anogeissus latifolia (DC) Wall ex Bedd. (Combretaceae), Dhaura, Bakli. Bark bitter and astringent.

Argemona mexicana L. (Papaveraceae), Kateli. Roots are useful in chronic skin diseases, seeds as laxative, expectorant and demulcent, juice of plant for jeundice.

Aristolochia bractedata Lamk. (Aristolochiaceae), Kiramar. Herb used as purgative and anthelmintic. Decoction of roots is used for expelling roundworms.

Artemisia nilagirica (Clarke) Pamp (Asteraceae), Nagdouna, Kunzu. Roots are used as tonic and herbs as anthelmintic, antispasmodic and stomachic.

A. scoparia Wildst. & Kit. (Asteraceae), Barna. Flower heads are anthelmintic.

Arundo donax L. (Poaceae), Narsal. Decoction of rhizomes is emollient and diuretic.

Asparagus adscenders Roxb. (Liliaceae), Safed musli, Jhirna. Root used as demulcent and also in diarrhoea and dysentry.

Azadirachta indica A. Juss. (Meliaceae) Neem. Tree is considered a good purifier of air. Seeds yield margosa-oil, which is used in treatment of leprosy and skin diseases. Leaves in poultice used for healing of wounds.

Baliospermum montanum (Willd.)Muell -Arg. (Euphorbiaceae) Dante. Roots used in jaundice.

Bauhinia purpurea L. (Caesalpiniaceae), Kachnar, Guiral. Roots are carminative and bark is astringent.

B. retusa Buch.-Ham. (Caesalpiniaceae), Semla. It yields a gum which is used for sores and have diuretic action.

B. Vahlii Wight & Arn. (Caesalpiniaceae), Malo, Jallur. Seeds are used as tonic.

Boerhaavia diffusa L. (Nyetaginaceas), Santhi. Medicinal. Used in asthma. Drug posssses diuretic properties.

Brassica campestris L. Var. **Sarson** Prain (Cruciferae) Sarson. Seeds are antiscorbutic.

Butea Monosperma (Lamk.) Taubert (Papilionaceae), Dhak, Palas, Tesu. Seeds used in treatment of round worms. Gum is used for treatment of diarrhoea.

Cajanus Cajan (L.) Millap, (Papilionaceae), Tor, Arhar. Seeds and leaves made into paste which is warmed and applied over the mamae to check secretion of milk.

Callicarpa Macrophylla Vahl (Verbenaceae), Daya. Leaves are heated and applied in rheumatic pain.

Calotropis procers (Willd.) Dryand ex.W. Ait.(Asclepiadeceae) Ak, Madar. Medicinal plant. Root-bark used in dysentery.

Cannabis sativa L. (Cannabinaceae), Bhanglu. Plant intoxicant and narcotic.

Canscora decussata Schult. (Gentianaceae), Sankhaphuli. Fresh juice of leaves is useful in epilepsy.

Capsioum annuum L. (Solanaceae), Lal-mirch. Cultivated. Important condiment crop.

Careya asborea Roxb. (Barringtoniaceae), Kumbhi. Bark and fruits are astringent.

Cassia absus L. (Caesalpiniaceae), Chaksu. Seeds used in treatment of skin–affections. Leaves bitter, used in as cough remedy.

C. Fistula L. Amaltas. Useful avenue-tree. Fruit, pulp is used as purgative and laxative.

C. tora L., Chakunda. Roots and seeds are used for skin diseases.

Celastrus Paniculata Willd. (Celastraceae) Mal-Kangni. Seeds yields a medicinal oil. Seeds are laxative, stimulant, aphrodisiac and used in rheumatism and leprosy.

Celosia argentea L. (Amaranthaceae) Seeds are used in diarrhoea.

Centella asiatica (L.) Urban (Hydrocotylaceae), Brahmi. Medicinal plant. Leaves used as tonic and diuretic.

Chenopodium album L. (Chenopodiaceae), Bathua. Plant laxative and anthelmintic.

Cissampelos pareira L. (Menispermaceae), Akanadi. Roots used in diarrhoea, dysentery, cough and urinary troubles.

Cleome viscosa L. (Cleomaceae), Hushur. Seeds are carminative and anthelmintic.

Clerodendrum serratum (L.) Spreng. (Verbenaceae), Bhurangi. Roots and leaves have medicinal value as used in dropsy.

Commaelina benghalensis L. (Commelinaceae), Kanteri. Plant bitter and emmollient.

Coriandrum sativum L. (Umbelliferae), Dhania. Fruits are stimulant, carminative and diuretic.

Costus speciosus (Koen. ex Retz.) Sm. (Costaceae). Ken. Tuberous rootstocks are important source of diosgenin a precursor of steroids including sex hormones and oral contraceptives.

Cryptolapia buchanani R & S. (Pariplocaceae), Karanta. Plants used in a preparation given to children as cure for rickets.

Cucumis melo L. Var. utilissimus Dutt. & Full. (Cucurbitaceae), Kakri. Seeds cooling, nutritious and diuretic.

C. sativus L., Khira. Fruits nutritious and demulcent.

Curcuma domestica Salisb. (Zingiberaceae), Haldu, Haldi. Rhizamis as condiment. It has wide medicinal uses as stomachic, tonic, blood purifier, antiseptic and applied on wounds. Yellow pigment used as colouring matter.

Cynoden dactylon (L.) Pers. (Poaceae), Doob. Juice of plant is astringent and used in dropy, epilepsy and in catarrhal opthalmia.

Datura metel L. (Solanaceae), Kaladhatura. Leaves and flowers are used in treatment of asthma.

D. stramonium L., Dhatura, Leaves and seeds are narcotic. Drug from dried leaves, flowering tops and seeds is used in treatment of asthma.

Desmodium gangeticum (L.) DC. (Papilionaceae), Sarivan, Salpani. Roots and seeds are used as febrifugs.

Dioscores bulbifera L. (Dioscoreaceae), Gainthi. Tubers are used in piles and dysentery.

D. pentaphylla L., Kanta alu., Turar. Tubers used in biles cough, asthma and rheumatism.

Eclipta prostrata (L.) L. (Asteraceae), Bhangra. Plant juice used for Jaundice.

Emblica officinalis Gaertn. (Euphorbiaceae), Amla. Fruits are pickled. Fruit is rich source of Vitamin C., and used medicinally as diurectic and laxative and in dysentery.

Euphorbia Wirta L. (Euphorbiaceae). Lal-dudlui A drug is made from flowering and fruiting branches which is used in bronchial affections, cough, asthma.

Ficus benghalensis L. (Moraceae), Barh. Milky Juice used externally in rheumatism and lumbago.

F. glomerata Roxb. (Moraceae), Gular. Fruits are used in diabetes, leprosy and urinary diseases.

Flacourtia indica (Burm. f.) Merr. (Flacourticeae), Bilangra. Bark triturated in seasamum. Oil is used as a liniment in rheumatism.

Galium aparine L. (Rubiaceae). Juice of plant is used as diuretic and antiscorbutic.

Glycosmis pentaphylla (Retz.) DC. (Rubaceae), Ban-nimbu. A paste of leaves and ginger is used to cure azma and skin affections by the villagers.

Heteropogon contortus (L.) P. Beauv. ex. Roem. et. Schult. (Poaceae) Kumeria. Root stimulant.

Holarrhena antidysenterica (L.) Wall. ex DC. (Apocynaceae), Kurchi. Leaves, bark and seeds are used to cure dysentery and diarrhoea.

Holoptela integrifolia (Roxb.) Planch. (Ulamaceae), Kanju. Papri Juice of boiled bark is applied to rheumatism.

Hyoscyamus riger L. (Solanaceae), Ajvayan. Leaves are source of drug used as sedative, narcotic and in treatment of asthma and whooping cough.

Ichnocarpus frutescens (L.) Aitl. and Ail.f. (Apouynaceae), Dudhilata. Root alternative, tonic and substitute for sarasaparilla.

Indigofera linifolia Retz. (Papilionaceae), Sakina. Plant is used in amenorrhoea.

Jatropha curcas L. (Euphorbiaceae), Jamal'ghotta, Safed Arand. Seeds are purgative.

Justicia procumbers L. (Acauthaceae). An infusion of herb is recommended in asthma, cough and backache.

Kydie calycina Roxb. (Malvaceae), Pulu. Leaves are used in rheumatism.

Lannea coromamdelica (Houtt.) Merr. (Anarcardiaceae), Jhingan. Bark is used as astringent.

Lencas cephalotes (Roth.) Spreng. (Lamiaceae), Goma. Flowers in the form of syrup are used for cough and cold.

Lindenbergia indica (L.) Vatke (Scrophulariaceae). Juice of plant is applied to skin eruptions and is given in chronic bronchitis.

Lindernia crustacea (L.) F. Muell. Poultice used for boils, sores, ringworms and itches.

Linum usitatissimum L. (Linaceae), Alsi. Seed oil is medicinal.

Madhuca indica J.F. Gmel. (Sapotaceae), Mohua. Flowers are astringent.

Mallotus philippensis (Lank.) Muell-Arg. (Euphorbiaceae), Raini. Glands and hair on the fruit are bitter and anthelmintic.

Malvastrum coromandelianum (L.) Garcks (Malvaceae), Mahabala. Decoction of the plant is given in dysentery. Leaves are applied to wounds for cooling and healing.

Mangifera indica L. (Anacardiaceae), Aam. Ripe fruits are laxative, diuretic and astringent.

Martynia annua L. (Martyniaceae), Hathajori. Juice is used as gargle for sore throat, plant used against scorpian sting.

Mentha arvensis L. (Lamiaceae), Pudina. Leaves yield an essential oil, used medicinally as carminative, and stimulant. Leaves used for flavouring purposes.

Momordica charantia L. (Cucurbitaceae), Karela. Juice of fruits and roots have medicinal uses.

Moringa Oleifera Lamk. (Moringaceae), Sahjna. Green fruits used as vegetables, oil from seeds used medicinally in gout and acute rhumatism.

Murraya Koenigii (L.) Spreng. (Rutaceae), Gandhela, Gangela. Bark and roots are stimulant.

N. tabacum L., Tambaku. Leaves are used as sedative, narcotic and emetic.

Ocimum baslicum L. (Lamilaceae), Bantulsi. Cultivated. Leaves used for flavouring purposes, seeds are used in dysentery and chronic diarrhoea.

O. sanctum L. (Lamiaceae), Tulsi. Leaves useful in bronchitis, digestive complaints, common cold, juice of leaves applied in skin diseases.

Oldenlandia corymbosa L. (Rubiaceae), Papra. Useful in jaundice and other liver ailments.

Oroxylum indicum (L.) Vent. (Bignoniaceae), Urru, Tantia. Bark of root is used in Ayurvedic medicines for diarrhoea, dysentery and rheumatism.

Osbeckia chinensie L. (Melastomataceae). The plant is used for diarrohea and for wounds of the cattle. Roots are used for coughing.

Oxalis corniculala L. (Oxalidaceae), Amrul. Leaves are eaten, the plant possesses astringent and antiseptic properties. Leaves and seeds are edible.

Peristrophe bicalyculata (Retz.) Nees, (Acanthaceae), Atrila Plant is said to be antidote to snake poison.

Phlogacanthus thyrsiflorus (Roxb,) Nees. (Acanthaceae). Leaves and roots are used in cough and asthma.

Physalis minima L. (Solanaceae), Tulatipati. Fruits are considered tonic, diuretic and aperative.

Portulaca Oleracea L. (Portulacaceae), Kulfa. Plant is used as blood purifier in homoeopathy.

Pueraria tuberosa (Roxb.) ex. Willd. DC. (Papilionaceae), Siali. Tubers are demulcent and emetic.

Rhus paniflora Roxb. (Anacarrdiaceae), Tungla, Tunga. Fruits are medicinal.

Ricinus communis L. (Euphorbiaceae), Arandi. Seeds are source of castor-oil, which is used as purgative. Seeds made into paste are applied to boils and sores.

Sapium insigna Triman (Euphorbiaceae), Khinna. Milky Juice vesicant.

Saussurea Lappa C. B. Clarke (Asteraceae), Kuth. Roots are used medicinally as tonic, carminative and in controlling bronchial asthma. An essential oil is obtain from roots. Used in perfumery and cosmetics.

Sasamum indicum L. (Pedalioceae), Til. Seeds are emollient and diuretic.

Shorea robusts Gaertn. f. (Dipterocorpaceae), Sal. Resin is used in dysentery.

Sida cordifolia L. (Malvaceae), Kungji. Seeds are used as laxative and demulcent.

S. rhombifolia L., Sehdeis. Stem is demulcent and emollient.

S. Veronicaefolia Lamk., Bhiunli. Leaves are given in diarrhoea.

Siegesbeckia orientalis L. (Asteraceae)., Lichkura. Aromatic plant. Extract of plant is reported to have antiviral activity against disease of poultry.

Solanum indicum L. (Solanaceae), Bhut–Katai. Roots are used in medicines for treating cough. Half-ripe fruits are used in curries and chutneys. Fruits edible.

S. nigrum L., Makoi. Ripe fruits are used in fever diarrhoea, eye diseases and hydrophobia.

S. survattense Burm. f., Kateli. Root is an expectorant, forming an ingredient of Ayurvedic medicine 'Dashmula.' It is used in cough, asthma and pains in chest.

Spinacia oleraces L. (Cheropodiaceae), Palak. Leaves eaten as vegetable. It is a good source of minerals. Vitamin–B–complex, Vitamin–K, ascorbic acid and corotene.

Stephania glabra (Roxb.) Miers (Menispermaceae), Parha. Tubers are used in asthma, dysentery and pulmonary tuberculosis.

Syzygium cumini (L.) Skeels (Myrtaceae), Jamun. Bark is used as astrirgent.

Tephrosia purpurea (L.) Pers. (Papilionaceae), Sarphorka. Leaves yield dye, powdered leaves are smoked for relief from asthma and cough.

Terminalia bellirica (Gaertn.) Roxb. (Combretaceae), Bahera. Fruit pulp is used in dropsy, diarrhoea and leprosy.

Trichosanthes anguina L. (Cucurbitaceae), Chachinda. Fruits are eaten as vegetable. Roots and seeds are used in medicines for expelling worms, and for treating diarrhoea.

Urena lobata L. (Malvaceae), Pithia. Roots are diuretic.

Vanda testaces (Lindl.) Reichb. f. (Orchidaceae). Leaf–juice used for ear-ache.

Vitex negundo L. (Verbenaceae), Shimalu. Roots and leaves are used in fever, ulcer and rheumatism.

Woodfordia fruticose (L.) Kurz. (Lythraceae), Dhaula. Dried flowers are used in dysentery.

Xanthium strumarium L. (Asteraceae), Banokra. Reported to be used against chronic malaria and urinary troubles.

THUNDERSTORMS AND LIGHTNING

By

Dr. P.P. Pathak, Physics Department, G.K.V. Hardwar

One of the most spectacular phenomenon of the atmosphere is the occurrence of thunderstorms. The thunderstorm is a source of very huge amount of energy. Because of the short intervals involved in dessipation, though, whole of the energy is not only wasted, it also results in devastation and loss of property and living-being including human life. It is not possible, however, to make use of this natural source of enormous energy. Though any such effort would involve careful safety arrangements besides ,it requires detailed knowledge of mechanism of lightning discharge.

Thunderstorms are formed (a) due to instability caused by solar heating in the lower layers of the atmosphere which is resulted in rising of excessively heated cells of moist air, (b) along a squell line in association with an air mass discontinuity, (c) in association with the triggering-off a conditional instability by uplift over mountains or by excessive local convergence. A cloud formed by any of the three methods is basically the result of lifting of a large air-mass or a group of small air-parcels and cooling and condensation of vapour present in the air. The condensed vapour forms small droplets either on aerosol particles if present which may be charged or nutral soluble or insoluble or by homogeneous nucleation of pure water of aerosols are not present. The small droplets thus formed grow by acretion or coalescence to form bigger drops which fall down in form of rain.

During the formation and development of cloud it gets charged. A number of mechanisms have been proposed for this electrification. The mechanisms may be classified under two broad categories : (a) convection powered mechanisms (b) precipitation powered mechanisms. Both categories have few mechanisms, none of which alone is capable of giving rise to the required amount of electrification. Convective mechanism which is one of the convection powered mechanisms, takes the net positive charge present in the lower layers of atmosphere carried alongwith the rising air-parcel, while negative ions present in

the higher regions are attracted to the boundary of this parcel and carried towards the bottom of the cloud with downward motions of surrounding air. On reaching to the base this negative charge creates an upward field which attracts more positive ions from the lower regions. The process is repeated until the cloud reaches the required electrical configuration. Thus this mechanism is operative during the formation of convective cloud. The mechanisms under category (b) use precipitation particles and various processes related to their formation, growth, freezing and melting, breaking and riming etc. for charging of drops. In all these mechanisms the bigger drops are negatively charged and small droplets are charged positively. By gravitational separation *i. e.* larger drops coming to base and smaller droplets going upward with updraft, required charge configuration is produced. The quantitative analysis reveals that two–three mechanisms of this category which may be simultaneously operative under proportions according to prevailing conditions, combindly give sufficient electrification to produce breakdown fields of the order of 10^5 Volts/meter and thus lightning is initiated. The convection plays very important role in accelerating the electrification process by precipitation powered mechanisms also.

Once the breakdown fields are produced, lightning discharge takes place. Lightning may occur between a cloud and ground or between two clouds or within one cloud. It is difficult to distinguish between the last two types of discharges, hence they are, in common termed as cloud discharge. The first one is known as ground discharge. Sometimes there is discharge between cloud and surrounding air. This is known as air–discharge. Though cloud–discharge is most common type of discharge, the maximum studies pertain to ground–discharge for obvious two-fold reasons viz. : (i) difficulty in visual and photographic studies of cloud discharge and (ii) we are more concerned to ground-discharge because the destruction of property and life is caused only by ground–discharge. The ground–discharge occurs in three stages known as strokes. Generally it starts from cloud base propagating in steps downward. This stroke is termed as 'stepped leader'. On average the step length is 50 metres and pause time between two steps is of about 50 micro-seconds, thus taking a total of several milliseconds to travel from cloud to ground. When the step leader reaches near the ground *i.e.* about one or two steps above the ground, the second constituent stroke known as 'return' stroke' starts from the ground with an average upward speed of 7×10^7 m/s. Return stroke carries a current of 20–30 Killo amperes, produces almost fully ionised column of about a

centimeter radius with central temperature of about 30000-40000 degree Kelvin. After entering the cloud, the return stroke travels horizontally with reduced speed and ionisation and increased diameter of few hundred meters. This forms the third constituent stroke that may be termed by 'horizontal lightning'. Length of horizontal lightning depends also upon the dimensions of the cloud and the charge distribution inside it and varies from few killometers to a hundred kms in extreme cases. The discharge may stop here or may repeat the same processes again with stepped leader replaced by 'dart leader' which is similar to stepped leader in all respects except the step length, such that it comes to ground in at the most two–three steps or sometimes in a single step. One discharge known as 'flash' may be consisting of many strokes. Maximum of 36 strokes have been observed in one flash.

What we can see with naked eye use to be a flash. Sometimes we feel that the flash is flikering. That is because when the time interval between two strokes is little high, the eye tries to distinguish between the strokes.

After one complete flash next flash occurs within short interval ranging from few seconds to one minute or more. The most probable value of inter-flash time interval lies in the range of 10-20 s. In one complete flash, the charge destroyed varies in the range of 10-25 coulomb. This would mean that the charge destroyed say about 10 coulombs should be separated within the period of inter-flash time interval, None of the charge separation mechanisms given above is able to explain this fast separation of charge as the parameters on which they depend do not change to enhance the electrification after the first flash. For this purpose another mechanisms based on electrophilic properties of water, hence known as electrochemical charge separation mechanism has been given. This uses the ion number density present in the air which is increased by about 6–9 orders of magnitude in stepped leader and horizontal lightning and about 15-16 orders of magnitude by return stroke. This is also one of the convection powered mechanisms and explains the fast separation of charge after first flash.

Above mentioned values of the parameters give an idea of the energy involued in lightning. Theoretical calculations show that the energy of the order of 10^8–10^9 Joules is dessipated in one flash. If it could be possible to store this energy by some method, the energy problem would be solved to a large extent.

———

LIFE HISTORY OF EMINENT SCIENTISTS

H. C. Grover

Aristotle (384 BC-322 BC)

He was born at Macedonia. He was the disciple of Plato. He taught Alexander the Great. He developed the philosophy of arguments and reasoning. He propounded the Concept that the sun revolves round the earth.

Galileo Galilei (1564-1642)

He was born at Pisa in Italy in 1564. He enunciated the laws of falling badies. He discovered the first telescope. His major works are : Dialogues about the Two Great System of the world and conversations concerning Two New Sciences. He supported the idea that the earth revolves round the sun.

Newton (1642-1727)

He was born at Wollsthorpe in England in 1642. He studied at Trinity College, Cambridge. The observation of an apple falling towards the ground helped him to formulate the basic Law of gravitation. He founded the Laws of motion and the Law of gravitation. Newton was a master mind and worked in all fields of Science. His contributions are of a classical nature and are the basis of the modern Scientific thought.

Cavendish (1731-1810)

He was born in England in 1 731. He was elected Fellow of Royal Society in 1760. He developed experiments for determining the gravitational constant. He was the first Scientist to calculate the mean density of the earth.

Archimedes (287 BC-212 BC)

He was born in Sicily in 287 BC. He studied at Alexandria. He invented the water screw, pulleys, compressed air machines etc. He discovered Archimedes' principle. He developed the knowledge regarding centre of gravity. He was the founder of the theory of the equilibrium of liquid bodies is hydrostatics.

Copernicus (1473-1542)

He was born in Poland in 1473. He Studied at the University of Cracow. He devoted himself in the study of medicine, mathematics and astronomy. He propounded the concept that the sun is the centre of the universe and that the earth revolves round the sun.

Kepler (1571-1630)

He was born at Wiel in 1571. Based on the experimental results of Tycho Brahe, he formulated the Laws of planetary motion.

Robert Boyle (1627-1691)

He was born in Ireland in 1627. He studied in France, Germany and Sweden. His researches are on the properties of gases and he enunciated the famous Boyle's Law.

Kelvin (1824-1907)

He was born in Belfast in 1824. His original name is William Thomson. His basic researches are in the field of Thermodynamics. Absolute Scale of Temperature has been named as Kelvin Scale of temperature. He developed the Joule-Kelvin effect in collaboration with Joule.

Avogadro (1776-1856)

He was born in Italy in 1776. He devoted himself in the study of Physics, Chemistry and Mathematics. He propounded the famous Avogadro's hypothesis in 1811.

Kirchhoff (1824-1887)

He was born in Prussia in 1824. He studied at the University of Berlin. He worked with Helmholtz. He is well known for Kirchhoff's Law

of heat radiations and Kirchhoff's Law for the distribution of current in net work of conductors. Kirchhoff also studied the dark lines in the solar spectrum. He showed that Helium is also present in the Sun's atmosphere.

Foucault (1819—)

He was born in France in 1819. He studied medicine at the University of Paris. He developed the experimental method for measuring the speed of light. He showed that the speed of light in a denser medium (say water) is less than in a rare medium (air).

Einstein (1879-1970)

He was born in Germar y in 1879. He is well known for his theory of relativity. He was awarded Nobel prize in Physics in 1927 for his discovery of Photoelectric effect,

C. V. Raman (1888-1970)

He was a born-genius with rare versatility. He was the first Indian to get the Nobel prize in 1930 for his discovery of Raman effect. He was the founder of Raman Institute of Bangaloie. He was awarded Bharat Ratna by the Govt of India.

Albert Abrham Michelson (1852-1931)

He was born in Prussia in 1852. He was interested in measuring the speed of light in different media. He invented Michelson's interferometer for measuring the wavelength of light. He was awarded Nobel prize in 1907.

Ludwig Boltzmann (1844-1906)

He was born in Vienna in 1844. He studied Mathematics and Physics along with Stefan. He carried out experimental work relating to dielectric constant of gases.

Owen Williams Richardson (1879-1959)

Owen Williams Richardson was born in England in 1879. His main work relates to the emission of electrons from a conductor heated electrically. He was awarded the Nobel Prize in Physics in 1928 for his researches on thermionic emission.

Wilhelm Conard Roentgen (1845-1923)

Wilhelm Conard Roentgen was born in Germany in 1845. He discovered X-rays. He was the first person to be awarded the Nobel Prize in Physics in the year 1901 for the discovery of X-rays.

Edwin Schrodinger (1887-1961)

He was born in Germany in 1887. His main contributions are in the field of wave mechanics. He was awarded Nobel Prize in 1933.

Werner Heisenberg (1891-)

Heisenberg was born in Germany in 1891. He was awarded the Nobel Prize in Physics in 1932 for his basic researches in the field of quantum mechanics. His name is associated with the well known "Heisenberg Uncertainty Principle."

Henri Antone Becquerel (1852-1908)

Becquerel was born in France in 1852. He discovered the phenomenon of radioactivity in 1896. He was awarded the Nobel Prize in Physics in 1903 for his discovery of natural radioactivity.

G. P. Thomson (1892-)

G. P. Thomson was born in England in 1892. He was awarded the Nobel Prize in Physics in 1937 for his researches on diffraction of electrons by crystals. His experiments established the wave nature of electrons.

Benjamin Franklin

Benjamin Franklin was born in U S.A. in 1706. His experiments related to frictional electricity and suggested the usefulness of lightning conductors on tall buildings. He is considered as the founder of experimental science.

Michael Faraday (1791-1867)

Michael Faraday was born in England in 1791. He did experimental work concerning electricity. He is well known for his laws of electrolysis and electromagnetic induction. He was the inventor of electric motor and electric generator. The practical unit of capacity Farad is after his name. He was the President of the Royal Society, London.

J. J. Thompson (1856–1940)

J. J. Thompson was born in England in 1856. He discovered the electron which helped him to formulate the electronic theory of matter. He was awarded the Nobel Prize in Physics in 1906 for his researches on the passage of electricity through gases. He devised experiments for the measurement of specific charge of charged particles.

Allessandro Volta (1745–1827)

Allessandro Volta was born in Como in 1745. He studied at the University of Pavia. His main works relate to current electricity. He constructed the Voltaic pile, which was the staring point for the mauufacture of batteries and accumulators. The practical unit of potential difference— Volt has been named after him.

Enrico Fermi (1901—1954)

Enrico Fermi was born in Italy in 1901. He was awarded the Nobel Prize in Physics in 1938 for his discovery of slow neutron reactions and artificial radioactivity. A group of fundamental particles called Fermions has been named after him.

George Simon Ohm (1787—1854)

George Simon Ohm was born in Germany in 1787. His main works relate to electricity. He formulated the famous Ohm's Law. The practical unit of resistance Ohm has been named after him. He received the Copley Medal of Royal Society, London.

James Clerk Maxwell (1831—1879)

James Clerk Maxwell was born in England in 1831. He was educated at Edinburgh and Cambridge. He was Professor of Experimental Physics at "Cavendish Laboratory" at Cambridge. His basic contributions are in the fields of Kinetic theory of gases and Electromagnetic theory of light.

Andre Marie Ampere (1775—1836)

Andre Marie Ampere was born in France in 1775. He was Professor of Mathematics at Paris. His basic works relate to magnetism and electricity. The practical unit of current Ampere has been named after him.

Deptt, of Mathematics,
G.K.V., Haridwar

Our Eminent Scientists :

PROFESSOR S. DHAWAN

Professor SATISH DHAWAN was born in Srinagar, Kashmir, on 25th September 1920. He had his early college education in the Government College at Ludhiana and Lahore and received his B.A. degree in Mathematics and Physics in 1938 and M.A. degree in English Literature in 1941 from the Punjab University. In 1944 he graduated in Mechanical Engineering from the same University obtaining a first class honours and the first rank.

After working for a brief period with the Hindustan Aircraft Ltd., Bangalore, he left for the U.S.A. on a Government of India Scholarship for advanced studies in Aeronautical Engineering. He attended the University of Minnesota from 1946 to 1947 and received the Master of Science degree in 1947. He then joined the California Institute of Technology and received the Aeronautical Engineer's degree, specialising in Aerodynamics, in 1949 and Ph.D. degree in Aeronautics & Mathematics, in 1951.

Returning to India in 1951, he joined the Department of Aeronautical Engineering, Indian Institute of Science, Bangalore, with which he was associated till July 1981. He worked there as a Senior Scientific Officer (1951–52), Assistant Professor (1952–55), Professor and Head (1955–62). From 1963 till July 1981, he was the Director of the Indian Institute of Science. During 1971–72, he was on sabbatical leave in the U.S.A. as a Visiting Professor at the California Institute of Technology. In June 1972, on an invitation of the Government of India, he took up responsibility for directing India's Space Programme as Chairman, Space Commission and Secretary to the Government of India, Department of Space.

Over the last two decades he has been closely associated with the development of Aeronautics in India, especially research and

advanced education aspects, and more recently he bears responsibility for the area of Space activities in the country. He is the author of a number of research papers and reports in Fluid Mechanics and Aerodynamics, particularly on problems of high speed flight, transonic and supersonic tunnels, turbulence and transition phenomena.

On invitation from the Royal Aeronautical Society, he delivered the twenty-second British Commonwealth Lecture at London on "Aeronautical Research in India" in March 1967.

He is Chairman of the Indian Space Research Organisation. He is a member of the Science Advisory Committee to the Cabin Aeronautics Research & Development Board, Electronics Commission, Atomic Energy Commission, etc. He is a Fellow of the Indian Academy of Sciences and of the Indian National Science Academy. He has served as the President of the Indian Academy of Sciences (1977–79). He is a Foreign Honorary Member of the American Academy of Arts and Sciences and a Foreign Associate of the National Academy of Engineering, U.S.A. He served as the one-man committee for the evaluation of AVRO HS-748 aircraft (1973–75).

He was honoured by the President of India with "Padma Shri" in 1966, "Padma Bhushan" in 1971 and "Padma Vibhushan" in 1981. He received the Alumni Distinguished Service Award of the Alumni Association of the California Institute of Technology in 1969. He was awarded the D. Sc. degree *(honoris causa)* by the University of Roorkee in 1972, by the Cranfield Institute of Technology, Cranfield, U.K., in 1975, by the Panjab University in 1978 and by the Indian Institute of Technology, Madras in 1981, and the Doctor of Laws *(honoris causa)* by the University of Bombay in 1976. In 1981, he was honoured by the governing council of the Indian Institute of Science by conferring on him the Honorary Fellowship of the Institute.

He was in the U. S. A. during 1946–51 for higher studies in Engineering and during 1971–72 as Visiting Professor in the California Institute of Technology. He has spent short periods in the U K., China, Australia, Canada, USSR, West Germany, Austria and France, attending scientific conferences, delivering lectures and visiting universities and research institutions.

His interests include Science Policy, History of Science and Toy-making for children.

× × ×

SCIENCE BRIEFS

—Ajaya Shanker
M.Sc. (I) Microbiology

Shatavari shows anticancer property

Shatavari (Asparagus racemosus). recommended in Ayurveda for increasing milk secretion in women during lactation, has recently been reported to have anti-cancer activity. Experiments have shown that inclusion of root powder of Asparagus racemosus in the diet of rats protects them from breast cancer induced by a carcinogen called 7, 12 Dimethylberz anthracine.

Vitamin A and open eyelid

Don't stuff your wife during pregnancy with Vitamin A According to a report published in *Acta Anatomia* a New York medical journal 'maternal hypervitaminosis A' may result in open eyelid.

Detecting Jaundice—the easy way

Here is a strip with a detecting agent in a radiation cross-linked hydrogel. The hydrogel is selectively permeable to *bilirulun*, the jaundice indicator in urine. When hyrogel is dipped in the urine of a person suffering from jaundice, the hydrogel turns yellow indicating the disease.

Green bananas show antiulcerogenic properties

Green bananas have antiulcerogenic properties. The active factor responsible for such properties is found in aquous extract of the fruit. The extract promotes the growth of protective mucosa cells in the stomach living over ulcers.

Coconut oil to run diesel engines

In Philippine it has been shown that a blend of diesel fuel with 30 per cent crude coconut oil can be used to run diesel engines.

Solar bicycle

In Australia a four-seater tandem solar bicycle driven by a combination of pedalling and electrical energy from solar cells. It is hoped that in 10 years as the efficiency of solar cells increases this bicycle will become the multipassenger vehicle of the future. In a test, the bicycle covered a distance of 1850 Kms in 8 days at a speed of 30 Kms/h.

The Ganga Environment-III

PRELIMINARY STUDIES IN BIJNOR-SAHARANPUR AREA

V. SHANKER
Principal Investigator
Integrated Study of the Ganga
Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
HARDWAR

From CHANDI Bridge (Hardwar) the Ganga branches into several streams which take different courses. Their changing courses have made large areas of land unsuitable for cultivation. During rains these streams shell, meet at places, increase their intensity (Union is strength) and hit the villages situated along the bank with floods. The Punya Bhumi in Kangri Village,. where the old magnificient building of Gurukul Kangri Vishwavidyalaya is standing, remains surrounding by water on all sides during rains (July to October). Siddha Srota, a hilly stream joins the Ganga here. Ever since, the construction of Eastern Ganga Canal was started in the region, the Siddha Srota has become a threat of some magnitude to Kangri Village where it strikes and cuts off the soil. This is because with the construction work of canal, the other streams of Siddh Srota were blocked, so that the water of these streams was diverted in the Siddh Srota stream that passes along Kangri.

The Villages situated along the Ganga (Kangri, Pili, Shyampur, Tatwala, Bhaguwala, Jagjitpur, Missarpur, Bishanpur, Nangal, Ghaispur etc.) have common problems such as poverty, low crop yields, soil erosion, floods during rains, poor educational and Medical facilities etc, Large chunks of soil have been and are being washed off by the Ganga. The problem has been aggravated due to two reasons—

1 : Felling of trees for fuel and for livelihood. This combined with unrestricted grazing and lopping has] resulted in a soil which has been laid bare and invites erosion.

2 : Lifting of stones from river bed by contractors.

Large tracts of land along the river are water logged and swampy. There are also areas which are sandy and dry. Thus several hectares of land have been made unproductive. Eucalyptus plantation in swampy regions should be encouraged.

The stretch of Ganga under description is otherwise clean. There are no drains of significant magnitude falling into Ganga. The various parameters of environment under the study of the ISOG team have been found in the permissible limit except for the turbidity which increases during rains. The environmental degradation in the area however, manifests itself in the form of erosion, siltation floods, soepago diminishing vegetation, unrestricted exploitation of medicinal plants etc. To arrest further damage to the ecology of the area the following measures are recommended :

1 : Ban should be imposed on lifting of stones from the river bed specially along the villages. The stones when present in sufficient quantity, check and reduce the force of water current and thus save the banks from erosion.

2 : Planting of suitable plant species along the bank on a large scale should be taken up. Plantation has not to be restricted to tree species alone. Species of ipomea, Saccharum, Arundo, Bamboos etc., should be planted in suitable places at the bank. Three species such as Sheesham, Khair, Semal, Jamun, Jamoia, Bair, Mango, Subabool, Guavas etc., are to be planted a little away from the Bank on the village side.

ISOG team started the programme in a humble way in Kangri, Pili and Jagjitpur. The programme was inaugurated in Jagjitpur by Shri G. B.K. Hooja, I. A. S. (Retd,) the Vice Chancellor and in Kangr by Miss A. K. Ahuja, I. A. S., Dy. Secretary, Ministry of Rural Development and Reconstruction, Govt. of India.

3 : Crops suited to grow under ecological condition as existent in the area, should be identified and recommended for cultivation so that no land is left bare.

4 : Cultivation of nitrogen, Fixing algae, Azolla etc. on wet lands should be attempted. The production of bio-fertilizers in this way may help relieve pressure on synthetic fertilizers which are costly and in whose production huge amount of energy is consumed.

5 : Sun-Cookers and Bio-Gas Plants should be introduced in the villages so that energy needs of the villages could be satisfied in this way, and their dependence for fuel on plants could be reduced. This shall result in the conservation of vegetation in the area which is essential for the improvement of Ganga environment.

6 : Check dams should be constructed by Flood Control Agencies. It is estimated that a total of 21 such dams constructed at appropriate distances from Kangri to Shyampur shall save the villages from floods.

7 : Peoples involvement in all the aforesaid programmes is necessary. Similarly the Govt. Departments—such as rural development. department, forest & irrigation department, district authorities should lend effective cooperation in these programmes. Educational institutions, at the local level should be encouraged to participate in these programmes.

It is hoped that after the aforesaid recommendations are implemented further damage to natural resources shall be arrested, a process of repairing the damage already done will be initiated leading to an overall environmental and economic improvement of the region.

Acknowledgement

Sincere thanks are recorded to Govt. of India, Deptt. of Environment, New Delhi for providing necessay funds for the work and to Shri G.B.K. Hooja I.A.S. (Retd.) for his keen interest, guidance, encouragement and for facilities provided.

A HIMALAYAN ECO-DEVELOPMENT RESEARCH PROJECT IN G.K.V.

Dr. B.D. Joshi, Head, Dept. of Zoology
Gurukula Kangri Vishwavidyalaya, Hardwar

In persuance to the policies of our Government initiated so brightly by our late beloved Prime Minister Smt. Indira Gandhi ji, the Gurukula Kangri Vishwavidyalaya is poised for a high leap, in the field of modern Environmental Researches. This has been possible for this University only due to the keen and dynamic interest of its Vice-Chancellor Sri G.B.K. Hooja, that recently a project entitled "Integrated Studies towards improvement of existing environment in Himalayan Valleys near Hardwar" has been sanctioned to Dr. B.D. Joshi, Head, Deptt. of Zoology.

The total cost of the project is now Rs. 9.68 lakhs. The project has been sanctioned for a period of three years by the Ministry of Environment, Government of India, New Delhi.

The site of the project-work will be the well-known Kandva Ashram Valleys, near Kotdwar (Distt. Pauri Garhwal). This is a beautiful place in the foothills of Shivalik series of Greater Himalayas. The place sill appears to be resounding with the epical lores of King Dushyant and consort Shakuntala.

The project sanctioned to us is one of the major projects ever sanctioned by the Ministry of Environment to work on the Eco-development programmes in Himalayas. Following posts as part of the whole has been sanctioned, to be employed in this project.

i)	Research Scientist	one
ii)	Engineer	one
iii)	Senior Research Fellow	two
iv)	Junior Research Fellow	three
v)	Driver	one
vi)	Field Attendant	two
vii)	Lab. Attendent	one

Following objectives are to be achieved through this project :

1. Improvement of the existing environmental status.
2. Soil protection.
3. Flood control.
4. Habitation conservation.
5. Faunistic studies with special reference to pest management in the area.
6. Evaluation of the soil quality of natural and eucalyptised forests and crop fields.
7. Assesment of existing environmental conditions and the quality with a view of future productivity and various on going eco-development programmes.
8. Creation and complete establishment of plant nurseries in foot-hill valleys for mass plantation.

It is hoped that with the available grant and the research team headed by Dr. Joshi as Principal Investigator, highly valued contribution would emerge in this field of eco-development programme. Emphasis is to be given to check flood menace, popularizing the tree plantation in the barren hilloks and the valleys, with special preference to the river catchment areas. The rural people are to be encouraged to follow the plantation. Incentives may be devised and suggested to the valley people to develop their own small orchards or and Panchayati forests. To save the forests from the villagers, at least in terms of fuelwood they are to be encouraged for adopting the biogas systems. Thus project is to take all the basic aspects of the ambient eco-requirements in the area.

DUMB TRIBALS OF SILENT VALLEY*

Purshotam Kaushik, Department of Botany,
Gurukula Kangri University, Hardwar

Silent Valley is one of the last virgin tropical rain forests of the world located in district Palghat of Kerala State and is an ecologist's nightmare. It was the proposed site of 120 MW hydel project and has been talked much in the newspapers and the mass media since the ecologists believe the project threatens the multitude of plant and animal species that have evolved in the tranquillity of Silent Valley for six million years. The authorities of Guru Nanak Dev University, Amritsar, in the name of Dr. Rajinder Singh Sandhu, then Professor & Head of Biology Department, assigned me the task of taking an cxcursion party to the southern coasts of India, in December 1980. When I proposed the name of Silent Valley he complied with my proposal.

Though enough has already been published and reported about endangered animal species viz., tiger, panther, ever chattering Nilgiri langur, varieties of snakes, butterflies and blood sucking leeches of this almost virgin rain forest but this is the first time that due to long cherished efforts of **Shri G. B. K. Hooja**, I.A.S. (Retd.),Hon'ble Vice-Chancellor of our University, this conference is being organised and we found an opportunity to discuss about the state of Tribals and Scheduled Castes with the Hon'ble learned Vice-Chancellors of North Indian Universities. Based on my personal observations and the information available the facts about the state of Tribals are visualized below.

In the world about 200 million tribals (roughly 4% of the world population) are estimated, found in all regions of the world and number among the poorest of the poor.

According to 1971 census the scheduled tribe population in India was 38 million constituting about 7% of the country's total

*Paper presented in North Zone Vice-Chancellors' Conference, Jan. 18–20, 1985.

population. On amendment of the constitution in 1976, doing away with area restriction within a state the number has increased to 40 million constituting 7.5% of the India's total population.

They occupy 18.74% of the total area of the country and mostly live in hilly to forest regions of 19 states and 6 union territories. According to 1971 census about two-third of total population of scheduled tribes is concentrated in Madhya Pradesh (98.15 lakhs), Orissa (50.57 lakhs), Bihar (49.33 lakhs), Gujrat (37.57 lakhs) and Rajasthan (31.35 lakhs). The other states inhibiting scheduled tribes are Andhra Pradesh, Assam, Himachal, Maharashtra, Karnataka, Kerala, Manipur, Sikkim, Tripura, Uttar Pradesh, West Bengal and Union territories of Andaman and Nicobar Islands, and Goa, Daman and Diu. Their percentage is minimum in Karnataka and Kerala 0.89 and 0.90 per cent respectively of the total population.

The brave tribals of Silent Valley although very few in number but wander in more than 9000 hectares of tropical evergreen forest full of wild life.

The route we followed for going to Silent Valley is given below. Before reaching there we consulted Dr. N. C. Nair, Deputy Director of Botanical Survey of India (Southern Circle) at Coimbatore, who had his project on floras of Idduki-Silent Valley. From Coimbatore (Tamil Nadu) we went to Palghat (Kerala) and got an authority letter from the District Forest Officer for permission to enter the Valley. From Palghat we went to Manarghat by bus. Manarghat is a small town, there is not any hotel to stay at night but has a good market. We purchased biscuits, fruit breads, pramthe, condensed milk, sugar, tea and bananas from Manarghat. We reached Mukali by bus in $2^1/_2$ hours at noon. Mukali is the last 'basti' (locality) on way to Silent Valley. There is a restaurant and one or two shops of general merchants. The letter of District Forest Officer, Palghat, written in Malayalam, was shown to the forest Ranger at the check post of Mukali. The forest Ranger didn't know Hindi at all but knew a little English; we could exchange our ideas. The Ranger hired for us a teenage Mohammedan boy named Maudeen Kuti to guide us to the heart of Silent Valley. Silent Valley is exactly 24 K. M. from the forest check post at Mukali. Maudeen Kuti who was of fourteen years in age neither could speak English nor Hindi. We enjoyed our 'padyatra' by talking to him with

signals. On our way we could see the tribals who were extremely shy and gentle. Whenever any tribal came on our way with his cows our young guide Mr. Maudeen Kuti said,' Aadivasi' that means a tribal. Mr. Kuti tred to explain tribals are extremely poor and gentle and have to bear the atrocities of the forest contractors and the shop keepers. I found the tribals of Silent Valley (Kerala) are really too gentle and shy in comparison to the tribals of any other State of India. The men are almost naked and the women are very poorly dressed.

At sun set we reached the south-west peak of Silent Valley. Two chowkidars were already living there. They were suffering from asthma because they often remained inside the rooms of the huts of Kerala State Electricity Board due to the fear of tigers, and also they smoked 'biris' in excess. The authority letter was handed over to them, they were illiterate but Mr. Kuti explained to them what he was instructed by the forest Ranger at Mukali. We gave them some medicines and syrups, and advised them not to smoke. We soon made them our friends and inspite of the barrier of language we could exchange our ideas with them with the help of signals and actions. We slept at night and in the morning went down upto the heart of the Valley on the bank of the river Kunti Puja. We spent there a few days. At night we could hear roaring of tigers, trumpeting of elephants and voices of other wild animals. I had already given the biological information in my book **"Ecological and Anatomical Marvels of the Himalayan Orchids"** published by Today and Tomorrow's, New Delhi. Besides the author eminent botanists like Late Professor (Mrs.) Janaki Ammal started work in Silent Valley. Professor (Mrs.) Ammal died in 1983. Her project is now being looked after by Professor A. Mahadevan of University of Madras. They have made cytegenetic survey of the flora of the Silent Valley.

Inspite of the deep interest of so many scientists in this thick rain forest, the author has not seen even a single note concerning the benefit of the tribals who have been leading sub-human life. However, you can see the news of atrocities and excesses on these poor people every day in the local newspapers of Kerala.

I was really much shocked and grieved to see our brothers and sisters in that pitiable condition. Doesn't they belong to mother India? Won't they deserve the benefits of freedom ? These question-marks

hover my mind. They are often employed by the forest contractors who do not pay them well and several times have to face ill treatment, Mr. Kuti tried to explain. They have very little and poor quality of agricultural land. Mostly they meet their day to day needs from the forest products. They visit there (Mukali) either to purchase rice or any other edibles if they have earned money either by labour or by selling forest goods like honey, firewood, medicinal plants etc. They are loyal, honest and contented with their simple life. So much they are afraid of the sophisticated and crooked people of the cities. They never travel in a bus. They have no facility of education and hospital. Being illiterate they are dumb and remain unheard.

In my opinion **the status of the poor tribals of Silent Valley is in no way better than that of its snakes and scorpions** which easily come to the notice of scientists pleading for conservation and of the government, in turn creating chaos mixed with propaganda. If life style of tribals is improved the wild life will be conserved nicely in the long run.

Negligence of Kerala Government– According to 1958-59 report of the commissioner appointed by the President through the Minister of Home Affairs, Govt. of India, for scheduled castes and scheduled tribes, two lists of scheduled castes and scheduled tribes were issued, one by the Director of Harijan Welfare and another by the Harijan Welfare Department of Kerala Govermnent. The two lists neither tallied nor were in conformity with the lists appended to scheduled castes and scheduled tribes lists (modification) order 1956. According to the commissioner anomalies were bound to create confusion and he warned "it is not desirable to issue any lists parallel to scheduled castes and scheduled tribes lists issued by the President." The tribals of Silent Valley remained neglected for being few in number and of gentle nature, failed to sound.

British Policy—The British faced resistance in the tribal areas, at first the British tried to super-impose their conventional administrative pattern, this led to hostility, discontentment and sometimes rebellions. The British reviewed their policy and subsequently a policy of non-interfernce was adopted by them. The brave tribals of Silent Valley have always remained free but their own countrymen have turned them towards the life of slaves.

Jawaharlal Nehru's philosophy– The first Indian Prime Minister had realised their pitiable state for they were neglected by

the British and he had warned us all, **"There is no point in trying to make them a second rate copy of ourselves."**

Late Mrs. Indira Gandhi our former beloved Prime Minister very much loved the tribals and many times danced with them. Certainly considerable progress has been made by the tribals in the north-east but the great patriots of India in Silent Valley yet live in the darkness of canopies of huge trees and have no protection against pathogens, snakes, scorpions and beasts of the Silent Valley, and also against those of the outside world.

The Committee on Tribal Economy in Forests (Hari Singh Committee) had suggested that in the tribal areas forests, must be managed not basically for conservation but for furthering tribal interest. This means the revenue will not be the most important consideration but the welfare of the inhabitants of these areas.

Acknowledgement :

Sincere thanks are due to Mr. K. M. Tiwari, President F. R. I. Dehradun ; Dr. B. S. Attri and Dr. T. K. Pandita of Department of Environment, Govt. of India, New Delhi; Prof. V. Arora, Registrar ; Professor S. C. Tyagi, Principal, College of Science and Dr. V. Shanker Head of Botany Department, Gurukul Kangri University, for the help rendered by them by providing literature and information.

KANGRI GRAM DEVELOPMENT PROJECT

Gurukula Kangri University, Hardwar

The project was started in 1981 at the initiative of Vice-Chancellor Sri G.B.K. Hooja, I.A.S. (Retd.). Since then the village, under his dynamic leadership and with the active co-operation of DM and other officers of Bijnor District, State Bank of India, Jwalapur, Staff and Students of Vishwavidyalaya, has made an all-round progress as summarised below :

(A) Construction Work

1. Construction of pukka road from main road (Hardwar-Bijnor Road) to the village and also inside the village (360 m + 411 m, cost approx. Rs. 86000/-).
2. Construction of 5 houses for weaker sections.
3. Construction of drinking water well for Harijans. (Cost Rs. 17845/-).
4. Construction of two bio-gas plants.
5. Construction of community hall.
6. Construction of 4 shops (Cost Rs. 36500/-).

(B) Library

Shri Govardhan Shastri Pustakalaya was started in the school building with a total of 1000 books and periodicals. The university library arranges for current newspapers, periodicals etc. Sangad Vidya Sabha Trust Jaipur gives an annual grant of Rs. 500/- to the library. The Vice-Chancellor is one of the trustees of the trust.

(C) Adult Education

Centres have been opened in the village with the objective that nobody in the village remains illiterate.

(D) Raising of economic level

The State Bank of India, Jwalapur and Co-operative Bank, Najibabad made a significant contribution in raising the economic status of the people by loaning a fair amount of money totalling Rs. One lac to about 60 persons living in the village for small business and milk animals, bulls etc. This has resulted in increasing the monthly income of about 33% families of the village by Rs. 300--500/-.

(E) Tree Plantation

As a part of social forestry and also for checking bank erosion, a large number of suitable plant species were planted. The ISOG project team took an active part in this activity.

(F) Vegetable Growing

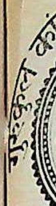
The villagers were advised to grow vegetable and flower plants so as to obtain better returns from the land. By taking to this advice they improved their incomes by Rs. 400-600 per acre per month.

A number of important persons representing various fields visited the village to see the development programmes and provided an encouragement to the village-folk; Shri Balram Jhakar, Speaker Lok Sabha; Shri Arvind Verma, Commissioner Meerut; Shri Venkata Raman, Commissioner Agricultural Development; Miss A. K. Ahuja and A.K. Narayan, Dy. Secy. Ministry of Rural Development and Reconstruction, Govt. of India.

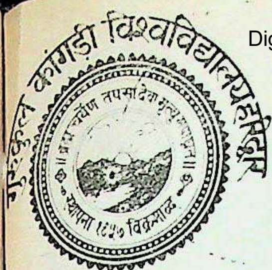
(G) Future Plans

In a meeting convened by Shri M.K. Agarwal DDO Bijnor in the village on 6-2-85 it was decided that the link road should be plastered and Kharanja should be laid in the lanes in the village. It was also decided that Bus Stand and Medical facilities should also be provided to the villagers.

—Dr. Vijay Shanker
Honorary Director







आर्यभट्ट

विज्ञान - पत्रिका

अगस्त
१९८७

विज्ञान महाविद्यालय

सम्पादक
डॉ० विजय शंकर

वैदिक काल में बनस्पतिविज्ञान के क्षेत्र में सराहनीय प्रगति दृष्टिगोचर होती है। पौधों के वर्गीकरण, बाह्य तथा आंतरिक रचना, क्रियाविज्ञान तथा विकास का वर्णन वैदिक साहित्य में मिलता है। ऋग्वेद में प्रकाशसंश्लेषण की ओर भी संकेत किया गया है। ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे पता लगता है कि उस काल के लोग भूमि को अधिक उपजाऊ बनाने के लिए फसलों का हेर-फेर करते तथा खाद डालते थे। उस दूरस्थ समय में भी इस प्रकार के अध्ययन तथा तर्कणाप्रधान चिन्तन के लिए कोई भी हमारे पूर्वजों की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता।

ओ३म्

आर्यभट्ट

विज्ञान—पत्रिका

अगस्त, १९८७

सम्पादक :

डा० विजय शंकर

अध्यक्ष : वनस्पति विज्ञान विभाग

परामर्शदाता :

प्रो० सुरेशचन्द्र त्यागी

प्राचार्य : विज्ञान महाविद्यालय

मूल्य ५.००

प्रकाशक :

डा० वीरेन्द्र अरोड़ा

कुलसचिव

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,

हरिद्वार

मुद्रक :

जैना प्रिंटर्स,

ज्वालापुर

विषय-सूची

सम्पादकीय

मनुष्य के द्वारा की गई अनेक क्रियाओं के फलस्वरूप आज पर्यावरण में ऐसे परिवर्तन आ रहे हैं जो समस्त प्रकार के जीवन के लिए हानिकारक हैं। इस प्रकार हमारा पर्यावरण दूषित हो रहा है। इस समस्या की ओर आज पूरे विश्व का ध्यान आकृष्ट हुआ है।

वर्तमान जगत की यह समस्या जो भयावह रूप से मानव-सभ्यता को निगल जाने के लिए अपने पँजे बढ़ा रही है, प्रदूषण की समस्या है। प्रत्येक व्यक्ति की पर्यावरण के प्रति सहनशीलता की निश्चित सीमाएँ हैं और जब कोई कारक इन सीमाओं से अधिक मात्रा में उपस्थित होता है, उसे प्रदूषण कहते हैं। इससे निबटने के लिए, वातावरण में इस विष–वमन की प्रतिक्रिया को रोकने के लिए सभी देशों की सरकारें प्रयत्नशील हैं। इस विष को पीने के लिए भगवान शिव की तरह सबसे अधिक सफल माध्यम वृक्ष पाए गए हैं। इनकी पत्तियाँ वायु में मिले प्रदूषक पदार्थों के सूक्ष्म कणों को रोक और सोख लेती हैं। पत्थर के कोयले से उत्पन्न प्रदूषण रोकने के लिए "जंगल जलेबी" नामक वृक्ष का सघन रोपण बहुत लाभकारी पाया गया है। यह धुँए की सांद्रता में लगभग "२७ प्रतिशत" की कमी और सल्फर डाय-आक्साइड की सांद्रता में "८० प्रतिशत" की कमी करने में समर्थ पाया गया। शक्तिचालित वाहन, जैसे–कारें, ट्रक एवं बसें भी प्रदूषण के स्रोत हैं। यदि सड़कों और मकानों के बीच १० मीटर चौड़ी तथा ६ मीटर ऊँची हरित पट्टिका का विकास किया जाए तो मार्गों से आने वाले कार्बन मोनो आक्साइड की मात्रा में "४४ प्रतिशत" कमी हो जाती है।

वायु के समान जल भी प्रदूषण से मुक्त नहीं है। कारखानों से निकलने वाले नाना प्रकार के प्रदूषक पदार्थ नदियों में प्रवाहित किए जाते हैं। इसीलिए कानपुर के निकट गंगा और कलकत्ता के निकट हुगली नदी प्रदूषण का शिकार है। इस समय भारत के १३ नगर जलप्रदूषण से ग्रस्त हैं। कारखानों से निकलने वाले अनेक ट्रेस एलामेन्ट नदी के जल में प्रवाहित हो जाते हैं जिनमें से कुछ पौधों और जन्तुओं में मेटाबोलिक एरर पैदा कर देते हैं जिससे कई प्रकार के रोग हो जाते हैं, जैसे–कैंसर, हृदय रोग, स्नायु एवं पेट के रोग।

प्रदूषण के लिए प्रायः जनसंख्या को उत्तरदायी माना जाता है। बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकता की पूर्ति के लिए अधिक औद्योगीकरण किया

जाता है जिससे प्रदूषण में वृद्धि होती है। किन्तु आज हम देखते हैं कि अनेक विकसित देशों में जनसंख्या कम होने पर भी प्रदूषण, अधिक जनसंख्या वाले देशों की तुलना में अधिक है क्योंकि वहाँ प्रति व्यक्ति आवश्यकता अधिक है। अतः वास्तविक दोष तृष्णा का है। शायद इसीलिए हमारे वैदिक ऋषियों ने "इदन्नमम्" को इतना महत्व दिया है।

प्रदूषण को कम करने के अतिरिक्त पौधों का वातवरण-संरक्षण में भी अत्यधिक महत्व है। वृक्षों का वेहिसाब काटा जाना, जंगल के जंगल साफ कर देना प्रकृति में असन्तुलन पैदा कर देता है। इसके दूरगामी परिणाम होते हैं, भूमि का "अपरदन" प्रारम्भ हो जाता है, भूमि कृषि के "अयोग्य" हो जाती है। ताप-नियन्त्रण एवं "जलचक्र" नियन्त्रण बिगड़ जाता है, जन्तुजीवन के प्राकृतिक निवास एवं वनसंपदा नष्ट हो जाते हैं। प्रत्यक्ष है कि वातावरण-संरक्षण और वृक्षों का गहरा सम्बन्ध है।

—वि० शंकर
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग

दीक्षान्त-समारोह—1987

इस वर्ष दीक्षान्त के लिए माननीय कुलपति जी के आग्रह पर उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री माननीय श्री वीरबहादुर सिंह जी पधारे। उनके साथ वरिष्ठ विधायक श्री शिवनाथ जी कुशवाहा तथा पर्वतीय विकास राज्यमंत्री श्री राम अवतार जी दीक्षित उपस्थित थे। माननीय मुख्यमंत्री जी ने पुस्तकालय भवन के विस्तार के लिए आठ लाख रुपये तथा संग्रहालय के लिए एक लाख रुपये की सहायताराशि प्रदान की। विश्वविद्यालय में एक विशाल स्टेडियम बनवाने की घोषणा मुख्यमंत्री जी पहले ही कर चुके थे।



श्री आर० सी० शर्मा (कुलपति) माननीय मुख्यमंत्री श्री वीरबहादुर सिंह जी का स्वागत करते हुए।



बायें से—डा० सत्यकेतु विद्यालंकार (कुलाधिपति), श्री वीरेन्द्र अरोड़ा (कुलसचिव), श्री आर० सी० शर्मा (कुलपति), श्री रामप्रसाद वेदालंकार (उप-कुलपति) दीक्षान्त-समारोह के अवसर पर।



श्री सोमनाथ मरवाहा (परिद्रष्टा), श्री बलभद्रकुमार हूजा (पूर्व-कुलपति), एवं अन्य शिष्ट-परिषद् के सदस्यगण दीक्षान्त-समारोह के अवसर पर।

अन्तरिक्ष उड़ान का संक्षिप्त इतिहास

—डा० विजय शंकर
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

१. उड़ान--कल्पना से वास्तविकता तक :

हमारे पूर्वजों ने और हममें से अनेकों ने पक्षियों की स्वतन्त्र उड़ान की ईर्ष्या की है। मनुष्य की अपने उड़ने की कल्पना इतिहास में बराबर मिलती है। इस पृथ्वी पर समुपलब्ध साहित्य के सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेदों में नभ, जल और थल तीनों स्थानों में अव्याहृत गति से विचरने वाले वायुयान, जलयान तथा स्थलयान का बहुत विस्तृत वर्णन मिलता है। इसी भाँति भारद्वाज ऋषिकृत वृहद् विमानशास्त्र, पुराणों तथा महाकाव्यों में इसका बहुत वर्णन मिलता है।

भारत से इतर देशों के साहित्य में भी सपक्ष राजाओं, भगवान और फरिश्तों एवं उड़ने वाले गलीचों, रथों और नौकाओं का जिक्र आता है। जैसे-जैसे विस्तृत संसार के बारे में मनुष्य की जानकारी बढ़ने लगी, उसकी उड़ने की कल्पना एवं विचार केवल पृथ्वी पर उड़ने या पक्षियों की उड़ान की नकल करने तक ही सीमित नहीं रहे, वह चाँद और उससे भी आगे तक उड़कर पहुँचने के स्वप्न देखने लगा।

मनुष्य सर्वप्रथम २०० वर्ष पूर्व वायु के गुब्बारों की सहायता से उड़ा। ७४ वर्ष पूर्व वह सुरक्षा के साथ, हवा से अधिक भारी एयरक्राफ्ट (Aircraft) में, जिसे वायुयान कहते हैं, उड़ा। तत्पश्चात् वह वायुयान से संसार के ऊँचे-से-ऊँचे पर्वतों की दोगुनी ऊँचाई तक उड़ने लगा। आज से लगभग २६ वर्ष पूर्व १९६१ में वह रॉकेटचालित केप्सूल से, जिसे अन्तरिक्षयान (Spacecraft) कहते हैं, पृथ्वी के वायुमण्डल और गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव से परे उड़ान भरने लगा। और फिर वह चाँद और उसके आगे तक उड़ान भरने के लिए अग्रसर हुआ।

उड़ान में वास्तविक सफलता प्राप्त करने से पूर्व मनुष्य की उड़ान के बारे में कतिपय कल्पनाएँ अत्यन्त रोचक हैं।

पुराने समय में

सर्वप्रथम शिल्पतथ्यों में से एक जो मनुष्य द्वारा उड़ान को दिखाती है, ईसा से ३५०० वर्ष पूर्व की एक बेबोलोनियन सील है। इस सील पर एक गड़रिया एटना गरुड़ की पीठ पर बैठकर स्वर्ग जाता हुआ दिखाया गया है।

१५०० ई०पू० फारिस (Persia) के बादशाह काऊ काऊस (Kou Kous) ने अपने तख्त से गरुड़ (Eagle) बाँधकर उड़ने का प्रयास किया। काऊ काऊस एक खगोलशास्त्री थे और उन्हें बेबल की मीनार (Tower of Babel) बनवाने का श्रेय प्राप्त है।

१५०० ई० पू० के आस-पास इकारस (Icarus) और डेडेलस (Daedalus) ने पक्षियों के परों को मोम द्वारा जोड़कर पंख बनाए और उसकी सहायता से उड़े। कहते हैं कि इकारस सूर्य के इतने निकट तक उड़ गया कि सूर्य की गरमी से पंखों का मोम पिघल गया और फलस्वरूप वह पृथ्वी पर गिर कर मर गया। वाल्मीकि रामायण में भी जटायु के बड़े भाई सम्पाति का सूर्य के निकट पहुँचने का वर्णन है। ९०० ई०पू० ब्रिटेन के राजा ब्लाडुड (Bladud) ने भी इसी प्रकार पंखों की सहायता से साहसिक किन्तु प्राणघातक उड़ान भरी।

७५० ई० पू० के चीनी आख्यान में 'उड़नगाड़ी के देश' (Land of Flying Cart) का जिक्र आता है जिसमें सपक्ष सवारी गाड़ी एक हाथ में झंडा हिलाते हुए मनुष्यों द्वारा उड़ाई जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि यह सब साहित्यिक वर्णन प्रागैतिहासिक काल का है। इसकी तथ्यता में सन्देह की गुंजाइश है। उपर्युक्त साहित्य तथा कल्पनाओं के परवर्तीकाल ऐतिहासिक युग में सर्वप्रथम गैलीलियो द्वारा आकाश के निरीक्षण ने १६१० ई० में चाँद की उड़ान के बारे में अनेक कल्पनाओं तथा अटकलों को जन्म दिया। यह सोचा जाने लगा कि चाँद पर जीवन है।

१६३४ में मुद्रित केपलर की 'सोमनियम' (Somnium) अपने समय की अन्तरिक्ष उड़ान की सबसे विख्यात वैज्ञानिक गल्प थी। इसमें लेखक ने एक सोते हुए आदमी को दानवों की सहायता से चाँद के धरातल पर पहुँचाया है। ग्रन्थ में उनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण बराबर बना रहता है। उन्होंने गुरुत्वाकर्षण के लोप होने के प्रभाव और वायुमण्डल के विरलित होने से साँस लेने पर प्रभाव का वर्णन किया है। चाँद पर पहुँचकर केपलर वैज्ञानिक संरचना का भूदृश्य, रात-

दिन की अवधि, जलवायु और सर्पेन्टाइन जन्तुओं का, जो वहाँ रहते हैं, वर्णन करते हैं।

सोमनियम के मुद्रित होने के ४ वर्ष पश्चात् १६३८ में एक अंग्रेज पादरी फ्रांसिस गाडविन की गल्प 'चाँद में मनुष्य' (Man in the Moon) मुद्रित हुई। इसमें उड़ान के लिए प्रशिक्षित गीज (गैन्सास) का प्रयोग किया गया है, जो चाँद पर रहती हैं और पृथ्वी को प्रवास करती हैं। पुस्तक का नायक डोमिन्गो गोन्सेल्स है। २५ गैन्सास एक यन्त्राधार (Ring) से बाँध दी जाती हैं ताकि डोमिन्गो उनके साथ, जब वे चाँद को वापिस प्रवास करें, चाँद पर पहुँच सके। चाँद को जाते हुए डोमिन्गो सापेक्ष भारहीनता (Relative weightlessness) के बारे में वर्णन करता है और कहता है कि "न तो मैं और न इंजन (गीज) बिल्कुल हिले और ऐसा लगा जैसे हम में किसी प्रकार का भार न हो।" गाडविन की कहानी बाद में अनेक वैज्ञानिक गल्पों का आधार बनी।

एक अन्य अंग्रेज पादरी जान विल्किन्स ने भी १६३८ मे 'चाँद में एक नई दुनिया की खोज' (Discovery of a New World in the Moon) नामक पुस्तक लिखी। विल्किन्स मे चाँद तक पहुँचने की चार विधियाँ बताईं—(१) फरिश्तों या प्रेतात्माओं (Spirits) द्वारा, (२) पक्षियों की सहायता से, (३) शरीर से पंख बाँधकर, और (४) उड़नरथ द्वारा। विल्किन्स की शादी इंगलैंड के शासक क्रॉमवेल की बहन से हुई थी। लेकिन इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि विल्किन्स ने क्रॉमवेल को उड़ने की तकनीक विकसित करने की सलाह दी हो जिससे अंग्रेज चाँद पर सर्वप्रथम पहुँच सकते। फिर भी विल्किन्स के इस विश्वास ने कि मनुष्य अन्ततोगत्वा उड़नरथ बना लेगा, रायल सोसायटी को उड़ने वाली मशीन बनाने पर विचार करने की प्रेरणा दी।

१६४६ में साइरेनो डी बुर्जेरिक (Cyrano de Burgerak) ने 'चाँद की यात्रा' (Voyage to Moon) नामक उपन्यास लिखा। इसमें चाँद तक उड़कर पहुँचने के अनेक प्रयास किए गए हैं। सर्वप्रथम साइरेनो अपने शरीर से ओस से भरी हुई बोतलें बाँधता है जिससे जब सूर्य की गर्मी से ओस का वाष्पीकरण हो तो वह चाँद पर पहुँच सके। यह प्रयास असफल रहा और वह केवल कनाडा तक पहुँच सका। एक अन्य प्रयास में साइरेनो एक ऊँची पहाड़ी से शक्तिशाली स्प्रिंग द्वारा एक यान (Craft) छोड़ता है किन्तु उसका यान घाटी में गिर जाता है। जब उसके सिपाही पटाखों (Firecrackers) को यान से अलग करते हैं तब अकस्मात् पटाखों का विस्फोट हो जाता है और साइरेनो यान के साथ बेअख्तयार हवा में उड़ने लगता है। वह ऊपर उठता चला जाता है और इस प्रकार गल्प में साइरेनो पहला आदमी होता है जो रॉकेटप्रघात द्वारा चाँद पर

पहुँचा। अपनी उड़ान के मध्य वह चाँद की आकर्षण शक्ति से चाँद की ओर खिचता है। तत्पश्चात् वह चाँद की सैर करता है और केपलर तथा गॉडविन के चाँद के काल्पनिक वर्णन को और अधिक नमक-मिर्च लगाकर बताता है। केपलर की तरह साइरेनो पृथ्वी पर अति प्राकृतिक साधन द्वारा वापिस आता है। बाद की उड़ानों में वह सूर्य तक भी पहुँचता है। वैज्ञानिक गल्प में साइरेनो की रॉकेट की सहायता से चाँद की उड़ान बेमिसाल है। साइरेनो के समय में आतिशबाजी और हवाई रॉकेट अत्यधिक प्रचलित थे।

२. उड़ान का प्रारम्भ :

एक ओर खगोल विज्ञान और विज्ञान के बढ़ते हुए चरणों ने मनुष्य में पृथ्वी से आगे की दुनियां में रुचि और जागरूकता पैदा की, तो दूसरी ओर विल्किन्स, गॉडविन और साइरेनो के लेखों ने उड़ान के विचारों को बढ़ावा दिया।

१६७० में फ्रेन्सेस्को लेनाटर्जी (Fransasco Lanatarzi) ने हवा से हल्के जहाज का प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव पर विचार-विमर्श करने से गुब्बारा (baloon) का आविष्कार हुआ जो मनुष्य की उड़ान का सर्वप्रथम व्यवहारिक साधन बना। गुब्बारा की सर्वप्रथम सफल उड़ान का प्रदर्शन ५ जून १७८३ में फ्रांस में जोसेफ और एटोने माँटगोल्फिअर ने किया। ३५ फीट व्यास का कपड़े का गुब्बारा जिसमें कागज का अस्तर लगा था, गरम हवा और धुएँ के द्वारा फुलाया गया। यह गुब्बारा ६००० फीट की ऊँचाई तक उड़ा और १० मिनट बाद नीचे उतरा। फ्रेंच अकादमी ने मांटगोल्फिअर भाइयों को अपने सनसनीपूर्ण एवं नाटकीय प्रयोग के प्रदर्शन के लिए पेरिस बुलाया। इस पर ६ सितम्बर १७८३ को लुई और उसके दरबारियों की उपस्थिति में एक सुनहरे रंग का कागज और कपड़े का बना हुआ गुब्बारा छोड़ा गया जिसमें जीवित भेड़ और बत्तख भी थे। यह प्रथम जैत्र भारयोग सुरक्षा के साथ वापिस प्राप्त हुआ। यह कहा जाता है कि भेड़ ने बत्तख को लात मारी थी। फिर भी बत्तख प्रथम अन्तरिक्ष कुत्ते 'लाइका' से अधिक अच्छी रही। लाइका जिसने १९५७ में स्पुतिनिक में अन्तरिक्ष का चक्कर लगाया था, जीवित न रह सका, जबकि बत्तख जीवित रही।

संसार का सर्वप्रथम पुरुष जो हवा में उड़ा, लुई का कोर्ट इतिहासकार पिलेटे डी रोजिअर (Pilatae de Rosier) था। १५ अक्तूबर, १७८३ को माँटगोल्फिअर टाइप गरम हवा के गुब्बारे मे पिलेटे ८५ फीट की ऊँचाई तक उड़ा।।२१ नवम्बर १७८३ को पिलेटे और मार्क्विस एरलेन्डिस चमकदार सुन-

हरे और नीले रंग के गुब्बारे में ३००० फीट की ऊँचाई पर पेरस शहर के ऊपर उड़े। १ दिसम्बर १७८३ को प्रोफ़ेसर चार्ल्स और राबर्ट हाइड्रोजन गैस के गुब्बारे में पृथ्वी से १०,००० फीट की ऊँचाई तक उड़े। इस प्रकार १७८३ तक आदमी उड़ने लगा था और लोगों पर गुब्बारे का भूत सवार हो चुका था।

मनुष्य की सर्वप्रथम बैलून उड़ान के १४ माह पश्चात् जनवरी १७८५ को जीनपियरे ब्लैन्कार्ड और डा० जॉन जेफ्रीज बैलून में डॉवेर से केलेस (Dover to Calais) तक इंगलिश चैनल के आर-पार उड़े। यह प्रथम सफल अन्तर्राष्ट्रीय उड़ान थी। इससे पूरे योरुप में बैलून की धूम मच गई। १८वीं शताब्दी के अन्त तक सैंकड़ों बैलून उड़ाने हो चुकी थीं।

हवा से उड़ने वाले बैलून की उपयोगिता धरती का दृश्य देखने और साहसिक रोमांच तक ही सीमित थी। १८७४ में गैस्टन टिसेन्डियर और अनेक वैज्ञानिक ऊपरी वायुमण्डल के अध्ययन के लिए २६००० फीट की ऊँचाई तक पहुँचे। बैलून से हवाई निरीक्षण का सैनिक महत्व भी था। १७९४ तक फ्रांस की सेना ने बैलून निरीक्षण स्क्वाड्रन संगठित कर लिया। बैलूनों का प्रयोग अनेक लड़ाइयों में हुआ, जैसे अमरीकी गृहयुद्ध, फ्रेंको प्रूशन युद्ध (१८७०-७१) और प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुद्ध। १८७१ में पेरिस के घेराव (Seize of Paris) के दौरान बैलून द्वारा पहली हवाई डाक भेजी गई। बैलून की लोकप्रियता समय के साथ-साथ बढ़ती चली गई और शीघ्र ही पूरे योरुप में बैलून एक सर्वप्रिय क्रीड़ायन्त्र बन गया और लगभग एक शताब्दी तक हवा के साथ क्षेत्रपार (Cross Country) बैलून दौड़ों की एक धुन-सी चलती रही।

१९वीं शताब्दी के अन्त तक बैलून अन्तर्दहन इंजन (Internal Combustion Engine) द्वारा चलाये जाने लगे। पार्श्विक स्थिरता (Lateral Stability) के लिए वह सिगार की तरह लम्बे बनाए गए। १९०१ में ब्राजील निवासी सेन्टोस ड्यूमांट ने पेरिस में ऐफिल टॉवर के चारों ओर अपने वायुपोत में चक्कर लगाकर पेरिसवालों का दिल मोह लिया। १९०० में जर्मनी के काउन्ट वान जेप्लिन ने अनम्य ढाँचे वाले वायुपोत (rigid frame deregeble) उड़ाना आरम्भ किया जिसमें यात्रियों के लिए बन्द केबिन थे। इस तकनीक से बड़े आकार के जैपेलीन (Zeppelin) बनाए जाने लगे और इनमें से एक ने (ग्रेफ जैपेलीन ने) १९२७ में संसार का चक्कर लगाया। लेकिन १९३७ में वानहिंडेनबर्ग नामक जैपेलीन लेकहर्स्ट (Lakehurst) पर टकरा कर आग की लपटों को समर्पित हो गया और इसके साथ डिरिजिबल के दिन भी समाप्त हो गए।

२०वीं शताब्दी में भी बैलूनउड़ान के बहुमूल्य उपकरण बने रहे। वे वायुमण्डल में वायुयान की अपेक्षा अधिक ऊँचाई तक पहुँचे। १९२७ में अमरीकी कप्तान एच०ए० ग्रे बैलून द्वारा समताप मण्डल (Statosphere) में पहुँचे, जबकि बेल्जियन आगस्टे पिक्कार्ड १९३२ में बैलून द्वारा ५३,१५२ फीट ऊँचाई तक उड़े। हीलियम गैस द्वारा फुलाए गए बेलून एक्सप्लोरर-II में सेना के कप्तान ओ०ए० एन्डरसन और ए० डब्ल्यू० स्टीवेन्सन १९३५ में ७२,३९५ फीट की ऊँचाई तक उड़े। ऊँची उड़ानों का यह एक ऐसा रिकार्ड था जो ४० वर्ष तक कायम रहा। द्वितीय महायुद्ध के बाद हल्के और मजबूत प्लास्टिक के बैलूनों का विकास हुआ। यह मनुष्य को १०,००० फीट से अधिक की ऊँचाई तक ले जा सकते थे। अन्तरिक्ष युग में भी यह एक उपयोगी प्राप्ति बनी रही।

३. अन्तरिक्ष को वैमानीय मार्ग :

जबकि बैलून और डिरिजिबल से मनुष्य की उड़ने की साध पूरी हुई, उसका तेज रफ्तार और सपक्ष उड़ने का स्वप्न फिर भी स्वप्न ही बना रहा। अपने इस स्वप्न को साकार करने के लिए वह निरन्तर प्रयत्न करता रहा और २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में उसने बैलून से अधिक तेज रफ्तार वाला और कम खर्चीला हवाई रथ (Aerial chariot) वायुयान (Aeroplane) बनाया। १७ दिसम्बर, १९०३ विमान के इतिहास में एक महत्वपूर्ण दिन था। इस दिन डेटन के राइट बन्धुओं ने किट्टी हाक नार्थ केरोलिना में अपने वाइप्लेन में सफल उड़ान भरी। यह यन्त्रशक्तियुक्त वायुयान (powered aeroplane) में मानव द्वारा नियन्त्रित प्रथम उड़ान थी। मनुष्य के विकास पर विमानन का प्रचुर प्रभाव पड़ा। बड़े देशों का यह महत्वपूर्ण सैनिक हथियार बना। २०वीं शताब्दी के दो महायुद्धों के मध्य वैमानिकी (Aeronautics) में तेजी से प्रगति हुई। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जहाँ अनेक अन्य लोग वायुयान बनाने में असफल रहे, वहाँ राइट बन्धुओं को आश्चर्यजनक सफलता मिली। राइट बन्धुओं की सफलता का कारण उनका कठिन परिश्रम, लगाव, अभियान्त्रिकी का ज्ञान और इस क्षेत्र में हुए पिछले काम का गहन अध्ययन था। इस संदर्भ में यहाँ १५वीं शताब्दी के महान् कलाकार, वैज्ञानिक और इंजीनियर लेनार्ड दी विन्सी का नाम उल्लेखनीय है। उनके महत्वपूर्ण कार्य जो उनकी नोटबुक में दर्ज थे, लगभग ३०० वर्षों तक संसार के सामने नहीं आए। इनमें घूर्णक पंख (rotary wing), पैराशूट, नोदक (Propeller) के चित्र और उन पर टिप्पणी थी। राइट बन्धुओं से पूर्व जिन अनेक लोगों के नाम विमानन (Aviation) के इतिहास में आते हैं, उनमें सर्वप्रथम सर जार्ज केली हैं जिन्हें ब्रिटिश एविएशन का पिता माना जाता है। इन्होंने १८०४ में स्थिर पंख वाले ग्लाइडर (fixed wing glider), अन्तर्दहन इंजन (internal combuston engine), पेंचदार नोदक (screw pro-

pellers) और घूर्णक पंख के एक के बाद एक, अनेकों डिजाइन बनाये और परीक्षण आरम्भ किए। १८४३ तक केली के १ नोदक और ४ नोदक पंख वाले हवाई रथ में वायुयान और हेलीकाप्टर दोनों के लक्षण सम्मिलित थे। १८४७ में स्ट्रिंगफेलो ने भापचालित २० फीट के सपक्ष क्राफ्ट (winged craft) को सफलता से उड़ाया। १८६६ में ग्रेट ब्रिटेन की वैमानिकी सोसायटी (Aeronautics Society) बनी और इसी समय फ्रांस में पैनूड (Peneud) ने, एलजीरिया में मोइलियार्ड ने और इंगलैंड में एल्डर तथा मैक्जिम ने यह अनुभव किया कि सपक्ष उड़ान की समस्या का हल निकलना निश्चित है। १९वीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका में आक्टेव चन्यूटे और जॉन मांटगोमरी ने, तथा जर्मनी में आटोलीलियेन्थाल ने ग्लाइडर (सर्पण) उड़ान आरम्भ की।

स्मिथसोनियन संस्थान के सचिव और विख्यात वैज्ञानिक सेम्युएल पी० लेंगले ने विमानविज्ञान के विकास के लिए अपनी सूझबूझ, और राइट तथा अन्य लोगों के लिए शोधकार्य में आर्थिक सहायता प्रदान की। १८९६ में लेंग्ले ने भाप से चलने वाला एयरोड्राम का मॉडल बनाया जो आधे मील से अधिक दूरी तक उड़ा। इस महान प्रदर्शन से प्रभावित होकर यूनाइटेड स्टेट्स के आर्डनेन्स तथा फर्टिफिकेशन के आर्मी बोर्ड ने लेंग्ले को मनुष्य ले जा सकने वाले एयरड्रोम के विकास के लिए ५०,००० डालर का अनुदान दिया। किन्तु ८ दिसम्बर १९०३ को, राइट भाइयों की सफल उड़ान के ९ दिन पूर्व, लेंग्ले का एयरोड्रोम जिसे चार्ल्स मेनली चला रहे थे, एनाकोस्टिआ के निकट पोलोमक नदी में जा गिरा।

अप्रैल १९०८ में आर्विले राइट फ्लायर का प्रदर्शन अमरीकी सैनिक निरीक्षकों के सामने हुआ जिससे प्रभावित होकर १९०९ में यूनाइटेड स्टेट्स ने संसार में वायुयान रखने की पहल की।

संसार का पहला मनुष्य जो योरुप की धरती से ऊपर उड़ा, सेन्टास ड्यूमांट था। इस घटना से प्रभावित होकर ब्रिटिश संवाददाता लार्ड नार्थ क्लिफ ने कहा था 'समाचार यह नहीं है कि मनुष्य उड़ निकला है, बल्कि यह है कि इंगलैंड अब द्वीप नहीं रहा।' १९०९ में फ्रांस के लुई ब्लेरियार ने फ्रांस से इंगलैंड तक इंगलिश चैनल के पार उड़कर इस बयान की संपुष्टि की। अब हवाई जहाज का युग भली-भाँति आरम्भ हो चुका था।

१९०८ तक योरुप का प्रत्येक बड़ा राष्ट्र राइट के एयरोप्लेन की श्रेष्ठता देख और मान चुका था। फलस्वरूप हर देश ने वैमानिकीय विज्ञान के अध्ययन की उन्नति के लिए सरकारी प्रयोगशालायें स्थापित कर लीं। इस समय योरुप

में अन्तर्राष्ट्रीय तनाव के कारण हथियारों के लिए दौड़ आरम्भ हो चुकी थी। यह समझा जाने लगा था कि यदि युद्ध छिड़ा तो अधिक अच्छे वायुयान जल और थल पर शत्रु का निरीक्षण करने के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे। किन्तु आश्चर्य की बात है कि विमानन को आगे बढ़ाने की इस दौड़ में राइट भाइयों का देश अमरीका पिछड़ गया।

१९१४ के महायुद्ध में विभिन्न देशों के पास वायुयानों की संख्या निम्न प्रकार थी—

फ्रांस	—	१४०० सैनिक एयरक्राफ्ट
जर्मनी	—	१००० एयरोप्लेन तथा १ हवा से डिरिजिबल एयरफ्लीट
रूस	—	८०० एयरोप्लेन
इंगलैंड	—	४०० एयरोप्लेन
यूनाइटेट स्टेट्स		२३ सैनिक एयरोप्लेन

अमरीका में १९१५ में कांग्रेस ने उड़ान की समस्याओं का वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए नेशनल एडवाइजरी कमेटी फॉर एयरोनॉटिक्स की (National Advisory Committee for Aeronautics) स्थापना की गई।

१९१४ के महायुद्ध के मध्य विमानन (Aviation) के क्षेत्र में तेजी से उन्नति हुई। घूर्णक नोदक (Rotating Propeller) में से होकर मशीनगन द्वारा गोली चलाने का आविष्कार हुआ। इस आविष्कार ने एयरोप्लेन को हवाई लड़ाई के योग्य बना दिया। १९१४ में वायुयान के उड़ने की गति का रिकार्ड १२६ मील प्रति घंटा था और वह २०,००० फीट की ऊँचाई तक उड़ सकता था। १९१८ में जब युद्ध समाप्त हुआ तब वायुयान की गति १७१ मील प्रति घंटा थी और वह ३०,००० फीट की ऊँचाई तक उड़ सकता था। १९१९ में इंगलैंड में रायल एयर फोर्स की स्थापना हुई। इटली में गियूलो डूहेट (Giulo Duhet) ने 'कमांड ऑव दी एयर' नामक पुस्तक लिखी जिसमें यह बताया गया कि भविष्य के युद्ध हवा में जीते जायेंगे। १९१९ में हवाई डाक और सवारी यातायात आरम्भ हुआ। २०-२१ मई १९२७ को चार्ल्स ए० लिंडबर्ग अपने मोनोप्लेन 'स्पिरिट ऑव सेन्ट लुई' में अकेले अटलांटिक महासागर के आर-पार उड़े।

द्वितीय महायुद्ध के मध्य (१९३९-१९४५) भी उड़ान की तकनीक में

तेजी से प्रगति हुई। हिटलर के जर्मनी ने जेटचालित (Jet-propelled) तथा राकेट से विसेदित (Rocket-thrusted) वायुयान बनाये। उसने तरल ईंधन वाले प्राक्षेपिक बैलिस्टिक राकेट भी बनाए। सब जानते हैं कि किस प्रकार जर्मनी ने अपनी हवाई ताकत के बल पर फ्रांस, इंगलैंड, स्कैन्डीनेविया, पौलेण्ड आदि देशों को रौंद डाला था। और इसी प्रकार ६ अगस्त १९४५ को जब जापान ने अमेरिका के सामने बिना आक्रमण के हथियार डाले थे तो यह केवल हवाई ताकत के कारण ही सम्भव हुआ था। हिरोशिमा और नागासाकी पर अमरीकी विमान बी-२९ ने एटम बम गिराकर जापान की कमर तोड़ दी थी। प्रत्यक्ष है कि वायुयान ने युद्ध के साधनों में इन्कलाब ला दिया।

अब हवाई जहाज ६०० मील प्रति घंटा की गति से उड़ने लगे थे और ५०,००० फीट की ऊँचाई तक पहुँच निकले थे। रायल एयरफोर्स के फ्रेंक व्हिटल ने एयरक्राफ्ट को जेट प्रणोदन से उड़ाने के लिए प्रयत्न आरम्भ किए। जर्मनी के पास भी राकेटचालित लड़ाकू थे।

१९५० में कोरिया के युद्ध में यूनाइटेड स्टेट्स (एफ-८६) और सोवियत (मिग-१५) जेट लड़ाकू वायुयान आपस में भिड़े। १९५४ में यू०एस० एयरफोर्स के हथियारों में हाइड्रोजन बम्ब भी सम्मिलित हो गया। यह एटम बम्ब से हजार गुना शक्तिशाली था। इस सबसे कूटनीतिज्ञता में भी इन्कलाव आया। एक ही स्थान से विश्व के कोने-कोने तक बम्ब गिराने वाले विश्वव्यापी बॉम्बर फोर्स (global-legged bomber force) से आक्रमण करने वालों को डर पैदा हो गया।

४. अन्तरिक्ष के कगार पर :

उड़ान के इतिहास में वैमानिकी के नाटकीय एवं महत्वपूर्ण अध्याय ने अन्तरिक्ष उड़ान की ओर महत्वपूर्ण वैज्ञानिक एवं तकनीकी कदम बढ़ाने में प्रशंसनीय योगदान दिया। विज्ञान के इस क्षेत्र में तेजी प्रगति से हुई। वायुयान के लिये राकेट इंजन का विकास संभव हुआ। १९२९ में फ्रिटज वान ओपेल अपने राकेट-चालित ग्लाइडर में सफलता के साथ उड़े। १९४४ में यू० एस० राकेट एयरप्लेन प्रोग्राम आरम्भ हुआ। १४ अक्टूबर, १९४७ को चार्ल्स ई० ईगर (Charles Eyeager) ने बेल X-I नामक वायुयान में पहली पराध्वनिक (ultrasonic) उड़ान भरी। बेल X-I में ६,००० पौण्ड नोद का राकेट इंजन लगा था।

इस प्रकार राकेट रिसर्च एयरप्लेन प्रोग्राम का सफलता के साथ प्रारम्भ

हुआ और जब तक अन्तरिक्ष युग नहीं आया इस प्रोग्राम ने मनुष्य को लेकर उड़ने में रफ्तार और ऊंचाई (altitude) के समस्त रिकार्ड तोड़े। नवम्बर १९५३ में ए० स्काट क्रासफील्ड यू० एस० एन० ए० डुगलम डो ५५८-I नामक प्लेन में ध्वनि से दुगनी गति से उड़े। राकेट दहन के लिये आक्सीजन की आवश्यकता नहीं होती इसलिये राकेट इंजन की सहायता से मनुष्य वायुमण्डल में इतना ऊँचा उड़ सकता था जितना कि उसका राकेट एयरप्लेन का नोद (thrust) उसको ले जा सके।

जैसे-जैसे मनुष्य अधिक ऊँचाई तक और अधिक गति से वायुयान में उड़ने लगा, नई समस्यायें सामने आने लगीं। यह बात सामने आई कि पृथ्वी से २०,००० फीट के ऊपर के विरलित वायुमण्डल में मनुष्य को लगातार उड़ने के लिये आक्सीजन की आवश्यकता पड़ती है और ६३,००० फीट से ऊपर यदि वह सूट या केबिन वातावरण से दबानुकूलित न रहे तो उसका खून उबलने लगेगा। भारहीनता या गुरुत्वाकर्षणहीनता के प्रभाव का अध्ययन १९५० में आरम्भ हुआ।

५. राकेट-तकनीक का विकास—

समस्त अन्तरिक्ष उड़ान का आधार राकेट प्रणोदन (rocket propulsion) है। मनुष्य द्वारा बनाया गया चालन (locomotion) का कोई भी अन्य साधन किसी वस्तु को इतना प्रघात (thrust) नहीं दे सकता कि वह इतनी अधिक गति पकड़ सके कि पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति को निष्प्रभावित कर दे। अन्तरिक्ष के प्रायःशून्य में एक बार पहुँच कर राकेट के उच्च ऊर्जा वाले रसायन जलने से उत्पन्न प्रघात वायुमण्डल के आक्सीजन के बिना भी कार्य करती रह सकती है। मोटरों, एयरप्लेन और जेट एयरक्राफ्ट में लगे हुए दहन इंजन (combuston engine) आक्सीजन वाले वायुमण्डल के ऊपर अन्तरिक्ष में काम नहीं कर सकते। मनुष्य की अन्तरिक्ष में यात्रा राकेट तकनीक के आधुनिक रूप से ही संभव हुई है।

राकेटविज्ञान का आधारभूत सिद्धान्त अभिक्रियाशील प्रणोदन (reactive propulsion) है जो प्रकृति में पाया जाता है। मालस्क फेमिली का स्क्विड जल को बार-बार अपने अन्दर खींच कर तथा बाहर फेंक कर थोड़ी दूर बहुत फुर्ती से चल सकता है। ३५० ई० पू० के आसपास आर्कटाइटस नामक मनुष्य ने लकड़ी की कपोत बनाई और यह कहा जाता है कि यह भाप अभिक्रियाशील साधन (steam reaction device) से चलायी जाती थी।

रासायनिक राकेट का उद्भव (origin) गन पाउडर के इतिहास में है। १०४० ए० डी० के चीनी प्रकाशन में काले पाउडर के राकेट का, जिन्हें अग्निबाण (fire arrows) कहते हैं, उल्लेख है। यह बाण जिनके साथ काले पाउडर के सिलिंडर संलग्न थे, कमान से छोड़े जाते थे। चीनियों के अग्निबाण (fire arrows) का प्रयोग जिन्हें प्रथम व्यवहारिक राकेट के रूप में मान्यता मिल चुकी थी, शीघ्र ही सम्पूर्ण एशिया में फैल गया और टारटर या मंगोल आक्रमण से मध्य पूर्वी योरोप में जा पहुँचा। चीनियों का काला पाउडर प्रणोदी (propellant), साल्टपीटर (KNO_3) चारकोल और गंधक से मिलाकर बनाया गया था। सब जानते हैं कि यह अत्यन्त विस्फोटक मिश्रण है।

योरोप में राकेट का प्रथम बार प्रयोग १२४१ में लीजनिट्ज़ (Liegnitz) की लड़ाई में हुआ। मूर लोगों (Moors) ने भी स्पेनिश पठार में १२४९ में राकेट प्रयोग किये। १३वीं और १४वीं शताब्दी में काले पाउडर वाले अग्नि शस्त्र के रसायन का गहन अध्ययन किया गया। १३ वीं शताब्दी के मध्य तक योरोप में तोपखाने के लिये गननली का विकास हो चुका था। इस समय राकेट का डिज़ाइन अत्यधिक साधारण था। यह केवल बारूद से भरा कागज़ का सिलिंडर था जिसे दिशा और स्थिरता देने के लिये एक छड़ी से बांध दिया गया था। इसका मुख्य लाभ अपने निशाने को आग लगाना था।

इस समय की एक अत्यन्त प्रचलित आधुनिक कथा वान हू (Wan Hu) की है। उन्होंने ४३ पाउडर राकेट अपनी कुर्सी से बांधे और अपने ४३ नौकरों को यह आदेश दिया कि उनके संकेत पर वह राकेटों में आग लगा दें। वान हू कुर्सी पर बैठे, और उनके संकेत पर नौकरों ने ४३ राकेटों को आग लगा दी। एक अत्यन्त जोरदार धमाका हुआ और उसके बाद वान हू कहीं दिखाई नहीं पड़े।

१४०० के आसपास एक सैनिक इंजीनियर जोन्स डी० फान्टाना ने सैनिक राकेटों की नाना प्रकार की डिजाइनें बनाई। १५९१ में न्यूरेम्बर्ग के जान शिमलाप ने राकेटों के उत्पादन तथा उनके शान्तिमय प्रयोगों पर एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक ने राकेट विज्ञान में लोगों की रुचि को बढ़ावा दिया। अग्नि शस्त्र (fire arms) और तोपखाना के विकास के साथ आतिशबाजी का भी चलन चल पड़ा। इतिहास की दृष्टि से आरम्भिक राकेटविज्ञान पर अत्यन्त रोचक प्रकाशन पोलेण्ड के तोपखाना विशेषज्ञ कॉसमीरज़ सीमेनोविक्ज़ (Kosmierz Siemienowicz) की "आर्टिस मग्ने आर्टीलरीअस" (Artis Magne Artillerias) नामक पुस्तक थी जो १६५० में प्रकाशित हुई। इसमें बने हुए विभिन्न प्रकार के राकेटों के रेखाचित्र आज भी प्रयोग में आते हैं।

सीमेनोविक्ज के प्रकाशन के २८ वर्ष पश्चात् न्यूटन ने अपने गति के तीसरे सिद्धान्त में राकेट प्रणोदन के सिद्धान्त की वैज्ञानिक व्याख्या की। उन्होंने बताया कि प्रत्येक क्रिया की उसकी उल्टी व बराबर प्रतिक्रिया होती है। उनके अनुसार पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति अन्तरिक्ष में प्रक्षेप्य (projectile) की गति से निष्प्रभावित हो सकती है। यदि एक तोप के गोले को पर्याप्त गति से ऊपर को छोड़ा जावे तो वह चांद की भाँति पृथ्वी के चारों ओर कक्षा में लाया जा सकता है। वायुमण्डल से परे उड़ने के लिये राकेट प्रणोदन के महत्व को तब तक नहीं समझा गया जब तक कि यह पता नहीं चला कि पृथ्वी के धरातल के ऊपर वायुमण्डल की केवल एक पतली परत है।

१८ वीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में मैसूर के राजा हैदरअली ने एक मील से अधिक की दूरी तक मार करने वाले राकेट बनाये। इनमें धातु के ट्यूब में पाउडर भरा जाता था। हैदर के पुत्र टीपू साहब ने अपने राकेट रेजीमेंट में तोपचियों की संख्या १२०० से बढ़ाकर ५००० कर दी। इंगलैंड और अमरीका ने भी इससे प्रभावित होकर अपनी सेना के लिये राकेटों की संख्या बढ़ाई।

राकेटों के अन्य उपयोग भी थे। जीवन की रक्षा करने में राकेट का सर्वप्रथम उपयोग १८०७ में योरोप में प्रदर्शित हुआ।

वैज्ञानिक गल्प की धूम—

जबकि १८५० में राकेट विज्ञान और सैनिक आयुध-सम्भार (military ordnance) के इतिहास अलग-अलग हो गये, वैज्ञानिक गल्प अन्तरिक्ष उड़ान के विकास को प्रेरणा देती रहीं।

ज्यूलिस वर्ने (Julieus Verne) की दो महान पुस्तकों "धरती से चांद को (१८६५)" और "चांद के चारों ओर, चांद का चक्कर (१८७०)," ने अन्तरिक्ष उड़ान के विचार को बहुत प्रभावित किया। वर्ने की उर्वरक कल्पना, तकनीकी वास्तविकता और साहित्यिक प्रतिभा ने अनेक लोगों में यह विश्वास पैदा कर दिया किया कि अन्तरिक्ष उड़ान एक वास्तविकता बन सकती है। पुस्तक में एक काल्पनिक "गन क्लब" है जिसके नायक प्रेजीडेन्ट बार्बिकेन हैं जो गन क्लब के सदस्यों को सम्बोधित करते हैं। वे कहते हैं कि 'यदि चांद की ओर १२,००० गज़ प्रति सेकेण्ड की गति से कोई प्रक्षेप्य (projectile) छोड़ा जायें तो वह चांद पर अवश्य पहुँचेगा। मेरे बहादुर साथियों! मैं चाहता हूँ कि आप इस तुच्छ प्रयोग को आजमायें।" इस पर अमल करते हुए गन क्लब के

सदस्यों का मुख्य उद्देश्य एक ६०० फीट लम्बी भूमिगत तोप बनाना था जिससे टैम्पा टाउन फ्लोरिडा से १० टन भार का अल्यूमीनियम का बुलेट चाँद को छोड़ा जा सके। यह कैसा संयोग है कि चाँद को बुलेट छोड़ने का यह काल्पनिक स्थान आज के केप कैनेडी के latitude पर ही था जहाँ से आज अन्तरिक्ष के लिए यान छोड़े जाते हैं। गन क्लब की कार्यकारिणी का लक्ष्य बुलेट को चाँद पर पहुँचा देना था। परन्तु इसी समय एक फ्रांसीसी माइकेल आर्डन ने उनके इस काम को रोका और उनको एक खोखला प्रक्षेप्य (projectile) बनाने के लिए तैयार किया जिसमें मनुष्यों के बैठने के लिए कक्ष (cabin) हो ताकि वह चाँद पर पहुँच सकें। इस प्रकार गन क्लब का प्रक्षेप्य यान (projectile vehicle) एक खोखले बुलेट अन्तरिक्ष यान में परिवर्तित हो गया जिसे चाँद पर ३ आदमी और २ कुत्ते ले जाना था। इस अन्तरिक्षयान का नाम 'कोलम्बियाड' रखा गया। तोप के दागने से उत्पन्न धक्कों से तीनों मनुष्यों को सुरक्षित रखने के लिए यान में जलदाबड़ा (water buffers) और गद्देदार कोचों का प्रयोग किया गया था। ८ दिन की यात्रा सुरक्षा से पूर्ण हो सके, इसके लिए रासायनिक साधनों द्वारा आक्सीजन उत्पन्न करने का प्रबन्ध था। तीनों मनुष्यों ने अन्तरिक्ष के मध्य मतवाला कर देने वाली भारहीनता अनुभव की। कोलम्बियाड चाँद तक नहीं पहुँचा। इसको चाँद के गुरुत्वाकर्षण ने आकर्षित किया जिससे इसने चन्द्र-वर्ती (circum lunar) उड़ान की और फिर वह समुद्र के पानी में सुरक्षा के साथ उतर गया। वर्न के इस उपन्यास ने अनेक रॉकेट वैज्ञानिकों को प्रभावित किया। इस समय के अन्य उपन्यासों ने भी वैज्ञानिक विचारों को प्रभावित किया। एडवर्ड एवरेट हैले (E.A. Hale) की 'दि ब्रिक मून' (१८६९-७०) में २०० फीट व्यास का ब्रिक उपग्रह (सेटेलाइट) अन्तर्साधन द्वारा छोड़ा गया था और २ वर्ष तक कक्षा में रहा। इस उपग्रह में ३७ मनुष्यों के बैठने का स्थान था। अन्तरिक्ष उड़ान के विचार को बढ़ावा देने वाली एक अन्य पुस्तक एच० जी० वेल्स की 'दि वार ऑव वर्ल्डस (१८९७)' थी। इसमें मंगल ग्रह के लोगों द्वारा पृथ्वी पर आक्रमण का विवरण था।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, वैज्ञानिक गल्पों ने अन्तरिक्ष उड़ान के विचार में जान डाले रखी। इसके साथ ही अन्तरिक्ष उड़ान की तकनीक में भी प्रगति हुई। रूस के कान्सटेन्टिन इ० सिआल्कोव्सकी, अमेरिका के राबर्ट एच० गाडर्ड, जर्मनी के हरमन ओवर्थ और फ्रांस के राबर्ट एस्नाल्ट पेल्टरी, अन्तरिक्ष विज्ञान (aeronautics) के आरम्भिक विकास करने वाले मुख्य व्यक्तियों में से थे।

गाडर्ड (१८८२-१९४५) अन्तरिक्ष उड़ान की ओर वर्न के उपन्यास पढ़ कर आकर्षित हुए थे। प्रथम महायुद्ध के मध्य उन्होंने ठोस ईंधन रॉकेट (solid

fuel rocket) नाइट्रोग्लिसरीन और गनकाटन, बनाये। १९२६ में उन्होंने संसार के इतिहास में पहली बार तरल ईंधन (liquid fuel) से रॉकेट उड़ाया। उनका रॉकेट २.५ सेकेण्ड में १८४ फीट उड़ा। उनकी सर्वोत्तम रॉकेट उड़ान ९००० फीट तक पहुँची। गाडर्ड के रॉकेट तथा अन्तरिक्ष उड़ान के कार्य ने अनेक अमेरिकी रॉकेट वैज्ञानिकों को प्रोत्साहित किया।

गाडर्ड और सियालकाव्सकी से भी अधिक श्रेय ओवर्थ को है जिन्होंने योरुप में आधुनिक रॉकेट विज्ञान को आरम्भ किया। १९२३ में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'दि रॉकेट इनटू इन्टरप्लेनेटरी स्पेस' में ओवर्थ ने बताया कि ऐसे अन्तरिक्ष यान बनाये जा सकते हैं जो पृथ्वी के वायुमण्डल के घेरे के परे जा पहुँचें और उनमें मनुष्य भी जा सकें। इस समय तक अनेक राष्ट्रीय रॉकेट सोसायटी बनीं। १९३३ में ब्रिटिश इन्टरप्लेनेटरी सोसायटी के सदस्य जर्मन स्पेस सोसायटी से परामर्श के लिए बर्लिन गए, किन्तु उन्हें निराशा हुई। यह सोसायटी बन्द हो चुकी थी क्योंकि रॉकेट विज्ञान का अध्ययन जर्मनी की सेना ने अपने हाथ में ले लिया था। १९४५ तक जर्मनी रॉकेट विज्ञान में संसार से १० वर्ष आगे बढ़ चुका था। उसने ५६००० पौण्ड के प्रघात (thrust) वाला और २०० मील की मार वाला पराध्वनिक गति का V-2 प्राक्षेपिक रॉकेट बना लिया जो वायुमण्डल के ऊपर अन्तरिक्ष में जा सकता था। यह पृथ्वी के वायुमण्डल के परे तक जाने वाला पहला यानसाधन था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्न, हेले और वेल्स की कल्पनाओं और सिआलकोव्सकी, गाडर्ड एवं ओवर्थ के गम्भीर विचारों (१८६५-१९४५) ने अन्तरिक्ष उड़ान की तकनीक को तेजी से आगे बढ़ाया। द्वितीय महायुद्ध की दो मुख्य तकनीकी प्राप्तियाँ एटम बम और तरल ईंधन प्राक्षेपिक रॉकेट ने अन्तरिक्ष उड़ान को वास्तविकता में परिणित कर दिया। इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध के १२ वर्ष पश्चात् अन्तरिक्ष युग का श्रीगणेण हुआ।

६. अन्तरिक्ष युग का श्रीगणेश :

४ अक्टूबर १९५७ को सोवियत यूनियन ने मनुष्य द्वारा बनाया गया प्रथम भू-उपग्रह (Earth Satellite) स्पुतनिक-I छोड़ा। स्पुतनिक के अर्थ सहयात्री होते हैं। इसका भार १८४ पौण्ड था और इसमें रासायनिक बैटरियाँ (chemical batteries) तथा दो रेडियोप्रेषित्र (radio transmitter) थे जिनसे पृथ्वी को ताप, कॉस्मिक किरणें (cosmic rays) और माइक्रोमेटेरायड्स (micro meteroids) पर आँकड़े भेजे जाते थे। यह अप्राकृतिक चाँद

सैनिक मिसाइल के रूप में विकसित किए गए रॉकेट से छोड़ा गया था। इसकी कक्षा (orbit) पृथ्वी से ५५८ मील ऊपर थी और यह १७,५०० मील प्रति घंटा की गति से यात्रा करता था।

एक मास पश्चात्, २ नवम्बर १९५७ को सोवियत यूनियन ने ११२० पौण्ड भार का स्पुतनिक II पृथ्वी की कक्षा में छोड़ा। इसमें 'लाइका' नाम का कुत्ता भेजा गया था। संसार के इतिहास में यह पहला जीवित यात्री था जो अन्तरिक्ष में उड़ाया गया। इस घटना से संसार में हलचल मच गई। अब यह आशा कि मनुष्य शीघ्र ही रॉकेट विज्ञान की सहायता से स्वयं भी अन्तरिक्ष में पहुँच सकेगा, बल पकड़ने लगी। स्पुतनिक के अन्तरिक्ष में पहुँचने से यह प्रमाणित हो गया कि रूसी लोग रॉकेट विज्ञान में अन्य देशों की अपेक्षा आगे थे। अमेरिका में इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया गया कि पिछड़े हुई रूसी जिन्हें द्वितीय महायुद्ध में जान और माल की काफी क्षति पहुँची थी, कैसे विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में बाजी मार ले गए। इसका उत्तर द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् के रॉकेट तकनीक के इतिहास में मिलता है।

१९४५ के पश्चात् यूनाइटेड स्टेट्स ने राकेट विज्ञान के विकास पर अधिक ध्यान नहीं दिया। इसके विपरीत रूस में स्टालिन ने १९४६ में दूर तक भार करने वाले रॉकेट बनाने के लिए, जो अमरीका तक पहुँच सकें, सर्वाधिक प्राथमिकता दी। उन्होंने यह अनुभव किया कि उनके लिए अन्तर्-एटलांटिक रॉकेट बनाना बहुत महत्त्वपूर्ण था। १९४९ में रूस ने न्यूक्लियर विस्फोट किया। इस घटना से अमरीका चौंक पड़ा। अमरीका को यह आशा कभी नहीं थी कि रूस परमाणु विज्ञान में इतना अधिक बढ़ गया होगा। इस घटना से प्रभावित होकर ट्रूमैन (अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति) ने तुरन्त हाइड्रोजन बम्ब बनाने का आदेश दिया। साथ ही अनेक अन्य कार्यक्रमों में भी तेजी लाई गई। १९५१ में अधिक बड़े तरल ईंधन वाले रॉकेट बनाने का काम चालू हो गया। १९५४ में अन्तर-महाद्वीपीय प्राक्षेपिक मिसाइल बनाने की सिफारिश की गई। १ जनवरी १९५८ को प्रथम अमरीकी उपग्रह एक्सप्लोरर I छोड़ा गया। १७ मार्च १९५८ को NRL वेनगार्ड I छोड़ा गया। इसी वर्ष अमरीका में अन्तरिक्ष नियम (space act) पास हुआ और नेशनल एयरोनॉटिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन (NASA) ने कार्य करना आरम्भ किया। १५ मई १९५८ को रूस ने ७००० पौण्ड का स्पुतनिक III छोड़ा। १९६० तक अमरीका और रूस कुल मिलाकर ३८ भू-उपग्रह (earth satellite) छोड़ चुके थे। इनके द्वारा न केवल अन्तरिक्ष उड़ान की तकनीक में उन्नति हुई बल्कि अपरभौमिक (**extra terresterial**) ज्ञान में भी वृद्धि हुई।

१२ अप्रैल १९६१ को रूस ने वस्टोक I अन्तरिक्ष में छोड़ा जिसमें यूरी गेगरिन को प्रथम अन्तरिक्ष यात्री होने का श्रेय प्राप्त हुआ। गेगरीन ने १०८ मिनट तक पृथ्वी का चक्कर लगाया।

५ मई १९६१ को अमरीका का अन्तरिक्ष यान फ्रीडम-7, एलान बी० शेपार्ड को लेकर ऊपर उठा और १५ मिनट तक अन्तरिक्ष में रहा। इस बीच शेपार्ड ने ५ मिनट के लिए भारहीनता अनुभव की। अन्तरिक्षयात्री एलान शेपार्ड की उड़ान ने मनुष्य की अन्तरिक्ष यात्रा के तीन चरण वाले प्रोग्राम का उद्घाटन किया। यह चरण प्रोजेक्ट मरकरी, जैमिनी और अपोलो थे। मनुष्य के चाँद पर पहुँचने के लिए ये तीनों चरण अत्यावश्यक रहे हैं।

प्रोजेक्ट मरकरी :

प्रोजेक्ट मरकरी ने अमरीका का अन्तरिक्ष के लिए द्वार खोला। एक छोटे से क्राफ्ट द्वारा यह सम्भव हो सका कि अन्तरिक्षयात्री भारहीनता अनुभव कर सकें। ९ फीट ऊँचे मरकरी क्राफ्ट का भार डेढ़ टन था। प्रत्यक्ष है कि अपोलो अन्तरिक्ष यान की अपेक्षा, जो ८४ फीट ऊँचा था तथा जिसका भार ८५ टन था, मरकरी क्राफ्ट बहुत छोटा था। किन्तु इस छोटे-से क्राफ्ट द्वारा महत्वपूर्ण प्राप्तियाँ हुईं। इसने मनुष्य की अन्तरिक्ष में जीवित रह सकने की योग्यता प्रदर्शित की।

नेशनल एयरोनॉटिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन की अक्टूबर १९५८ में स्थापना के एक सप्ताह के अन्दर प्रोजेक्ट मरकरी मनुष्य को चाँद पर उतारने के लक्ष्य की पूर्ति के लिए तीन चरणों में से प्रथम चरण के रूप में अग्रसर हुआ। १९५९ के अप्रैल में अमरीका ने सात अन्तरिक्ष यात्रियों के चयन की घोषणा की। इसके २ वर्ष पश्चात् अन्तरिक्ष यात्री एलान बी० शेपार्ड केप केनेडी से अन्तरिक्ष यान फ्रीडम-7 में पृथ्वी से ऊपर उड़े और १५ मिनट की उपकक्षीय उड़ान (sub-orbital flight) भरी। १९६२ के फरवरी मास में जान ग्लेन ने पृथ्वी के तीन चक्कर लगाये और तत्पश्चात् वे अटलांटिक सागर में उतरे।

मई १९६३ में अन्तिम छठी समनुष्य मरकरी उड़ान पूर्ण हुई। इसके साथ ही अमरीका के प्रोग्राम का अगला चरण प्रोजेक्ट जैमिनी आरम्भ हो गया।

प्रोजेक्ट जैमिनी

अप्रैल १९६४ से नवम्बर १९६६ तक १२ जैमिनी उड़ानों में १६

अन्तरिक्षयात्री १,९४० घण्टे अन्तरिक्ष में रहे, मनुष्य को लेकर उड़ने के २० रिकार्ड स्थापित किये और उन्होंने यह प्रदर्शित किया कि मनुष्य १४ दिन तक भारहीनता के वातावरण में कार्य कर सकता है। उन्होंने अन्तरिक्ष में मनुष्य के चलने, दो यानों के मिलन (rendezvonsing) और दो यानों के जुड़ने (docking) की तकनीक में पूर्णता प्राप्त की। अन्तिम ६ जैमिनी उड़ानों में १० मिलन हुए। प्रोजेक्ट जैमिनी ने अनेक रिकार्ड स्थापित किये। जैमिनी ६ और ७ कक्षा में २० घण्टे २२ मिनट तक साथ रहे और १५ दिसम्बर १९६५ को एक-दूसरे से उनकी दूरी केवल एक फुट रह गयी थी। ३ जून १९६५ को जब अन्तरिक्षयात्री एडवर्ड व्हाइट जैमिनी-४ के मध्य अन्तरिक्ष में चले और कार्य किया तो सारे संसार ने दांतों तले उंगली दबा ली। इस घटना ने इतिहास बना दिया। बाद की यात्रा में ४ अन्य अन्तरिक्षयात्री कुल मिलाकर १२ घण्टे अपने यान से बाहर रहे। जैमिनी प्रोग्राम नवम्बर १९६६ में समाप्त हुआ। इस समय तक मनुष्य अन्तरिक्ष में २,००० घण्टे व्यतीत कर चुका था, जिसमें प्रोजेक्ट मरकरी के ५५ घण्टे सम्मिलित थे। तीसरे और अन्तिम चरण प्रोजेक्ट अपोलो के लिए मंच तैयार था।

प्रोजेक्ट अपोलो :

जुलाई १९६० में अमरीका की एयरोस्पेस इण्डस्ट्री (aerospace industry) के सामने प्रोजेक्ट अपोलो की रूपरेखा रखी गई। इस प्रोजेक्ट का ध्येय ८४ फुट ऊंचा, ४५ टन भार का ३ माड्यूल वाला क्रेफ्ट बनाना था जो ३ अन्तरिक्ष यात्रियों को चांद पर ले जा सके। इस क्रेफ्ट को छोड़ने के लिये सैटर्न V राकेट का विकास किया गया। यह सबसे अधिक शक्तिशाली राकेट था जिससे ७·५ दशलक्ष पौण्ड का प्रणोदन उत्पन्न होता था और जो १४० टन का भारयोग पृथ्वी की कक्षा में भेज सकता था और ४७५ टन भार वाले क्रेफ्ट को पृथ्वो की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के परे अन्तरिक्ष में ठेल सकता था। यह ३६ मंजिल ऊंचा राकेट (३६३ फीट) प्रति सेकेंड लगभग १५ टन ईंधन जलाता था। छोड़ने के समय इस का भार ३००० टन ऊपर था।

बिना मनुष्य को लिए १६ उड़ानें सैटर्न के द्वारा सम्पन्न हुई। इनसे अपोलो के इंजीनियरिंग तकनीक की मान्यताओं की सम्पुष्टि हुई, और मनुष्य को यान में ले जाये जाने के लिए विकसित समस्त प्रणालियाँ परीक्षण की कसौटी पर खरी उतरीं। किन्तु जनवरी १९६७ में परीक्षण के मध्य अपोलो क्रेफ्ट में, जबकि वह छोड़ने के स्थान पर ही था, आग लग गई जिसमें ३ अन्तरिक्षयात्री वाँजेल आई ग्रिसम, एडवर्ड व्हाइट और रोगर चैफी मारे गये। इससे मनुष्य को अन्तरिक्ष में ले जाने के अगले कार्यक्रम में लगभग २ वर्ष की देरी हो गई।

नवम्बर १९६७ में अपोलो-सेटर्न राकेट के जोड़ने का परीक्षण किया गया जो सफल रहा। अक्तूबर १९६८ में ३ अन्तरिक्षयात्री अपोलो-७ में उड़े जिससे यह प्रमाणित हुआ कि अपोलो सज्जा (assembly) अन्तरिक्ष में यात्रा करने के योग्य थी। १९६८ के दिसम्बर में अपोलो-८ ने मनुष्य को लेकर पहली बार चांद की कक्षा में चक्कर लगाया। ३ मास पश्चात् अपोलो-९ ने चार टांग वाले मकड़ी सदृश क्रैफ्ट का, जिसे चांद पर उतरना था, परीक्षण किया और चाँद यात्रा के लिए अमरीका की सम्पूर्ण नीति (strategy) और (hardware) की सक्षमता का प्रदर्शन किया। मई १९६९ में अपोलो-१० ने चांद पर उतरने का लक्ष्य पूरा किया, केवल मनुष्य वास्तव में चाँद पर नहीं उतरा। जुलाई १९६९ में अपोलो-११ ने तीन मनुष्यों को लेकर ऐतिहासिक एवं रोमांचक उड़ान भरी और २० जुलाई को मनुष्य को पृथ्वी से लगभग २४०,००० मील दूर चांद पर उतार दिया। अमरीका के आर्मस्ट्रांग और एल्ड्रिन संसार के वे प्रथम मनुष्य हैं जिन्हें चांद पर पैर रखने का गौरव प्राप्त हुआ। पृथ्वी से वे कालिन्स के साथ अपोलो-११ नामक अन्तरिक्ष यान में उड़े थे।

अपोलो-११ में दो मुख्य खण्ड थे: (१) सेटर्न V राकेट और (२) अन्तरिक्ष यान सज्जा (assembly) जिसमें कमाण्ड माड्यूल (CM), सर्विस माड्यूल (SM) और ल्यूनर माड्यूल (LM) सम्मिलित थे। ३६३ फुट ऊंचा अपोलो सेटर्न जोड़ा (युग्म) मध्य जुलाई १९६९ में फ्लोरिडा में कैप केनेडी के लांचिग पैड से सेटर्न प्रथम चरण द्वारा पृथ्वी से ३८ मील की ऊंचाई तक उड़ा। सेटर्न द्वितीय चरण ने इसको ११८ मील ऊपर उड़ा दिया। यह सब लगभग ८ मिनट में सम्पन्न हुआ। इस समय राकेट के तीसरे चरण में विस्फोट हुआ जिससे अन्तरिक्षयान की गति २५००० मील प्रति घण्टा हो गई और वह पृथ्वी की कक्षा में जा पहुँचा।

जब अन्तरिक्षयात्री अपने लक्ष्य से केवल ५,००० मील दूर रह गये तब उन्होंने सर्विस माड्यूल में स्थित सर्विस नोदन प्रणाली (propulsion system) को चालू किया। इसने चांद की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण बढ़ने वाली गति को रोका और अन्तरिक्षयान को चांद की कक्षा में झोंक दिया।

चांद की कक्षा में पहुँच जाने पर तीन में से दो अन्तरिक्षयात्री कमान्ड माड्यूल में से ल्यूनर माड्यूल में चले गए। जब LM के चालकों ने विभिन्न प्रणालियों का परीक्षण कर लिया, उन्हें सक्रिय (activate) कर दिया तथा इसका उतार-इंजन (descent engine) प्रज्ज्वलित कर दिया तब LM को CM से पृथक कर दिया गया ताकि वह चांद की ओर उड़ सके। चांद पर

उतरने के लिए LM पहले चांद की दीर्घवृत्तीय कक्षा (elliptic orbit) में आया और उसने चाँद से ७० मील दूर से लेकर ५०,००० फीट के अन्दर चक्कर लगाया। तत्पश्चात्, ५०,००० फीट की ऊंचाई पर LM के इंजन का फिर विस्फोट किया गया जिससे माड्यूल को गति कम हुई। अब यह मकड़ी सदृश माड्यूल (LM) लगभग ३ मील प्रति घण्टा की रफ्तार से चांद पर सीधा उतरा। माड्यूल की मकड़ी सदृश टांगे चांद की सतह पर अच्छी तरह जम गईं। चांद से ऊपर उठने के समय उन्हीं टांगों ने लांचिग पैड का काम किया। आर्मस्ट्रांग और एल्ड्रीन माड्यूल से नीचे चांद की सतह पर उतरे और वहाँ लगभग २२ घण्टे रहे। इतने समय में उन्होंने वहाँ की चट्टानों के नमूने लिये, चित्र खींचे और कुछ ऐसे यन्त्र वहां स्थापित किये जो वैज्ञानिक आंकड़े पृथ्वी को भेजते रहें।

जब चांद से चलने का समय आया तब अन्तरिक्षयात्रियों ने LM का चढ़ाव इंजन (ascent engine) प्रज्ज्वलित किया और वे LM में चांद की कक्षा में चक्कर लगाते हुए, आधारपोत (mothership) की ओर अग्रसर हुए। आधारपोत के साथ LM के युक्त हो जाने के पश्चात् अन्तरिक्षयात्री आधार-पोत में चले गये और LM को पृथक् कर दिया तथा वहीं छोड़ दिया।

अब सर्विस माड्यूल के इन्जनों का विस्फोट किया गया जिससे ५४६० मील प्रति घण्टा की गति प्राप्त हुई। इससे अन्तरिक्षयान पृथ्वीपारीय प्रक्षेप पथ में पहुँच गया। पृथ्वी के वातावरण में पहुँचने से कुछ समय पूर्व सर्विस माड्यूल को पृथक कर दिया गया और पीछे छोड़ दिया। पृथ्वी की कक्षा में प्रवेश करते समय यान की गति २५००० मील प्रति घण्टा थी और उसका बाहरी सतह का तापक्रम ५०००^0 फा० था। किन्तु यान के अन्दर का तापक्रम ८०^0 फा० ही रहा। अन्तोगत्वा CM प्रशान्त महासागर में उतरा और अन्तरिक्षयात्री सुरक्षा के साथ चांद की यात्रा पूर्ण करके लौट आये।

इस प्रकार शताब्दियों पुराना मनुष्य का चांद पर पहुँचने का स्वप्न साकार हुआ। वर्न, हैने और वेल्स की वैज्ञानिक गल्पें अब गल्पें नहीं प्रतीत होतीं।

यूकेलिप्टस—कितना लाभप्रद कितना हानिकारक

—डा० अक्षयकुमार इन्द्रायण
रीडर, रसायन विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आजकल यूकेलिप्टस का वृक्ष चर्चा का विषय बना हुआ है। कुछ वर्ष पहले यह बहुत लोकप्रिय हुआ तथा वृक्षारोपण कार्यक्रमों के अन्तर्गत स्थान-स्थान पर इन वृक्षों को लगाने का अभियान शुरु हुआ। यहाँ तक कि लोगों ने अपने निजि प्लॉट पर मकान बनाने तक उसमें यूकेलिप्टस के वृक्ष लगा दिए। इसकी खेती एक अच्छे धन्धे के रूप में मान्यता प्राप्त करने लगी। किन्तु अभी कुछ समय पहले समाचार-पत्रों में छपा कि कुछ विशेषज्ञों की राय है कि यह पेड़ जमीन के लिए हानिकारक है व इसको और लगाना तुरन्त बन्द किया जाए। बड़ी दुविधा में पड़ गयी जनता कि आखिर सही बात है क्या, वह क्या करे? आइए इसी वृक्ष के विषय में थोड़ी गहन चर्चा हो जाए।

यूकेलिप्टस का वृक्ष मूलतः आस्ट्रेलिया, तस्मानिया, न्यू गिनी व उसके पड़ोसी द्वीपों का वृक्ष है। इसे वहाँ 'आस्ट्रेलियन गम' के नाम से जाना जाता है। इसकी लगभग ५०० स्पेशीज ज्ञात हैं तथा इसको १८३ मान्य किस्में हैं जिनमें gums, iron barks, peppermints व blood woods आदि मुख्य हैं। ऐसा समझा जाता है कि भारत में टीपू सुल्तान के समय में सन् १७८२ से १७९८ के मध्य इसको लाया गया तथा बैंगलोर को नन्दी पहाडियों पर इसको लगाया गया था। किन्तु कुछ लोगों का मत है कि भारत में यूकेलिप्टस का प्रथम बीजारोपण नीलगिरी में सन् १८३४ में कैप्टन कॉटन द्वारा किया गया था। इसकी बहुत-सी किस्मों की आजमायश भारत में की जा चुकी है परन्तु यूकेलिप्टस हेरीटिकॉर्निस अर्थात् सफेदा सबसे अधिक प्रचलित है तथा plantation अर्थात् रोपण बढ़ाने के लिए उपयोगी माना जाता है।

यूकेलिप्टस का वृक्ष अपनी शीघ्र वृद्धि के लिए प्रख्यात है तथा संसार के सबसे लम्बे वृक्षों में से एक है। यूकेलिप्टस की कुछ किस्में ३०० फीट की ऊँचाई तक लम्बी चली जाती हैं। रेग्नान्स नामक किस्म की ऊँचाई

३३० फीट तक आम पहुँच जाती है तथा इसका एक वृक्ष तो ३७४ फीट ऊँचा है तथा यह विश्व के सबसे लम्बे वृक्षों में गिना जाता है। यूकेलिप्टस की छोटे आकार वाली किस्में भी होती हैं। त्रिट्राटा नामक किस्म सबसे छोटी किस्मों में से एक है तथा इसकी ऊँचाई केवल ६·५ फीट होती है।

सिचाई की सुविधा न प्राप्त हो सकने वाली जमीन पर भी यूकेलिप्टस का वृक्ष मजे से हो जाता है यदि वहाँ लगभग १५०० मि० मी० की वार्षिक वर्षा होती हो। यूकेलिप्टस वैसे तो बीज लगाने से ही हो जाता है परन्तु भारत में इसको लगाने के लिए प्रायः नर्सरी में बीज से बने पौधों को विभिन्न स्थानों पर लगाया जाता है। कुछ देशों, जैसे आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका व रूस में इसे कटिंग द्वारा भी लगा लिया जाता है। इस वृक्ष की अब ९० से भी अधिक देशों में लगभग ४० लाख हैक्टेयर जमीन पर खेती की जा रही है।

उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब व गुजरात में यह वृक्ष अब खजाना माना जाने लगा है। पाँच वर्ष बढ़े वृक्ष की कीमत इतनी अच्छी मिल जाती है कि खेत में लगायी जाने वाली किसी भी अन्य फसल से यह अधिक कमाई देती है। इसकी लकड़ी टिम्बर व इमारतों में तो काम आती ही है, साथ ही ईंधन के रूप में भी उपयोगी है। इससे बहुत अच्छी किस्म का चारकोल भी प्राप्त होता है। रेलवे स्लीपर्स व प्लाईवुड उद्योग में भी इसका प्रयोग किया जाता है। टिम्बर की लकड़ी के लिए यूकेलिप्टस की धीमे बढ़ने वाली स्पेशीज अच्छी रहती हैं। तेज गति से बढ़ने वाले वृक्षों की लकड़ी टिम्बर के लिए अच्छी नहीं रहती; यह आसानी से टूट जाती है। बोटेओएड्स नामक यूकेलिप्टस की लकड़ी पानी के जहाज बनाने के लिए काम में ली जाने वाली लकड़ियों मे सबसे अच्छी लकड़ी मानी जाती है। इसकी लकडी नाशकजीवरोधी अर्थात् **pest resistant** होती है।

यूकेलिप्टस की शाखाओं व पत्तियों के वाष्पआसवन से विभिन्न प्रकार के उपयोगी तेल प्राप्त होते हैं। उपयोग के आधार पर यूकेलिप्टस तेलों को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :— पहला—औषधियों में काम आने वाले तेल; दूसरा–उद्योगों में काम आने वाले तेल; तथा तीसरा–सुगन्धित तेल।

जहाँ तक औषधियों में काम आने का प्रश्न है, यूकेलिप्टस का तेल कीटाणुनाशक होता है तथा यह ऊपरी श्वसननलिका तथा कुछ चर्म रोगों के संक्रमण की चिकित्सा में उपयोगी है। यूकेलिप्टस तेलों में यूकेलिप्टॉल नामक पदार्थ मुख्य अंश होता है और यह खांसी में बलगम वगैरह को निकालने में

उपयोगी रहता है जिससे श्वसन रोग व तपेदिक के रोगी लाभान्वित होते हैं। यूकेलिप्टस के पेड़ों से प्राप्त एक पदार्थ साइनोल को पशु-चिकित्सा में काम में लिया जाता है। यूकेलिप्टस तेल के साथ लौंग के तेल का बराबर मात्रा में मिश्रण गठिया की चिकित्सा में काम आता है तथा जले पर लगाने के मल्हम में भी यह काम आता है। आस्ट्रेलिया, कॉन्गो, स्पेन व पुर्तगाल आदि देश यूकेलिप्टस तेल के मुख्य वितरक हैं।

यूकेलिप्टस से प्राप्त पाइपेरीटोन को थाइमॉल तथा मेन्थॉल के उत्पादन में काम में लिया जाता है। जेरानिऑल, सिट्रोनेलॉल तथा सिट्रल भी यूकेलिप्टस से प्राप्त होते हैं तथा इन्हें सुगन्धित तेल बनाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

यूकेलिप्टस ग्लोबुलस से एक रेजिन प्राप्त होता है तथा गिगान्टिया नामक किस्म से पर्याप्त मात्रा में गोंद प्राप्त होता है। यूकेलिप्टस की बहुत-सी किस्मों की छाल से प्राप्त पदार्थ चर्म के शोधन में काम आते हैं। कागज की लुगदी बनाने के लिए भी कुछ किस्मों की छाल से उपयुक्त रसायन प्राप्त किए जाते हैं। इससे विस्कोस भी बनाया जाता है जो संश्लिष्ट तन्तु (synthetic yarn) बनाने के काम में आता है, जिससे वस्त्र बनते हैं।

आइए, अब खेती से सम्बन्धित उपयोगों व विवादों की चर्चा की जाए। यूकेलिप्टस के वृक्षों की लम्बी कतारों को बड़े खेतों की परिसीमाओं को सुरक्षित करने के लिए काम में लिया जाता है। वृक्षों की ये कतारें प्रतिपवन की ओर बोई गयी फसल की सुरक्षा करतीं हैं। कुछ किसान समझते हैं कि ये वृक्ष फसल के लिए हानिकारक हैं। केन्द्रीय भू एवं जल संरक्षण अनुसन्धान संस्था की राय थी कि यूकेलिप्टस की खेती से जमीन का विषाक्तन होता है तथा यह उसकी उर्वरता को नष्ट करता है। इस संस्था की राय थी कि यूकेलिप्टस वृक्षों के निकट खाद्य फसलें नहीं उगायी जा सकतीं क्योंकि यूकेलिप्टस वृक्षों द्वारा कुछ ऐसे रसायनों का रिसाव होता है जो वनस्पतियों को नष्ट कर देते हैं। परन्तु ऐसा नहीं है। रूस व अमेरिका के कृषि वैज्ञानिकों ने इस मत का खण्डन किया है। और देशों की बात क्यों मानें, हमारे अपने ही देश में गुजरात विश्वविद्यालय तथा आन्ध्र प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय में कार्यरत वैज्ञानिकों ने अनुसंधान से यह सिद्ध किया है कि यूकेलिप्टस की रक्षक मेखला अर्थात् shelter belt द्वारा हानि का तो प्रश्न ही नहीं, उल्टा खाद्य सामग्री के उत्पादन में २५ से ४५% तक वृद्धि होती है।

यूकेलिप्टस के कुछ आलोचकों का मत है कि यह जमीन को हीन बनाता है। तथ्य यह है कि यूकेलिप्टस के वृक्ष से गिरने वाली पत्तियों के द्वारा उल्टा जमीन का उपजाऊपन बढ़ता है। साथ ही साथ यह पेड़ जमीन में अधिक

गहराई पर उपलब्ध खनिजों को भी प्राप्त कर लेता है जो सामान्य फसलें नहीं कर पातीं। यूकेलिप्टस के पाँच वर्ष पुराने वृक्षों वाले खेतों में किए गये अनुसंधान से पता चलता है कि प्रति हैक्टेयर ११७० वृक्षों वाले खेत में ४० कि० ग्रा० कैल्शियम, ३० कि० ग्रा० नाइट्रोजन, १५ कि० ग्रा० पोटेशियम, ५ कि० ग्रा० मैग्नेशियम तथा २ कि० ग्रा० फास्फोरस की वृद्धि जमीन की ऊपरी सतह पर प्रतिवर्ष हुई है। यह वृद्धि यूकेलिप्टस के वृक्षों से गिरी पत्तियों, शाखाओं तथा छाल के कारण होती है।

अभी कुछ समय पहले कुछ विशेषज्ञों ने मत प्रकट किया कि यूकेलिप्टस का वृक्ष जल के तल को कम कर देता है। यहाँ तक कि कुछ पर्यावरण विशेषज्ञों ने तो इसे 'unquenchable monster' अर्थात् 'एक ऐसा दानव जिसकी प्यास बुझाए नहीं बुझती' जैसा खिताब दे दिया। किन्तु गुजरात के किसानों ने इस विश्वास का खंडन किया है। उनका अनुभव है कि ऐसा कुछ भी नहीं होता। हाँ, यूकेलिप्टस की कुछ किस्में ऐसी जरूर हैं जो जलाक्रांत अर्थात् जल से भरी जमीनों के लिए उपयुक्त रहती हैं तथा इनको लगाने से ऐसी जमीन ठीक हो जाती है। इस प्रकार की किस्मों को रोम में कुछ स्थानों पर आवश्यकता पड़ने पर लगाया गया था। शायद यह किस्म ही इस भ्रम का कारण है कि यूकेलिप्टस जल के तल को कम कर देता है। परन्तु भारत में इस प्रकार की किस्मों को नहीं उगाया गया है। लखनऊ के एक वैज्ञानिक का कहना है कि यह ठीक है कि अन्य प्रचलित वृक्षों की तुलना में यूकेलिप्टस द्वारा जल की खपत अधिक की जाती है किन्तु जैवमात्रा (biomass) के प्रति ग्राम उत्पादन को देखते हुए यह सबसे कम है। इसके द्वारा जल की खपत ०·४८ लिटर/ग्राम जैवमात्रा के उत्पादन के हिसाब से है जबकि इस प्रकार के अन्य वृक्षों के द्वारा जल की खपत ०·५५ से ०·७७ लिटर/ग्राम जैवमात्रा होती है।

यूकेलिप्टस के विरुद्ध यह भी आरोप है कि इससे भू अपरदन (erosion) होता है। किन्तु इसके विपरीत यमन अरब गणराज्य में केमलडोलेन्सिस नामक यूकेलिप्टस वृक्ष को बहुत ही सफलतापूर्वक भू-अपरदन को रोकने के लिए उपयोग में लिया गया है। अफ्रीका के बहुत से भागों में रेगिस्तान के बढ़ने को रोकने के लिए यूकेलिप्टस का प्रयोग किया गया है। भारतीय पर्यावरण विभाग ने भी कच्छभूमि (marsh lands) के उद्धार हेतु यूकेलिप्टस के प्रयोग करने का सुझाव दिया है। हाँ, एक अड़चन अवश्य प्रतीत होती है। जिस भूमि पर एक बार यूकेलिप्टस की खेती हो जाए वह अब उसी काम में दोबारा प्रयुक्त की जाए तो ठीक है अन्यथा अन्य फसलें उसी जमीन में थोड़ी समस्या पैदा करती हैं। इसका मुख्य कारण है कि जमीन में यूकेलिप्टस से गिरी व दबी पत्तियाँ बहुत धीरे-धीरे अपघटित होती हैं जिससे उनमें उपस्थित

या कहना चाहिए कि उनमें बन्द पोषक तत्व काफी समय के पश्चात् निष्कासित होने पर जमीन को मिलते हैं। साथ ही यूकेलिप्टस के करकट से मिट्टी थोड़ा अम्लीय भी हो जाती है। साथ ही इस वृक्ष की जड़ें भी थोड़ा उलझी-सी रहती हैं। इन सब बातों को देखते हुए अन्य कोई फसल बोने से पूर्व थोड़ा अन्तराल देना हितकर है। यदि अन्तराल दे दिया जाए तब इसी बीच (लगभग १½ वर्ष-में) इसकी जड़ें स्वतः नष्ट हो जाती हैं तथा नष्ट होकर जमीन को पोषण भी प्रदान करती हैं। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि वनरोपण हेतु यूकेलिप्टस की तुलना में कुछ अन्य वृक्ष जैसे ऐल्बिजिया लीबैक तथा ऐकेशिया टॉरटोलिस आदि अच्छे रहते हैं। वैसे यूकेलिप्टस की खेती अपने आप में ही एक अच्छा संनिवेश है। इसकी फसल का आवर्तन (rotation) सामान्यतया ८ वर्ष का होता है तथा यह दो गुल्मवन (coppice) फसलें देता है। अतः एक बार बोने के बाद किसान को अगले २४ वर्षों तक इसकी फसल काटने को मिलते रहने की सम्भावना रहती है।

एक विशेष बात यूकेलिप्टस में और है— यूकेलिप्टस की अधिकतर किस्मों में 'लिग्नोट्यूबर' नामक एक बहुत ही प्रभावकारी भूमिगत रक्षी अंग विकसित हो जाता है। इससे लाभ यह है कि आग लगने या पशुओं के अनावश्यक चरने या अन्य किसी दुर्घटना से यूकेलिप्टस के aerial भाग के नष्ट होने पर भी इसके द्वारा नयी शाखाएँ निकाल दी जाती हैं। प्रचण्ड अग्नि से भी ये लिग्नोट्यूब नष्ट नहीं होतीं।

यदि यूकेलिप्टस को सिंचाई वाली फसल के रूप में माना जाए तो देखेंगे कि और फसलों की अपेक्षा इसमें सिंचाई की आवश्यकता कम पड़ती है। गेहूँ, जौ, गन्ना तथा धान की खेती के लिए प्रायः १५ से ६० इंच के बीच सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है जबकि यूकेलिप्टस के लिए १४ इन्च ही काफी है।

इस सबसे पता चलता है कि यूकेलिप्टस का पेड़ वास्तव में उपयोगी है। इससे कोई हानि नहीं वरन् लाभ ही अधिक हैं। दारुहेड़ा (हरियाणा) स्थित संश्लिष्ट तन्तु के निर्माण करने वाली इकाई ने तो अपने रंगाई विभाग से निकलने वाले अवशिष्ट जल (waste water) को वहीं का वहीं समाप्त करने के लिए वहाँ यूकेलिप्टस के पेड़ लगा दिये हैं और यह प्रयोग सफल भी रहा है। और फिर इसकी सुन्दरता तो इसे और भी उपयोगी बना देती है। यूकेलिप्टस की कुछ किस्में तो बहुत ही अधिक सुन्दर होती हैं तथा उन्हें ornamental trees अर्थात् सजावटी पेड़ों के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इनकी आकृति, आकार,

पत्तियों व शाखाओं के फैलने का ढंग व तना और उसकी छाल, सभी कुछ तो आकर्षक होता है। कुछ किस्मों में अति सुन्दर लुभावने रंगों वाले पुष्प होते हैं। टिसिफोलिआ तथा कैलोफाइला नामक किस्मों में गहरे चमकदार रंगों वाले फूल लगते हैं। एक अन्य किस्म पलवेरुलेन्टा का पर्णसमूह अर्थात् foliage इतना सुन्दर होता है कि देखते ही बनता है। अत्यन्त आकर्षक होने के कारण इसे 'सिल्वर डॉलर' के नाम से पुकारा जाता है तथा इसे पुष्प विक्रेता मंहगे फूलदानों व भेंट किये जाने वाले गुलदस्तों को तैयार करने के काम में लेते हैं।

इतना प्यारा होता है यूकेलिप्टस कभी-कभी !

अति सूक्ष्म उपयोगी जीवाणु—ऐन्जाइम

—डा० रामकुमार पालीवाल
अध्यक्ष एवं रीडर रसायन विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

ऐन्जाइम क्रिया को भली-भांति समझने के लिए किण्वन क्रिया का जानना अति आवश्यक है। प्राचीन काल में मीठे फलों के रस से सोमरस का बनाना और आज के युग में द्राक्षासव आदि पेय पदार्थ बनाना किण्वन क्रिया के द्वारा ही सम्भव है। दैनिक जीवन में दूध से दही का बनाना और अपच हो जाने पर ऐन्जाइम की गोलियाँ खाना आजकल एक साधारण-सी बात है। यदि गन्ने के रस में कुछ खमीर डालकर रख दिया जाए तो कुछ दिनों पश्चात् उसमें से बुलबुलों के साथ गैस निकलने लगती है और देखते हैं अब गन्ने का रस सिरके के रूप में बदल गया है। इसी प्रकार दूध तथा गीले आटे का सड़ना आदि भी किण्वन क्रिया के ही उदाहरण हैं।

खमीर एक विशेष प्रकार का पौधा है। यह एककोशिका का बना होता है और बहुत सूक्ष्म होता है जिसको सूक्ष्मदर्शी की सहायता से देखा जा सकता है। अन्य जीवों की तरह खमीर को भी भोजन की आवश्यकता होती है। खमीर शर्करायुक्त पदार्थों के अपघटन से ऊर्जा प्राप्त करता है। बुक्नर ने १८९७ में अपने प्रयोगों द्वारा स्पष्ट किया कि किण्वन का अणुजीवों की जीवनसक्रियता से कोई सम्बन्ध नहीं है और किण्वन अणुजीवों में उपस्थित संकीर्ण नाइट्रोजनयुक्त पदार्थों द्वारा होता है। ये संकीर्ण नाइट्रोजनयुक्त पदार्थ ऐन्जाइम कहलाते हैं।

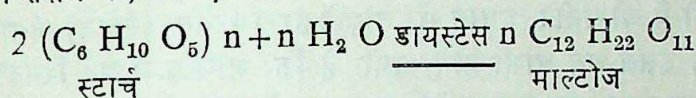
ऐन्जाइम प्रत्येक जीवित प्राणी की कोशिकाओं में होते हैं और शरीर में होने वाली विभिन्न अभिक्रियाओं में महत्वपूर्ण भाग लेते हैं। ये पदार्थ वास्तव में उत्प्रेरक होते हैं और इसलिए इनको "जीव-रासायनिक उत्प्रेरक" भी कहते हैं।

'समनर' तथा 'आइबेक' ने १९५० में बताया कि ऐन्जाइम साधारण या संयुक्त प्रोटीन है जोकि विशिष्ट उत्प्रेरक भी है; अन्य उत्प्रेरक की तरह

ऐन्जाइम परिवर्तनीय रासायनिक साम्य बिन्दु को नहीं बदलते, वे केवल रासायनिक क्रियाओं की गति को ही प्रभावित करते हैं। एक निश्चित ऐन्जाइम केवल एक विशेष निश्चित पदार्थ को ही प्रभावित करता है और अन्य पदार्थों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

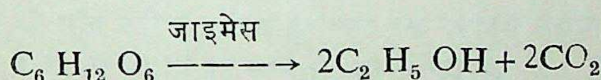
इसके अतिरिक्त ये अधिक ताप (लगभग ६५° सी) और विषैले पदार्थों (जैसे आरसनिक, बोरिक एसिड, मरकरी आदि) से शीघ्र प्रभावित हो जाते हैं। शरीर के ताप पर जिसे आप्टिमम ताप कहते हैं, ये अधिक क्रियाशील रहते हैं। बहुत अधिक ताप पर ये अक्रियाशील हो जाते हैं।

सर्वप्रथम १८३० में वैज्ञानिक डबरूफाट ने जौं को अंकुरित करके "माल्ट का सत्व" बनाया जो स्टार्च को माल्टोज नामक शर्करा में परिवर्तित करने में सक्षम था, उस ऐन्जाइम का नाम डायस्टेस दिया गया।



$$\underset{\text{स्टार्च}}{2\,(C_6\,H_{10}\,O_5)\,n} + n\,H_2\,O \xrightarrow{\text{डायस्टेस}} n\,\underset{\text{माल्टोज}}{C_{12}\,H_{22}\,O_{11}}$$

उसी वर्ष 'डी सासर' ने गेहूँ को अंकुरित करके डायस्टेस की तरह का ऐन्जाइम बनाया जो स्टार्च को शर्करा में परिवर्तित कर देता था। तत्पश्चात् १८५७ में पाश्चर ने जीवित खमीर के सैलों से शर्करा का ऐल्कोहल में किण्वन करके दिखाया। इसी प्रकार बुकनर ने १८९७ में दर्शाया कि खमीर में उपस्थित दूसरी ऐन्जाइम "जाइमेस" ग्लुकोज़ का अपघटन कर एथिल ऐल्कोहल और कार्बन डाईआक्साइड देती है—



$$C_6\,H_{12}\,O_6 \xrightarrow{\text{जाइमेस}} 2C_2\,H_5\,OH + 2CO_2$$

सर्वप्रथम समनर ने १९२६ में विशुद्ध रूप से 'यूरेज' नामक ऐन्जाइम को अलग किया और सिद्ध किया कि ऐन्जाइम एक प्रोटीनयुक्त जीवाणु है। इसके पश्चात् अनेकों वैज्ञानिकों ने बहुत से निम्न ऐन्जाइम को ठोस अवस्था में प्राप्त किया, जैसे—

१. नोरथ्रोप तथा कुटनिट्ज ने १९३६ में ट्रिपसिन को गाय के पन्क्रियाज़ से।
२. समनर तथा डोन्स ने १९३७ में 'काटलेस' को गाय के यकृत से।
३. कुटनिट्ज ने १९४० में आर-एन-ए को गाय के पैन्क्रियाज़ से।
४. नोरथ्रोप ने १९४६ में 'पैप्सीन' को सूरी के आमाशय से।
५. कुटनिट्ज ने १९५० में डी-एन-ए को गाय के पैन्क्रियाज़ से।

ऐन्जाइम का वर्गीकरण भी उनके द्वारा प्रतिपादित किये गये विशिष्ट कार्यों के आधार पर किया गया है। जैसे 'आक्सीडोरिडकटेस' नामक ऐन्जाइम आक्सीकरण तथा अवकरण की क्रियायें करता है। 'हाइड्रोलेसस' नामक ऐन्जाइम हाइड्रोलेसिस करता है और 'लीगेसेस' नामक ऐन्जाइम संश्लेषण की क्रियायें करता है, आदि।

गाय के बछड़े के पेट में ५ से १० ग्राम 'रैनिन' नामक ऐन्जाइम होता है और इस रैनिन (अथवा रिनेट) को प्राप्त करने के लिए दूध पीते हुए मासूम गाय के बछड़ों का वध किया जाता है। इस प्रकार से प्राप्त रैनिन नामक ऐन्जाइम की सहायता से पनीर बनाया जाता है। यह ऐन्जाइम दूध से प्राप्त हुई केसीन (एक प्रोटीन) को पनीर में स्कंदित कर देता है।

इसी वर्ष एक महिला रसायनशास्त्री ने रैनिन जैसी ऐन्जाइम प्रयोगशाला में संश्लेषित की है जो पनीर बनाने में बछड़ों द्वारा रिनेट (रैनिन) जैसा सफल कार्य करती है, इससे अब आशा होने लगी है कि भविष्य में अब रिनेट प्राप्त करने हेतु मासूम बछड़ों का वध नहीं किया जा सकेगा।

संश्लेषित रंगपदार्थों से हानियाँ

—डा० रजनीशदत्त कौशिक
प्रवक्ता, रसायन विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पेड़-पौधों व जन्तुओं से प्राप्त प्राकृतिक रंगपदार्थों का स्थान सन् १८५६ के पश्चात् संश्लेषित पदार्थों ने ले लिया। सन् १८५६ में तैयार की गयी माउवे नामक संश्लेषित रंग के साथ ही संश्लेषित रंगों का युग प्रारम्भ हुआ। इसके बाद रोजेनिलिन ब्लू, होफमैन वॉयलेट, मिथाइल-वायलेट, एनिलीन ब्लैक तथा एल्डीहाइड ग्रीन, आदि रंगपदार्थ बनाए गए। एजो रंगद्रव्य तथा एन्थ्रोक्विनोन रंगद्रव्यों को आजकल सेल्यूलोज एसीटेट के रेशों पर गहरे तथा स्थिर रंग चढ़ाने के लिए बहुतायत में प्रयोग किया जाता है। जहाँ एक ओर थैलोसायनिन रंजक है, वहीं दूसरी ओर रेशों से क्रिया करने वाले रंगपदार्थ हैं, जैसे प्रोकोयन रंग, जो सेल्यूलोज से बन्ध बनाते हैं तथा जिनकी स्थिरता व वॉश गुण भी बेहतर हैं।

भारत में रासायनिक उद्योगों द्वारा ३०० से भी अधिक रंगद्रव्य बनाए जाते हैं। कपड़ा उद्योग के विकास के साथ–साथ विभिन्न प्रकार के संश्लेषित रंगद्रव्यों की माँग बढ़ी है। साथ ही साथ इस रंगद्रव्य उद्योग में कार्यरत कर्मियों को रंगों के विषैले प्रभाव का सामना करना पड़ रहा है। यह इस कारण कि वे रंगों तथा उनके निर्माण हेतु प्रयोग किए जाने वाले रसायनों के सम्पर्क में आते हैं। साथ ही उक्त उद्योगकर्मियों के अतिरिक्त सामान्य जन के लिए भी यह रंग-पदार्थ हानिकारक हैं।

संश्लेषित रंगउद्योगों में कार्यरत व्यक्ति सबसे अधिक डर्मेटाइटिस नामक बीमारी से ग्रस्त रहते हैं। विशेष रूप से कैलिको मुद्रण, फर उद्योग तथा चमड़ा उद्योगों के कर्मी इस बीमारी का शिकार होते हैं। साथ ही शीघ्र सूखने वाले पेन्ट्स, वार्निश तथा खाद्यसामग्री को रंगीन बनाने में प्रयुक्त रंग आदि से डर्मेटाइटिस जन्म लेती है। फिनाइलीन डाइएमीन, यूरोसोल तथा बहुत से फोटो-टाक्सिक पदार्थों से एक्जीमा, चेहरे, गर्दन तथा अग्र भुजा पर दाग हो जाते हैं। फर्नीचर पॉलिश करने वाले व्यक्तियों की त्वचा का लाल रंग का हो जाना भी

ऐसा ही एक प्रभाव है। इन पदार्थों की त्वचा से क्रिया होने पर त्वचा में खारिश, जलन, लाल हो जाना, सूखापन, रंगीन धब्बे पड़ना, खुरदरापन, आदि हो जाता है।

रंग उद्योग में कार्यरत व्यक्तियों को कैंसर होने की सम्भावना रहती है। यहाँ तक कि एक व्यक्ति को सेवाकाल पूर्ण हो जाने के कुछ वर्षों बाद भी कैंसर हो सकता है। क्योंकि इस प्रकार के कैंसर का गुप्त समय (लेटेन्ट पीरियड) ५ से २५ वर्ष का है। बीटा नेप्थाइलएमीन, बैन्जिडीन, एन्थ्रेसीन, आदि को अधिकतर रंगनिर्माण में प्रयोग किया जाता है। यह सभी कैंसरउत्पादक रसायन माने जाते हैं।

क्रोम रंगउद्योगकर्मियों में फेफड़ों का कैंसर तथा एजो रंगउद्योगकर्मियों में यकृत का कैंसर इन्हीं पदार्थों व रंगों के कारण होता है। शोधकार्यों से पता चला है कि मूत्राशय का कैंसर एनिलीन रंगों तथा इनके निर्माण के लिए प्रयुक्त रसायनों, जैसे एनिलीन, पेरा टोल्यूडीन, जाइलिडीन्स, फशिन, बैन्जिडीन, रोजेनिलीन व नेप्थाइल एमीन, आदि के कारण होता है। बीटा नेप्थाइलएमीन से मूत्राशय में टयूमर बनने की सम्भावना रहती है। रबड़ उद्योग तथा बिजली के केबिल बनाने वाले उद्योगों के कर्मियों में भी मूत्राशय का कैंसर पाया जाता है। क्योंकि इन उद्योगों में रबड़ का आक्सीकरण रोकने हेतु प्रयुक्त रसायनों (जैसे फ्री नेप्थाइलएमीन) का प्रयोग किया जाता है।

डर्मेटाइटिस तथा कैंसर के अतिरिक्त संश्लेषित रंगों से, इन्हें प्रयोग करने वाले व्यक्तियों तथा उद्योगकर्मियों को अन्य बहुत-सी बीमारियाँ हो सकती हैं, जैसे उल्टियाँ आना, डाइसपेप्सिया, गेस्ट्राइटिस, कन्वलशन्स, स्प्लीनोमीगेली, डिज़िनेस, ब्रोन्काइटिस, एनीमिया, सायनोसिस, जॉन्डिस, एस्थमा, लीवर नीक्रोसिस आदि।

उक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, रंग उद्योगों को सामान्य औद्योगिक चेतावनियों के अलावा निम्नलिखित विशेष बचाव के उपाय करने चाहिएँ :

१— रंगनिर्माण कक्ष में एक्जास्ट सुविधा होनी चाहिए एवं एसिडप्रूफ फर्श होने चाहिए जिन्हें विभिन्न प्रकार की क्रियाओं के पश्चात् अवश्य धोना चाहिए।

२— सफाई, स्नान आदि का पूर्ण प्रबन्ध फैक्टरी में ही होना चाहिए।

३— कर्मियों को पूरी पतलून, पूरी बाँहों की कमाज, लम्बे जूते व दस्ताने प्रयोग करने चाहियें।

४— रंग-संचय के लिए बने हुए पात्र लकड़ी के न होकर स्टील के हों।

५— ऐसे रासायनिक पदार्थ प्रयोग किए जायें जो कम कैंसर उत्पादक हैं। बेन्जिडीन को इसके साल्ट के रूप में तथा नमी वाले कक्ष में प्रयोग किया जाना चाहिए।

६— कैंसर उत्पादक रसायनों का प्रयोग करते समय कर्मियों को चेहरे पर मास्क का प्रयोग करना चाहिए।

७— कर्मियों की पूर्ण व उचित डाक्टरी जाँच समय-समय पर की जाए।

८— रंग उद्योग के वेस्ट पदार्थों को भली-भाँति रीप्रोसेस किया जाए।

साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य है कि कपड़ों, पेन्ट्स, वार्निश तथा पिगमेन्ट्स को प्रयोग करने वाले व्यक्ति भी इन रंगों के सम्पर्क में आते हैं। यदि इन रंगद्रव्यों को उचित रूप से शुद्ध नहीं किया जाता तो उनमें अशुद्धि के रूप में वह रसायन रह जाते हैं जिनका प्रयोग रंगनिर्माण में किया गया हो तथा जो रंगों से भी अधिक हानिकारक हैं। पूर्णरूप से हानिरहित रंगों का प्रयोग ही इनसे होने वाली हानि को रोक सकता है।

अन्तरिक्ष अनुसन्धान और भारत की उपलब्धियाँ

(२१ अक्टूबर १९८६ को आकाशवाणी नजीबाबाद से प्रसारित वार्ता पर आधारित)

—डा० पी०पी० पाठक
भौतिकविज्ञान विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

अन्तरिक्ष का तात्पर्य है वह सभी रिक्त स्थान जो पृथ्वी की सतह से ऊपर विद्यमान है। अनुसन्धान के कुछ कार्यों के लिए पृथ्वी के वायुमण्डल को छोड़कर शेष रिक्त स्थान को ही अन्तरिक्ष मानते हैं। परन्तु क्योंकि अन्तरिक्ष की लगभग सभी गतिविधियों का प्रभाव किसी न किसी रूप में वायुमण्डल पर पड़ता ही है अथवा अन्तरिक्ष के निरीक्षणों को वायुमण्डल प्रभावित करता है, अतः इन दोनों को अलग-अलग नहीं किया जा सकता है। अब अन्तरिक्ष अनुसंधान के अन्तर्गत पृथ्वी और उसके वायुमण्डल के बाहर के पिण्डों, विकिरणों तथा अन्य गतिविधियों का अध्ययन, उसमें होने वाले परिवर्तनों तथा पृथ्वी और उसके वायुमण्डल में इनके प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। यह अध्ययन तीन प्रकार से किया जा सकता है :

१—पृथ्वी पर ही कुछ उपकरणों की सहायता से निरीक्षण करके,

२—गुब्बारे, राकेट या उपग्रह में कुछ उपकरण भेजकर, उनके द्वारा भेजे गए सन्देशों को पृथ्वी पर स्थित उपकरणों द्वारा प्राप्त करके, तथा

३—गुब्बारे, राकेट या उपग्रह से ही उपकरणों द्वारा निरीक्षण करके।

इस अन्तिम विधि का प्रयोग तब किया जाता है जब राकेट, उपग्रह या गुब्बारे को पृथ्वी पर सुरक्षित वापिस लाया जा सके और इस स्थिति में उपकरणों को चलाने के लिए अथवा कुछ अन्य निरीक्षणों के लिए व्यक्तियों को भी भेज दिया जाता है।

अन्तरिक्ष अनुसन्धान के विषय, उद्देश्य तथा उपयोग अनेक हैं। हालांकि अनुसन्धान के कुछ विषयों का कभी-कभी प्रत्यक्ष उपयोग नहीं मालूम पड़ता है

परन्तु कुछ समय पश्चात् उनका प्रत्यक्ष उपयोग मानवता को भलाई के लिए निकल ही आता है। बिना किसी उपकरण को अन्तरिक्ष में भेजे हुए पृथ्वी की सतह से निरीक्षणों पर आधारित अनुसन्धानों का बहुत अधिक प्रत्यक्ष उपयोग न हो सका क्योंकि दूरी और समय दोनों की दृष्टि से इसकी निश्चित सीमाएँ हैं। अतः गुब्बारों व राकेटों का प्रयोग आवश्यक-सा हो गया। इनसे मौसम विज्ञान, एस्ट्रोनामी और एस्ट्रोफिजिक्स के क्षेत्र में आगे के अन्वेषणों के लिए महत्वपूर्ण उपलब्धियों के अतिरिक्त मानवता के प्रत्यक्ष उपयोग के लिए मौसम की जानकारी तथा भविष्यवाणी भी सम्भव हो सकी। राकेटों का प्रयोग भी वायुमण्डल में केवल कुछ सौ किमी० की ऊँचाई तक ही सीमित रहा तथा वे वायुमण्डल में अधिक समय तक रुक नहीं सकते थे। अतः जैसे-जैसे आवश्यकतायें बढ़ती गयीं, वैज्ञानिकों ने उपग्रह के उपयोग के बारे में विचार किया। उपग्रह को एक निश्चित कक्षा में स्थापित कर मौसम की सीधी जानकारो प्राप्त करने के साथ-साथ पृथ्वी पर उपस्थित वनों, झीलों तथा नदियों की स्थितियों एवं पृथ्वी के अन्दर के खनिज पदार्थों की जानकारी भो सम्भव हो सकी। इसके अतिरिक्त दूरसंचार व्यवस्था में रेडियो, टेलीविजन व टेलीफोन आदि की सुचारु व सुदूर सेवा सम्भव हो सकी।

बड़े-बड़े अन्तरिक्ष अभियानों का उद्देश्य पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य ग्रहों के बारे में जानकारी प्राप्त करना तथा पृथ्वी के अतिरिक्त सम्भावित जीवन की खोज करना भी है। रूस और अमेरिका के अन्तरिक्ष अभियानों ने मानव के कदम चन्द्रमा पर पहुँचा दिए हैं। अनेक अन्तरिक्षयात्रियों द्वारा अन्तरिक्ष की सैर तथा पृथ्वो के चारों ओर शून्य में घूमना भी सम्भव हो सका है। मंगल ग्रह पर मानवरहित अन्तरिक्षयान वाइकिंग उतर चुका है। अमरीकी अन्तरिक्षयान एक्सप्लोरर को लक्ष्यहीन अन्तरिक्ष में छोड़ दिया गया है जिससे ब्रह्मांड में यदि कहीं जीवन इस रूप में विद्यमान हो तो, इस यान में रखी गई पृथ्वी की सभ्यता की वस्तुओं को देखकर अन्य ग्रहों के निवासी यहाँ के बारे में जान लें तथा यहाँ पहुँचने का प्रयास कर सकें।

अन्तरिक्ष अनुसंधान का एक दूसरा विध्वंसात्मक पहलू भी है जो युद्ध में इसके उपयोग से जुड़ा हुआ है। अमेरिका और रूस जैसी महाशक्तियों ने अन्तरिक्ष तकनीक का प्रयोग करके ऐसे-ऐसे हथियार बना लिए हैं जिनके प्रयोग से कुछ ही पलों में पृथ्वी से मानवता का नाम ही मिट सकता है।

राकेट द्वारा अन्तरिक्ष अनुसन्धान का प्रारम्भ इस शताब्दी के मध्य में हुआ जब २४ फरवरी १९४९ को पहला राकेट २५० मील की ऊँचाई तक उड़

सका था। इसके पश्चात् राकेट तकनीक में इतनी शीघ्रता से प्रगति हुई कि लगभग साढ़े आठ वर्ष बाद अक्टूबर १९५७ में पहला कृत्रिम उपग्रह, राकेट द्वारा रूसी वैज्ञानिकों ने पृथ्वी की कक्षा में स्थापित कर दिया। इसके बाद पृथ्वी के चारों ओर कृत्रिम उपग्रहों की झड़ी-सी लग गई। रूस व अमेरिका द्वारा अनेक उपग्रह छोड़े जाने लगे और उनकी सहायता से विभिन्न अनुसंधान कार्य किए गए। १३ अप्रैल १९५९ को प्रथम बार मानवरहित रूसी अन्तरिक्षयान ल्यूनिक-२ चन्द्रमा की सतह पर उतरा। १२ अप्रैल १९६१ को प्रथम मानव रूस के यूरी गागरिन पृथ्वी को कक्षा में घूमे १९ जुलाई १९६९ को प्रथम मानव अमेरिका के नील आर्मस्ट्रांग ने चन्द्रमा पर कदम रखे। उसके पश्चात् अमरीका ने कुछ ऐसे अन्तरिक्षयान बनाये जो कई बार अन्तरिक्ष में जाकर पृथ्वी पर वापिस सुरक्षित उतर सकते थे। परन्तु दुर्भाग्यवश २८ जनवरी १९८६ को एक उड़ान के दौरान चैलेंजर (जो इनमें से एक था) में विस्फोट हो गया और यान ध्वस्त होकर समुद्र में जा गिरा। इस दर्दनाक दुर्घटना से न केवल अमरीका, अपितु सारे विश्व के अन्तरिक्ष अभियानों को धक्का लगा और अन्तरिक्ष अनुसंधान की गति धीमी पड़ गई।

भारत में अन्तरिक्ष पर व्यक्तिगत रूप से कुछ वैज्ञानिक बहुत पहले से ही अनुसंधान कार्य कर रहे थे परन्तु सामूहिक रूप से राष्ट्रीयस्तर पर इसकी शुरुआत १९६२ में इण्डियन नेशनल कमेटी फार स्पेस रिसर्च की स्थापना से मानी जा सकती है। २१ नवम्बर १९६३ को प्रथम बार त्रिवेन्द्रम के पास थुम्बा से राकेट छोड़ा गया। परन्तु यह राकेट तथा इसके अधिकतर उपकरण विदेशी थे। १९६५ में फ्रांसीसी राकेट में भारतीय उपकरण रखकर थुम्बा से छोड़ा गया। १९६६ में इसी प्रकार एक अन्य राकेट छोड़ा गया। इन प्रयोगों का न केवल वैज्ञानिक निरीक्षणों के लिए उपयोग किया गया बल्कि राकेट तकनीक की भी जानकारी प्राप्त की गई और २० नवम्बर १९६७ को प्रथम बार पूर्ण रूप से भारत में बना राकेट रोहिणी-७५ सफलतापूर्वक छोड़ा गया जिसके मोटर का व्यास ७५ मिमी० था। इसी वर्ष की एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि थी जापान व आस्ट्रेलिया के साथ उपग्रह के द्वारा दूरदर्शन सम्पर्क का सफल परीक्षण। अब राकेट तकनीक में सुधार की तरफ ध्यान दिया गया। इसका प्रमुख उद्देश्य था अधिक से अधिक भारी पेलोड को अधिक से अधिक ऊँचाई तक पहुँचाने के लिए अधिक शक्तिशाली इन्जिन तथा कम वजन का राकेट बनाना। १९६९ में भारतीय अन्तरिक्ष अनुसन्धान संस्थान की स्थापना से इन अन्तरिक्ष कार्यक्रमों को नई दिशा मिली। एक तरफ उपग्रहों का निर्माण तथा उनका परीक्षण और अध्ययन विदेशी राकेटों द्वारा उन्हें निर्धारित कक्षा में पहुँचा कर किया जाता रहा और दूसरी तरफ राकेट तकनीक के अध्ययन व परीक्षण के लिए नए-नए राकेट छोड़े जाने लगे। साथ ही इन राकेटों में विभिन्न वैज्ञानिक उपकरणों को

भेजकर निरीक्षण भी किए जाते रहे जिनसे कई महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त हुईं जिनकी चर्चा अन्त में करेंगे।

उपग्रहनिर्माण में सफलता के फलस्वरूप १९ अप्रैल १९७५ को प्रथम भारतीय उपग्रह आर्यभट्ट सोवियत राकेट से उनके ही कास्मोड्रोम से ६०० कि० मी० की लगभग वृत्ताकार कक्षा में स्थापित किया गया। फिर ७ जून १९७९ को भास्कर-१ तथा २० नवम्बर को १९८१ को भास्कर-२ वहीं से दीर्घवृत्तीय कक्षाओं में स्थापित किए गए। १९ जून १९८१ को 'एपल' यूरोपियन अन्तरिक्ष एजेन्सी के ऐरिएन राकेट द्वारा भेजा गया। इन सब उपग्रहों से कई परीक्षण व वैज्ञानिक निरीक्षण के साथ-साथ दूरसंचार व दूरदर्शन के भी कुछ उपयोग किए गए। इस उपग्रह तकनीक का उपयोग करके भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह प्रणाली की पहली पीढ़ी 'इनसेट-१' का कार्यक्रम बनाया गया। इस बहुउद्देश्यीय प्रणाली का उपयोग देश की आन्तरिक दूरसंचार व्यवस्था, मौसम, वैज्ञानिक निरीक्षणों, देश के ग्रामीण क्षेत्रों में कम्युनिटि दूरदर्शन के लिए सीधे प्रसारण, तथा देश के सभी प्रसारण केन्द्रों के लिए रेडियो व दूरदर्शन के कार्यक्रमों के वितरण के लिए किया जा रहा है। इनसेट-१ए के सफल परीक्षण के बाद इनसेट-१बी अगस्त १९८३ में कक्षा में भेजा गया था और अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में इसने पूरी तरह कार्य करना शुरु कर दिया था। तब से यह लगातार ठीक तरह से कार्य कर रहा है। इनसेट-१सी के छोडे जाने के बाद यह प्रणाली पूरी होगी। पहले इसे चैलेंजर द्वारा छोड़े जाने का कार्यक्रम २७ सितम्बर १९८६ को था। चैलेंजर के नष्ट हो जाने के कारण इसमें बाधा पड़ गई है। अब इसे सोवियत राकेट द्वारा छोड़े जाने की घोषणा की गई है जिसका अभी समय निश्चित नहीं किया गया है।

दूसरी तरफ राकेट तकनीक में भी सफलता प्राप्त हुई है। १८ जुलाई १९८० को प्रथम बार भारतीय राकेट SLV-3 द्वारा ३५ किग्रा० के उपग्रह RS-1 को अण्डाकार कक्षा में स्थापित करने में सफलता मिली। इसके पश्चात् अधिक वजन के उपग्रह छोड़े गए और अब भारत स्वयं उपग्रह छोड़ने में सक्षम हो चुका है। इनसेट-१ प्रणाली को भविष्य में अधिक उन्नत द्वितीय पीढ़ी की इनसेट-२ प्रणाली से बदलने का कार्यक्रम बनाया जा चुका है। इन उपग्रहों को श्री हरिकोटा से भारतीय राकेटों द्वारा छोड़ा जाएगा। हालांकि ASLV-3 की विफलता से एक और रुकावट सामने आ गई है परन्तु फिर भी वह दिन दूर नहीं जब पूर्णतया भारत में बने उपग्रह भारतीय राकेटों द्वारा भारत की जमीन से छोड़े जायेंगे।

समानव अन्तरिक्ष उड़ान के क्षेत्र में भी हमारे देश ने रूस के सहयोग से

कुछ सफलता प्राप्त कर ली है। ३ अप्रल १९८४ को प्रथम भारतीय अन्तरिक्ष यात्री स्क्वाड्रन लीडर राकेश शर्मा रूसी अन्तरिक्षयान सोयूज T-11 द्वारा अन्तरिक्ष में गए और उन्होंने वहाँ ६ अप्रैल को रिमोट सेंसिज के Terra प्रयोग और Material Processing पर तथा कुछ Physiological प्रयोग किए। टेरा प्रयोगों के परिणामों से भूगर्भ विज्ञान में sand dunes, salt pans, mud flats, mangroves turbidity, silting pattern तथा समुद्री किनारों की मैपिंग के बारे में तथा गुजरात, पश्चिमी घाट तथा कर्नाटक के वनों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी मिलने की आशा है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि राकेट तकनीक के परीक्षण के दौरान तथा उपग्रहों द्वारा अनेक वैज्ञानिक निरीक्षण किए गए। इनसे पृथ्वी और उसके पर्यावरण के बारे में तथा एस्ट्रोनामी व एस्ट्रोफिजिक्स के क्षेत्र में महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त हुईं। इनमें से प्रमुख निम्न हैं:

१—मौसम की भविष्यवाणी तथा आंधी-तूफान की चेतावनी जो मानव के प्रत्यक्ष प्रयोग के लिए है।

२—वायुमण्डल में रासायनिक अभिक्रियाओं द्वारा ओजोन फार्मेशन तथा उसके द्वारा सौर विकिरण के हानिकारक भाग के अवशोषण के बारे में।

३—सौर विकिरण में परिवर्तन, ताप, दाब व आर्द्रता में परिवर्तन तथा प्रदूषण के बारे में।

४—आयोनोस्फीयर की कई महत्वपूर्ण प्रक्रियायें और उनका रेडियो प्रसारण पर प्रभाव।

५—Solar spots, solar carona, solar atmosphere और उसमें oscillations, solar x-ray, astronomy, solar wind तथा सूर्य के चुम्बकीय क्षेत्र के बारे में।

६—सौर मण्डल में पाए जाने वाले कई कॉमेटों के बारे में विस्तृत जानकारी।

७—अन्य ग्रहों तथा उनके वायुमण्डल में होने वाली घटनाओं के बारे में।

८—पृथ्वी पर गिरी हुई उल्काओं तथा चन्द्रमा से अपोलो द्वारा लाई गई चट्टानों के अध्ययन से कास्मिक किरणों तथा चन्द्रमा पर पाए जाने वाले तत्वों की जानकारी।

९—अन्तरिक्ष में कास्मिक किरणों की ऊर्जा व उनके अन्य गुणधर्म, पृथ्वी क वायुमण्डल पर उनका प्रभाव तथा सूर्यजनित परिवर्तन (solar modulation) की जानकारी।

१०—एक्स-रे एस्ट्रोनामी, गामा-रे एस्ट्रानामी तथा रेडियो एस्ट्रानामो सम्बन्धित निरीक्षणों से अन्तरिक्ष की विभिन्न गतिविधियों तथा आकाशीय पिण्डों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी।

इस प्रकार अन्तरिक्ष अनुसन्धान के क्षेत्र में हमारे देश ने चहुँमुखी प्रगति की है। राकेट तकनीक, उपग्रह निर्माण व राष्ट्रीय सार्वजनिक कार्यों के लिए उनके उपयोग में हमारा देश आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ही चुका है। साथ ही उनसे प्राप्त वैज्ञानिक निरीक्षणों से अनुसन्धान में भी आत्मनिर्भर हुआ है। निकटभविष्य में इसके कई उपयोगों की आशा की जा सकती है।

हिमालय पर्यावरण शोध योजना के अन्तर्गत—

मोटाढाक (कोटद्वार : पौड़ीगढ़वाल) क्षेत्र का सामाजिक-आर्थिक सर्वेक्षण

—**प्रो० बी० डी० जोशी**, निदेशक
एवं
विनीत शर्मा, कनिष्ठ शोध छात्र
हिमालय पर्यावरण शोध योजना
जन्तुविज्ञान विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

भूमिका—

हिमालय की तलहटी में, कोटद्वार—झण्डीचौड़ मार्ग पर जनपद पौड़ी गढ़वाल में मोटाढाक (भाबर) एक छोटा-सा कस्बाई क्षेत्र है। यूँ तो सामाजिक-आर्थिक सर्वेक्षण लगभग ८-१० गांवों का किया गया है किन्तु मोटाढाक का नाम सर्वोपरि इसलिए है कि यह सड़क के एकदम किनारे बसा मुख्य क्षेत्र है। इसी कस्बे में इन्दिरा प्रियदर्शिनी इण्टर कालिज है। इस क्षेत्र के छोटे-छोटे प्रत्येक गांव में लगभग १०-१५ परिवार रहते हैं। घर तथा खेत दोनों लगभग पास-पास होते हैं।

मोटाढाक, मवाकोट, पदमपुर, नन्दपुर, गोरखपुर, कोटला इत्यादि गांव लगभग एक रेखा में व नहर के किनारे बसे हुए हैं। मोटाढाक से लगभग ५ कि० मी० ऊपर मालिनी नदी का पानी रोक कर दो नहरें निकाली गयी हैं। एक नहर तो मोटाढाक क्षेत्र को पानी देती है व दूसरी नहर कलालघाटी क्षेत्र में जाती है। यहां पीने, नहाने व कपड़े धोने, मवेशियों को पिलाने व सिंचाई में प्रयुक्त जल इन्हीं नहरों द्वारा लिया जाता है।

यह क्षेत्र अत्यन्त ऐतिहासिक महत्व का भी है। मोटाढाक से लगभग ४ कि० मी० उत्तर-पूर्वी दिशा में तीन ओर से पर्वतों से घिरा हुआ कण्वऋषि का आश्रम जो कि 'कण्वाश्रम' के नाम से जाना जाता है, भी यहीं है। कहते

हैं इसी स्थान पर शकुन्तला का गान्धर्व विवाह हस्तिनापुर के महाराज दुष्यन्त से हुआ था। तथा उनके पुत्र राजकुमार भरत, जो कि प्रकृति के इन्हीं अंचलों में खेला करता था, के नाम पर हमारे देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। मोटाढाक क्षेत्र के इन गांवों में अधिकतर लोग राजपूत हैं। इनका मुख्य पेशा कृषि है। अधिकांश लोग गरीबी रेखा से नीचे का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इतना होते हुए भी साक्षरता निरन्तर बढ़ रही है। परिवार नियोजन के सक्रिय न होने के कारण जनसंख्या बढ़ रही है। ग्राम के लगभग १०८ परिवारों का जिनमें राजपूतों व ब्राह्मणों का बाहुल्य है, सर्वेक्षण किया गया, जो कि गरीबी व अमीरी के अन्तर्द्वन्द को प्रदर्शित करता है।

चूंकि ये ग्राम-अंचल हमारे कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं, अतः इनका सामाजिक-आर्थिक सर्वेक्षण किया गया।

निरीक्षण व परिणाम—

लगभग १५०० जनसंख्या वाले इस संयुक्त ग्रामीण क्षेत्र के १०८ परिवारों का हर दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए सामाजिक-आर्थिक सर्वेक्षण किया गया। इस सर्वेक्षण में ग्रामवासियों के परिवार, परिवारजनों की संख्या, परिवार में पुरुषों व महिलाओं की संख्या, आयु का विवरण, सन्तानउत्पादकता का विवरण, शिक्षा, व्यवसाय, मासिक आय, परिवार व गांव की मुख्य आवश्यकताओं (बिजली, पानी), जाति, जमीन, पशुधन, व्यय, खाद्यसामग्री आदि के बारे में पूछा गया तथा ग्रामवासियों के इनके सम्बन्ध में विचार लिये गये। अध्ययन के दौरान कई मुख्य बातें मालूम हुई जो निम्नवत् हैं : –

१. परिवार का माप

गांव के १०८ परिवारों की जनसंख्या ६७६ है। जिनमें ३९८ पुरुष व २७८ महिलाएँ हैं। अतः गांव के एक परिवार की औसत सदस्य संख्या ६ २५ प्रतिशत आती है, जोकि आज के समय में अधिक है। अधिकांश परिवारों में औसतन ५-८ तक सदस्य हैं। ऐसे परिवारों की संख्या ८९ (८२·४० प्रतिशत) है। दूसरे भाग में १-४ तक सदस्य हैं, ऐसे परिवार कुल १२ (११·११ प्रतिशत) हैं। वर्तमान समय में ऐसे परिवार उत्तम हैं। गांव के तीसरे भाग में ७ (६.४८ प्रतिशत) परिवार ऐसे हैं, जिनमें सदस्यों की संख्या ९-११ तक है (तालिका-१) आधुनिक समय में ऐसे परिवार बहुत बड़े परिवार कहलाते हैं।

२. आयु का विवरण

१३ से २१ वर्ष तक की आयु के सदस्यों की संख्या सर्वाधिक २३४ (३४.६१ प्रतिशत) है। इनमें १४५ (३६.४३ प्रतिशत) लड़के तथा ८९(३२.०१ प्रतिशत) लडकियाँ हैं। गांव का दूसरा बड़ा भाग २२ से ३५ वर्ष तक की वय के सदस्यों का है। इस आयुवर्ग में १४९ (२२.०४ प्रतिशत) व्यक्ति हैं, जिनमें ९४ (२३.६१ प्रतिशत) पुरुष तथा ५५ (१९.७८ प्रतिशत) महिलाएँ हैं। तीसरे वर्ग में ११२ (१६.५६ प्रतिशत) सदस्य ३६ से ५० वर्ष की आयु के हैं। इनमें ५२ (१३.०६ प्रतिशत) पुरुष व ६० (२१.५८ प्रतिशत) महिलाएँ हैं।

चौथे भाग में ६ वर्ष से लेकर १२ वर्ष तक के कुल ९५ (१४.०५ प्रतिशत) सदस्य आते हैं, जिनमें ५२ (१३.०६ प्रतिशत) लड़के व ४३ (१५.४६ प्रतिशत) लड़कियां हैं। पांचवें भाग में ५१ (७.५४ प्रतिशत) सदस्य हैं जो कि ५१ से ६५ वर्ष तक के आयुवर्ग में आते हैं। इनमें ३९ (९.७९ प्रतिशत) पुरुष व १२ (४.३१ प्रतिशत) स्त्रियां हैं। छठे भाग में ५ वर्ष तक के सदस्य आते हैं, जिनकी कुल संख्या २८ (४.१४ प्रतिशत) है। इनमें १२ (३.०१ प्रतिशत) लड़के व १६ (५.७५ प्रतिशत) लड़कियां हैं। सातवें व अन्तिम भाग में ६६ वर्ष से लेकर ९० वर्ष तक के कुल ७ (१.०३ प्रतिशत) सदस्य हैं, जिनमें ४ (१ प्रतिशत) पुरुष व ३ (१.०७ प्रतिशत) स्त्रियां हैं (तालिका-२)। उपरोक्त आंकड़ों से विदित होता है कि गांव में ६६-९० वर्ष की आयु के वृद्धों व ०-५ वर्ष तक की वय के बच्चों की संख्या न्यूनतम है। ५ वर्ष तक की आयु के कुल २८ (४.१४ प्रतिशत) बच्चे हैं, जो कि वर्तमान स्थितियों में सीमित परिवारों के प्रति सामान्य सजगता को इंगित करते हैं। गांव में ३६ वर्ष से ६० वर्ष तक की आयु के १५४ सदस्य हैं, जिनमें ८५ पुरुष व ६९ महिलाएँ हैं तथा नई पीढ़ी में १ से ३५ वर्ष तक के सदस्यों की संख्या ५०६ है, जिनमें ३०३ पुरुष व २०३ महिलाएँ हैं। अतः पुरानी पीढ़ी (ख) व नयी पीढ़ी (क) में १ : ३.२८ का अनुपात है। हम देखते हैं कि वर्तमान समय में सन्तान उत्पादकता की दर सामान्य है (तालिका-३)।

३. शिक्षा का विवरण

१०८ परिवारों के ६७६ सदस्यों में से १२० (१७.७५ प्रतिशत) व्यक्ति अशिक्षित हैं। जिनमें २७ पुरुष, ५९ महिलाएँ, १४ लड़के व २० लड़कियां हैं। प्राईमरी तक २२४ (३३.१३ प्रतिशत) व्यक्ति साक्षर हैं, जिनमें ३८ पुरुष व २१ महिलाएँ, व शेष लड़के-लड़कियां हैं। कक्षा ६ से १० तक

१६१ व्यक्ति शिक्षित हैं, जिनमें २५ पुरुष, ९ स्त्रियां, ७६ लड़के व ५१ लड़कियाँ हैं (तालिका-४)।

१५५ (२२.९२ प्रतिशत) सदस्य कक्षा ११ से बी०ए० (स्नातक) तक शिक्षा प्राप्त हैं, जिनमें २३ पुरुष, ७ महिलाएँ, ७५ लड़के व ५० लड़कियाँ हैं। स्नातकोत्तर तक १६ (२.३६ प्रतिशत) सदस्य हैं, जिसमें १२ (९.६ प्रतिशत) पुरुष व ४ (४ प्रतिशत) महिलाएँ हैं (तालिका-४)। उपर्युक्त आंकड़ों से प्रतीत होता है कि अधिकांश लोग पढ़े लिखे हैं। स्नातकों की संख्या काफी है व १६ सदस्य स्नातकोत्तर भी हैं। यद्यपि ग्राम में कोई महाविद्यालय नहीं है, और निकटतम महाविद्यालय इस क्षेत्र से लगभग १० कि०मी० दूर है। मोटाढ़ाक में मात्र एक इन्टर कालेज तथा दो-तीन प्राईमरी पाठशालाएँ हैं, इससे सिद्ध होता है कि शिक्षा की ओर जागरूकता बढ़ी है।

४. रोजगार

यहाँ के लोगों का मुख्य पेशा कृषि है। कृषि के लिए जमीन बहुत कम है। कृषि के साथ-साथ काफी व्यक्ति आंशिक मजदूरी भी करते हैं। स्वरोजगार बहुत कम है। कृषि के योग्य भूमि अधिक उपजाऊ नहीं है। गेहूँ व धान यहाँ की मुख्य फसलें हैं। गांव वाले अपने भरण-पोषण लायक फसलें ही उगा पाते हैं। गांव के सर्वेक्षित ६७६ (जो कि १०८ परिवारों के हैं) व्यक्तियों में से सर्वाधिक ९६ (४९.७५ प्रतिशत) व्यक्ति कृषि करते हैं, इसके बाद ४३ (२२.२७ प्रतिशत) व्यक्ति सरकारी, अर्द्धसरकारी व प्राईवेट नौकरियों में हैं। २८ (१४.५० प्रतिशत) लोग खेतीहर मजदूर हैं। १५ (७.७७ प्रतिशत) लोग भूतपूर्व सैनिक हैं तथा सबसे कम ११ (५.६९ प्रतिशत) व्यक्तियों का अपना रोजगार है। गांव के ९६ परिवार जो कि कृषि में लगे हैं, उनमें तीन-चौथाई लोगों के पास नाम-मात्र की जमीन है तथा रोजगार के अभाव में ये व्यक्ति इसी कृषि से जुड़ गये हैं (तालिका-५)।

५. मासिक आय

सवक्षण से पता चलता है कि इस गांव के व्यक्ति गरीबी की रेखा से नीचे का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। सर्वेक्षित १०८ परिवारों में से ९८ परिवार नियमित मासिक आय पाते हैं। गांव की प्रति परिवार औसत मासिक आय रु० ३२६.०८ है। तथा गांव के प्रति व्यक्ति की औसत मासिक आय रु० ५२.९९ पैसे है, जो कि गरीबी रेखा से नीचे स्पष्ट प्रकट होती है।

गांव में मासिक आय १ रुपया से ३५० रुपया तक के ६४ परिवार हैं, इन परिवारों की प्रति व्यक्ति औसत मासिक आय रु० ३२-३० है। ३५१ रुपये से लेकर १,००० रुपये की आय तक के ३० परिवार हैं, इनमें प्रतिव्यक्ति औसत मासिक आय रु० ७६-४३ है। तीसरे भाग में रु० १००१ से लेकर रु० १५०० तक मासिक आय वाले मात्र ४ परिवार हैं। इसे हम इस क्षेत्र का समृद्ध वर्ग कह सकते हैं। यहाँ प्रतिव्यक्ति औसत मासिक आय रु० २५२-२८ है (तालिका-६)। अतः यह स्पष्ट है कि ग्रामवासी आर्थिक दृष्टिकोण से काफी नीचे हैं। जिससे उनके रहन-सहन, स्वास्थ्य व खाने-पीने आदि का स्तर प्रभावित होना स्वाभाविक है।

६. परिवार-गांव की प्राथमिक मुख्य आवश्यकताएँ

यद्यपि गांव वालों की आर्थिक स्थिति काफी निम्न है, फिर भी उनकी आवश्यकताएँ अद्भुत हैं। १५ (५·४३ प्रतिशत) सदस्यों ने टेलीफोन सुविधा की मांग की है। एक परिवार ऐसा भी है जो गांव में संगीत क्लब चाहता है। इससे यह प्रतीत होता है, या तो कुछ गांव वाले अपनी प्राथमिकताओं का ठीक से विश्लेषण नहीं कर सकते या वे अपने बहुमुखी विकास की ओर अग्रसर हैं। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार परिवार व गांव की प्राथमिक आवश्यकताएं निम्न प्रकार हैं—

ग्राम्य प्राथमिकताओं में पेयजल सर्वोपरि है ५३ (१९·२० प्रतिशत), तदुपरान्त सिंचाई ३६ (१३·०४ प्रतिशत), रोजगार २६ (९·४२ प्रतिशत), मकान ८ (२·८९ प्रतिशत), बिजली २४ (८·६९ प्रतिशत), पक्की सड़कें ४० (१४·४९ प्रतिशत), चिकित्सालय २५ (९·०५ प्रतिशत), विद्यालय २९ (१०·५० प्रतिशत), परिवहन ११ (३·९८ प्रतिशत), टेलीफोन १५ (५·४३ प्रतिशत), उद्योग २ (०·७२ प्रतिशत), वृक्षारोपण ४ (१·४४ प्रतिशत), जमीन ३ (१·०८ प्रतिशत), व संगीत क्लब १ (०·३६ प्रतिशत) (तालिका-७)।

उपर्युक्त आंकड़ों से निष्कर्ष निकलता है कि स्वरोजगार व नौकरी न होने के बावजूद भी रोजगार की ओर सिर्फ २६ (९·४२ प्रतिशत) सदस्यों का ध्यान ही गया है। औद्योगिक प्रगति की ओर तो मात्र २ (०·७२ प्रतिशत) सदस्यों ने सोचा है, जबकि टेलीफोन व संगीत क्लब जैसी अनावश्यक सुविधाओं की तरफ काफी लोग आकर्षित हुए हैं। इससे विकास व नवजागरण की, भौतिकता की ओर उनकी मानसिकता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

७. गांव में बिजली व पानी का विवरण—

गांव में सर्वेक्षण किए गये १०८ परिवारों में से ५१ (४७·२२ प्रतिशत) परिवारों में न तो बिजली है, न ही पानी। यहाँ मात्र २६ परिवार यानि २४·०७ प्रतिशत परिवारों में बिजली व पानी है। २५ (२३·१४ प्रतिशत) परिवार ऐसे हैं, जिनमें सिर्फ बिजली है तथा मात्र ६ (५ ५५ प्रतिशत) परिवार ऐसे हैं, जहाँ पानी है (तालिका-८)। अतः आंकड़ों से स्पष्ट है कि लगभग ७० प्रतिशत परिवार ऐसे हैं, जहाँ पेयजल की व्यवस्था भी नहीं है।

८. जातियों का विवरण—

आंकड़ों के अध्ययन से विदित होता है कि लगभग ९० प्रतिशत लोग सवर्ण जातियों के हैं तथा १० या ११ प्रतिशत लोग पिछड़ी जातियों के हैं। विभिन्न जातियों का विवरण इस प्रकार है—

राजपूत ५६ (५१·८५ प्रतिशत), ब्राह्मण ४० (३७·०३ प्रतिशत), अनुसूचित जाति १० (९·२५ प्रतिशत), पिछड़ी जाति २ (१·८५ प्रतिशत) (तालिका–९)।

९. जमीन का विवरण—

कुल ३५ परिवारों से प्राप्त जमीन विवरण के आंकड़ों के अनुसार १ से ५ बीघा तक जमीन वाले परिवारों की संख्या सर्वाधिक (१३) है। इन तेरह परिवारों के पास कुल मिलाकर मात्र ४३ बीघा जमीन है, अर्थात प्रति परिवार ३ ३० बीघा। इसके बाद ११ से २० बीघा तक जमीन वाले ९ परिवार हैं, जिनके पास कुल मिलकर १४२ बीघा जमीन है। फिर ६ से १० बीघा तक जमीन वाले ८ परिवारों के पास कुल मिलाकर ६९ बीघा जमीन है। २१ से ३० बीघा तक जमीन वाले मात्र ३ परिवार हैं। जिनके पास कुल मिलाकर ८७ बीघा जमीन है तथा ३१ से ४० बीघा तक जमीन वाले २ परिवार हैं, जिनके पास ८० बीघा जमीन है (तालिका-१०)। हम देखते हैं कि अधिकांश परिवारों के पास काफी कम जमीन है व बहुत थोड़े परिवार ऐसे हैं जिनके पास जमीन ठीक कही जा सकती है। इसलिए यहाँ अन्न मात्रखानेभर का हो पाता है।

१०. पशुओं का विवरण—

सर्वेक्षण से पता चलता है कि इन समस्त परिवारों के पास २०४ गाय,

१०६ भैंस, ३८ बकरी व १५ भेड़ हैं। इनके अतिरिक्त १६५ बैल, ४२ बछड़े व ५३ बछियाँ हैं। दुधारु पशुओं की कुल संख्या ३६३ है। ये ३६३ पशु केवल प्रतिदिन कुल ३१७ लीटर दूध ही देते हैं। अतः स्पष्ट है कि प्रति दुधारु पशु १ लीटर दूध भी नहीं है। औसतन प्रति पशु ०.८७ (तालिका-११) लीटर दूध है। हम देखते हैं कि प्रति सदस्य लगभग ४६८ ग्राम दूध आता है जो कि आज के समय में पर्याप्त होता। किन्तु वास्तविकता यह है कि गांव वाले प्रायः तीन-चौथाई दूध को कोटद्वार या निकट की दुकानों व पडोसियों को बेच देते हैं, तथा उनके पास लगभग एक-तिहाई दूध ही रह जाता है। आंकड़ों से यह भी स्पष्ट है कि पहाड़ी गाय व भैंसों के दूध की मात्रा मैदानी गाय-भैंसों के दूध से बहुत कम है। इसका मुख्य कारण है वनों के निरन्तर कटाव से उत्पन्न घास-चारे की कमी। चरागाह नाममात्र के लिए रह गये हैं। अधिकांश गाय व भैंस अत्यन्त दुर्बल प्रतीत होती हैं व किसी प्रकार जंगली घास आदि खाकर अपना पेट भरती हैं।

११. भोजन का विवरण--

गांव के १०८ परिवारों में से ३९ (३६.११ प्रतिशत) परिवार शाकाहारी तथा ६९ (६३.८८ प्रतिशत) परिवार सामिष तथा निरामिष दोनों प्रकार का मिश्रित भोजन करते हैं। शाकाहारी व मिलाजुला खाने वाले परिवारों में अन्न व दूध की खपत तालिका १२ के अनुसार है।

निष्कर्ष--

सर्वेक्षण के उपरान्त प्राप्त आंकड़ों से बहुत-सी महत्वपूर्ण बातें स्पष्ट होती हैं।

गांव के अधिकांश लोग कृषि तथा मजदूरी करते हैं, उनके पास कृषि के लिए भूमि नाममात्र ही है। जिसमें वे अपने गुजारे भर के लिए भी अन्न मुश्किल से उगा पाते हैं। इसके बावजूद भी उन्होंने कृषि हेतु भूमि, विभिन्न किस्मों के बीजों या आधुनिक कृषियन्त्रों के बारे में अपना कोई विचार व्यक्त नहीं किया है। इसके दो कारण हैं, एक तो उनका मानसिक स्तर सीमित है, दूसरे जैसा कि सर्वेक्षण के दौरान एक सदस्य ने कहा कि सरकार योजनाएँ तो बनाती है, किन्तु उन योजनाओं पर अमल नहीं करती। अत्यधिक बेरोजगारी होते हुए भी रोजगार की मांग केवल ९.४२ प्रतिशत व्यक्तियों ने ही की है। उद्योगों की तरफ मात्र ०.७२ प्रतिशत लोगों का ही ध्यान गया है। बहरहाल

क्षेत्र में सबसे पहले आर्थिक विकास की जरूरत है। जहाँ तक शिक्षा का प्रश्न है, अधिकाँश लोग पढ़े-लिखे हैं। महिलाएँ व लड़कियाँ भी शिक्षा के महत्त्व की ओर जागरूक हुई हैं।

गाँव के लगभग ७० प्रतिशत परिवारों में पेयजल की व्यवस्था नहीं है, तब भी मात्र १९.२० प्र०श० लोगों ने ही पेयजल की माँग की है। इसी प्रकार सिंचाई साधन, बिजली, पक्की सड़क, चिकित्सालय, व विद्यालय की जरूरतों को भी बहुत कम लोगों ने दोहराया है। एक काफी रोचक माँग जो कि लगभग १५ परिवारों ने की है वह है टेलीफोन। एक परिवार ने तो संगीत क्लब की माँग भी की है। एक ओर तो मुख्य आवश्यकताओं की कमी व दूसरी ओर ऐसी अनावश्यक कल्पनाएँ, कैसा समन्वय है। इससे गाँव वालों की बौद्धिक अपरिपक्वता ही प्रकट होती है। अतः गाँव में सामाजिक विकास व उत्थान की भी सख्त जरूरत है।

स्पष्ट है कि ग्रामवासियों की आर्थिक व सामाजिक दशा खराब है। यद्यपि शिक्षा की ओर लोग निरन्तर जागरूक हैं, लोगों की मानसिकता भी एक निश्चित क्षेत्र में सिमट कर रह गयी है। परिवार नियोजन, स्वास्थ्य व सफाई की ओर गौर नहीं किया गया है। अतः कहा जा सकता है कि आर्थिक विकास के साथ-साथ गाँव वालों में सामाजिक जागरूकता एवं चेतना की अत्यन्त आवश्यकता है।

ग्राम विकास हेतु सुझाव

मोटाढ़ाक गाँव मालिनी नदी के किनारे बसा हुआ है। मालिनी नदी एकमात्र सिंचाई व पेयजल का साधन है। किन्तु आज शकुन्तला की मालिनी की दशा शोचनीय है। आज मालिनी नदी का पाट डेढ़ मील से भी अधिक चौड़ा हो चला है, इसकी बाढ़ व निरन्तर कटाव से न केवल खेती व वनोपयुक्त भूमि बंजर हो रही है, बल्कि वहाँ के ग्रामीणों का आर्थिक स्तर भी निरन्तर ह्रास की ओर है। इस सन्दर्भ में निम्न सुझावों की ओर ध्यान आकृष्ट करना उपयोगी होगा :—

(१) मालिनी नदी के कटाव को रोकने के लिए कण्वाश्रम से ऊपर की ओर तत्काल बाँध का निर्माण होना आवश्यक है व नदी के दोनों ओर वृक्ष लगाये जायें। वृक्षारोपण से नदी का कटाव तो रुकेगा ही साथ ही साथ प्रदूषण को दूर करने में भी सहायता मिलेगी। नदियों के तटबन्धों पर ठोकों, स्पर व बन्ध बनाकर तटों को कटाव से रोकना एक ठोस कदम होगा।

(२) आठ-दस ग्राम अंचलों की सिंचाई का साधन केवल दो नहरें हैं। सम्पूर्ण क्षेत्र की सिंचाई के लिए ये नहरें अपर्याप्त हैं। अतः और नहरों का निर्माण व उनका समुचित विकास किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

(३) पेयजल के लिए भी इन्हीं नहरों का जल प्रयुक्त होता है। सभी लोग अपने नित्यकर्म की पूर्ति भी इन्हीं नहरों से करते हैं। साबुन लगाकर कपड़ों को धोते हैं, तथा इसी जल को नीचे के गांव वाले पीते हैं। इस प्रकार ये नहरें अत्यन्त प्रदूषित भी हैं। एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि बरसात के दिनों में इन नहरों में गंदला व गन्दा पानी चलता है, जो किसी भी दशा में पीने लायक नहीं है। फिर भी लोगों को मजबूरन इसे पीना पड़ता है। इससे वहां के लोगों के स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

(४) हरित क्रान्ति के लिए भूमि को कृषि के उपयुक्त बनाना व उसका आधुनिकीकरण नितान्त आवश्यक है। उन्नत किस्मों के बीजों का प्रयोग व अत्यन्त आधुनिक कृषियन्त्रों, उर्वरकों की जानकारी ग्रामीणों को दी जानी चाहिए। ऐसे कार्यक्रम चलाये जायें, जिससे ग्रामीणों को आधुनिक कृषि की जानकारी मिल सके।

(५) श्वेत क्रान्ति के क्षेत्र में भी बहुत बड़ा परिवर्तन लाना जरूरी है। पहाड़ी पशुओं को देखिए तो वे चलती-फिरती जिन्दा लाश से ज्यादा कुछ नहीं दीख पड़ते। उनकी आंखों में देखने से लगता है मानों दर्द और पीड़ा है। यदि उन्हें दुधारु बनाना है तो सिर्फ नसलों में सुधार से हो कुछ नहीं होगा, उनके लिये हरे चारे की उससे अधिक जरूरत है। अतः वृक्षारोपण के साथ-साथ चारे के पेड़ भी लगाने चाहिए तथा अच्छी किस्म के घासों के चरागाह भी विकसित किए जाने चाहिए।

(६) आज राज्यों में वनों की रक्षा हेतु वन निगम बनाये गए हैं, उनका फर्ज है कि वन व पेड़-पौधों की हिफाजत करें, किन्तु अधिकांशतः देखा गया है कि ये ही रक्षक, भक्षक बने हुए हैं। दूसरी ओर क्षेत्रीय जनता भी राष्ट्र व समाज को नजरअन्दाज करते हुए, अपने स्वार्थ के लिए पेड़ों को काट रही है। पर्यावरण असन्तुलित हो गया है। प्रदूषण निरन्तर बढ़ रहा है, वनों के कटने की दर भी बढ़ती हो जा रही है। अब यह हद को पार कर चुका है। इसके नियन्त्रण में शासन या सरकार पूर्णतः असफल रही है। और इसका

मुख्य कारण है स्थानीय लोगों का साथ न देना व सिर्फ अपना उल्लू सीधा करना। आज समाज को पूर्णतः जागरूक होना है तथा हर किसी का कर्तव्य बनता है कि वो वृक्षारोपण में सहायता करे। अब यदि प्रत्येक ग्रामीण व राष्ट्र का हर नागरिक इस ओर सचेत रहे तो हम वृक्षारोपण में उपलब्धि जरूर हासिल कर सकते हैं। सन् १९८६ के दौरान इस योजना के अन्तर्गत मालिनी व रौखड़ में १६००० से भी अधिक पौधे रोपे गये थे, आज वहां मात्र २-४ हजार पौधे ही बचे हैं। पशुओं द्वारा विनाश इसका मुख्य कारण रहा है।

(७) गांव के आर्थिक विकास हेतु व रोजगार दिलाने की दिशा में लघु उद्योगों पर बल देना चाहिए। मुर्गी पालन, सुअर पालन व मधुमक्खी पालन पर सरकार को विशेष ऋण प्रदान करने चाहिए व इनकी जानकारी हेतु विशेष निःशुल्क कैम्प लगाये जायें। अभी हाल ही में मधुमक्खी पालन की निःशुल्क जानकारी गांव वालों को दी गयी। इससे ग्रामीणों का आर्थिक व सामाजिक स्तर ऊपर उठेगा, इसका हमें पूर्ण विश्वास है।

(८) प्रत्येक गांव जिसकी जनसंख्या २०० से ऊपर है, में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र भी अवश्य खुलना चाहिए। इससे ग्रामवासी स्वस्थ तो रहेंगे ही साथ ही साथ उन्हें परिवार नियोजन से भी लाभ पहुँचेगा तथा आगामी पीढ़ी सन्तुलित रहेगी। इन स्वास्थ्य केन्द्रों में छोटे बच्चों के लिए विभिन्न बीमारियों से बचने के लिए टीकों की मुफ्त व्यवस्था होनी चाहिए।

(९) शिक्षा की ओर जागरूकता को देखते हुए यहां दो और इन्टर कॉलेज जिनमें एक सिर्फ लड़कियों के लिए हो, खोले जा सकते हैं।

(१०) हालांकि कुछ परिवारों मं बिजली-पानी है, किन्तु सम्पूर्ण गांव में बिजली-पानी पहुँचाया जाना चाहिए।

(११) मुख्य सड़क से ग्रामों को पक्की सड़कों से जोड़ा जाना चाहिए व परिवहन में विकास के लिए और अधिक बसें चलनी चाहिए।

उपरोक्त सभी जरूरतों के लिये किसी एक को ही जिम्मेदार समझना व उसे दोष देना गलत है। अपने आर्थिक व सामाजिक उत्थान के लिए सभी को एकजुट होकर लग जाना चाहिए। यहाँ यह कहावत एकदम खरी उतरती है—

"प्रभु उन्हीं की सहायता करते हैं, जो स्वयं अपनी सहायता करते हैं।"

तालिका-1

परिवार का माप—

क्र.सं.	परिवार में सदस्यों की संख्या	परिवार संख्या	परिवार %	पुरुष	पुरुष %	महिला	महिला %	महिला व पुरुषों का योग
1.	1—4	12	11·11	31	7·78	14	5·035	45
2.	5—8	89	82·40	328	82·41	237	85·25	565
3.	9—11	7	6·48	39	9·79	27	9·71	66
कुल योग		108		398		278		676

तालिका-2

ग्रामवासियों का आयु विवरण—

क्र.सं.	वर्ष	पुरुष	%	महिला	%	कुल सं०	%
1.	0—5	12	3·01	16	5·75	28	4·14
2.	6—12	52	13·06	43	15·46	95	14·05
3.	13—21	145	36·43	89	32·01	234	34·61
4.	22—35	95	23·61	55	19·78	149	22·04
5.	36—50	52	13·06	60	21·58	112	16 56
6.	51—65	39	9·79	12	4·31	51	7·54
7.	66—90	4	1·00	3	1·07	7	1·03
		398		278		676	

तालिका–3

मुख्य आयु वर्ग—

क्र०सं०	वर्ष	पुरुष	%	महिला	%	कुल सं०	%	अनुपात
क—	1—35	303	76·13	302	73·02	506	74·85	ख:क
ख—	35—60	85	21·35	69	24·82	154	22·78	1:3·28
ग—	61—90	10	2·51	6	2·15	16	2·36	

तालिका–4

शिक्षा विवरण—

क्र०सं०	शिक्षा	पुरुष	%	महिला	%	लड़के	%	लड़कियाँ	%	कुल योग	%
1.	अशिक्षित	27	21·60	59	59·00	14	5·28	20	10·75	120	17·75
2.	1—5 तक	38	30·40	21	21·00	100	37·37	65	34·94	224	33·13
3.	6—10 तक	25	20·00	9	9·00	76	28·67	51	19·24	161	23·81
4.	एच० से बी०ए०	23	18·40	7	7·00	75	28·30	50	26·88	155	22·92
5.	बी०ए० से उच्च	12	9·60	4	4·00	—	—	—	—	16	2·36
										676	

तालिका–5

व्यवसाय विवरण—

क्र०सं०	व्यवसाय	व्यक्ति	%
1.	नौकरी	43	22·27
2.	कृषि	96	49·74
3.	पेन्शन (भू०पू०सै०)	15	7·77
4.	रुचासेजगसा	11	5·69
5.	खेतीहर मज़दूर	28	14·50

तालिका–6

मासिक आय विवरण—

क्र०सं०	मासिक आय (रु० में)	परिवार	%	परिवार में कुल सदस्यों की संख्या	कुल मासिक आय (रु० में)	प्रतिव्यक्ति मासिक आय (रु० में)
1.	1 से 350	64	65·30	404	13,051	32·30
2.	351 से 1000	30	30·61	178	13,605	76·43
3.	1001 से 1500	4	4·08	21	5,300	252·38
4.	1500 स अधिक कोई नहीं		—	—	—	—

तालिका–7

परिवार/गाँव की प्राथमिक आवश्यकताएँ—

क्र० सं०	परिवार/गाँव की प्राथमिक मुख्य आवश्यकताएँ	परिवारों की संख्या	%
1.	पेयजल	53	19·20
2.	सिंचाई	36	13·04
3.	रोजगार	26	9·42
4.	मकान	8	2·89
5.	बिजली	24	9·69
6.	पक्की सड़क	40	14·49
7.	चिकित्सालय	25	9·05
8.	विद्यालय	29	10·50
9.	परिवहन	11	3·98
10.	टेलीफोन	15	5·43
11.	उद्योग	2	0·62
12.	वृक्षारोपण	4	1·44
13.	जमीन	3	1·08
14.	संगीत क्लब	1	0·36

तालिका–8

गाँव के विभिन्न परिवारों में बिजली पानी का विवरण—

क्र०सं०	बिजली व पानी की स्थिति	परिवार	%
1.	केवल बिजली है	25	23·14
2.	केवल पानी है	6	5·55
3.	बिजली व पानी दोनों हैं	26	24·06
4.	दोनों में से कोई नहीं	51	47·22

तालिका–9

जाति-विवरण—

क्र०सं०	जातियाँ	परिवार	%
1.	राजपूत	56	36·03
2.	ब्राह्मण	40	51·85
3.	अनुसूचित जाति	10	9·25
4·	पिछड़ी जाति	2	1·85

तालिका–10

जमीन विवरण—

क्र०सं०	जमीन (बीघा में)	परिवारों की सं०	कुल जमीन (बीघा में)	प्रति परिवार जमीन (बीघा में)
1.	1—5	13	43	3·30
2.	6—10	8	69	8·62
3.	11—20	9	142	15·66
4.	21—30	3	89	29·0
5.	31—40	2	80	40·0

तालिका–11

पशुओं का विवरण—

क्र०सं०	पशु	पशुओं की संख्या	पशुओ द्वारा प्राप्त दूध की मात्रा (लीटर में)	एक पशु द्वारा प्राप्त औसत दूध (लीटर)
1.	गाय	204	212	
2.	भैंस	106	100	0·87
3.	बकरी	38	5	
4.	भेड़	15	—	
5.	बैल	165	—	
6.	बछड़ा	42	—	
7.	बछिया	53	—	

तालिका—12

भोजन का विवरण—

क्र॰सं॰	शाकाहारी भोजन करने वाले परिवारों की संख्या	%	मिलाजुला भोजन करने वाले परिवारों की संख्या	%	मासिक व्यय गेहूं की मात्रा (किग्रा.)	मासिक व्यय चावल की मात्रा (किग्रा.)	मासिक व्यय दाल की मात्रा (किग्रा.)	मासिक व्यय दूध की मात्रा (लीटर)
1.	9	36·11	69	63·88	3562	3515	966	2330

गंगा समन्वित योजना (भारत सरकार)
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

"गंगा एवं गंगा का मैदान—एक अध्ययन"

(ऋषिकेश से गढ़मुक्तेश्वर तक)

डा० वि० शंकर
मुख्य अन्वेषक

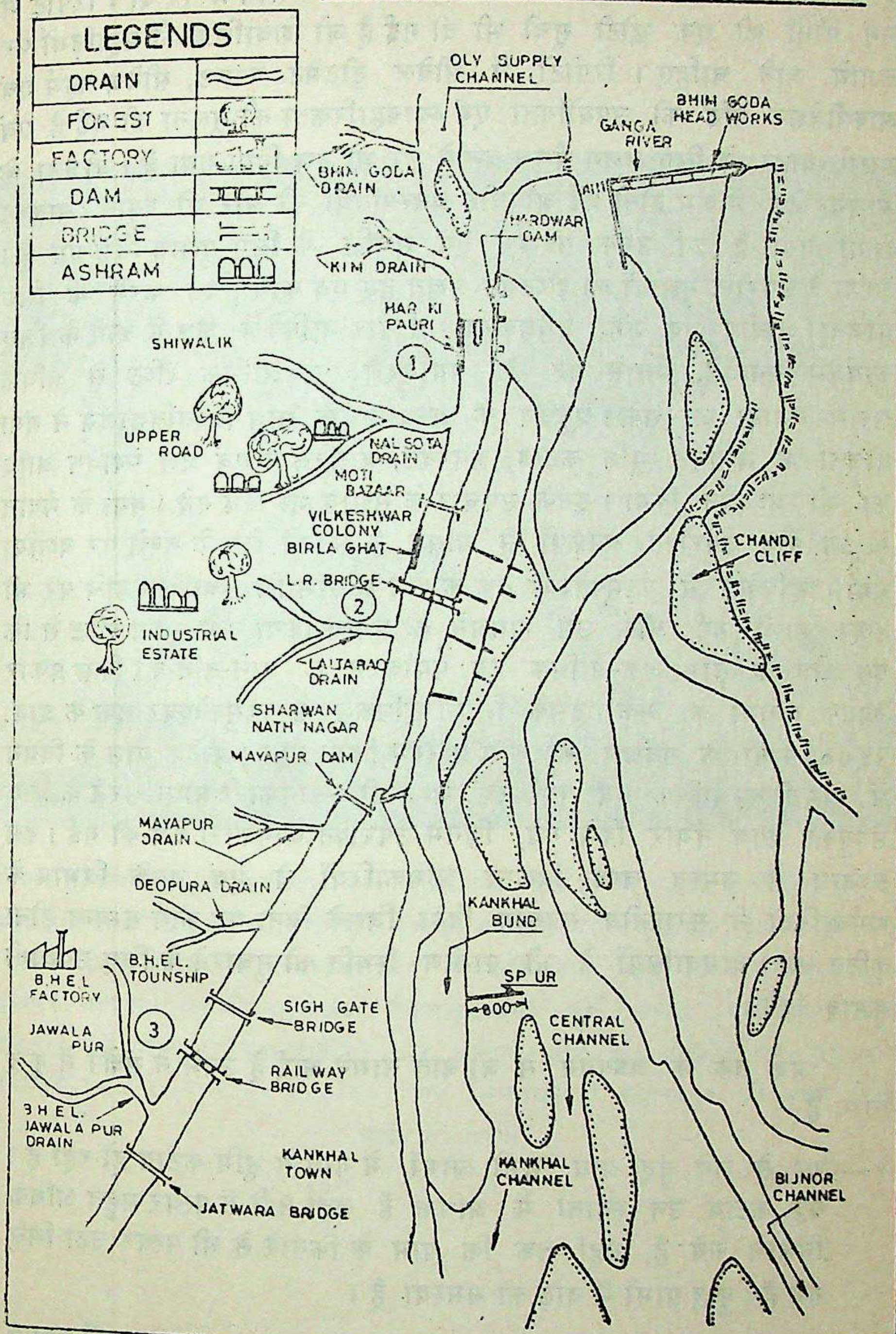
ऋषिकेश से गढ़मुक्तेश्वर तक गंगा का अध्ययन करने पर अनेक तथ्य सामने आए। १९८४ में देखा गया कि कुछ इलाकों में, मुख्यतः ऋषिकेश-हरिद्वार में फैक्टरी और शहरी गन्दे नालों द्वारा गंगा एवं गंगानहर प्रदूषित हो रही थी। (इन गन्दे नालों को अब केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण के अन्तर्गत हुए कार्यों के द्वारा गंगा में गिरने से रोका गया है।) कुछ इलाके ऐसे भी थे और आज भी हैं जहाँ गंगा के तट पर बसे ग्रामों में रहने वाले लोग निरन्तर बाढ़ के खतरे से ग्रस्त रहते हैं। नदी द्वारा मिट्टी का कटाव, फसलों की पैदावार कम होना, ईंधन के लिए गंगातट एवं आसपास के जंगलों से वृक्षकटान, गरीबी, न्यूनतम जन-सुविधाओं का न होना, नदी के निरन्तर बदलते हुए पथ से भूमि के लम्बे-चौड़े क्षेत्रफल का निरुपयोग हो जाना, कहीं दलदली क्षेत्र तो कहीं खादिर, वनस्पतियों का, विशेषरूप से अनेक महत्वपूर्ण औषधीय जड़ी-बूटियों का एवं तटीय तथा निकटवर्ती पहाड़ियों पर उगने वाले पौधों का कम होते जाना, नहरों के इलाके में रिसन, लवणता, आदि कुछ ऐसे लक्षण हैं जो ऋषिकेश से गढ़मुक्तेश्वर तक के ग्रामीण इलाकों में दृष्टिगोचर होते हैं।

हरिद्वार-ऋषिकेश में गंगा को साफ करने के लिए गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने १९८४ में अध्ययन प्रारम्भ किया। इसके लिए पूरे क्षेत्र का सर्वे एवं गंगा में गिरने वाले नालों का सूत्रीकरण किया गया। नगरपालिका के अधिकारियों (श्री ए० सी० दूबे, डा० अभयसिंह, आदि) ने सर्वे कार्य में सराहनीय योगदान दिया। कुछ सर्वे में ये लोग हमारे साथ रहे और नालों तथा सिल्ट की समस्याओं के उद्गम स्थानों का मौके पर अध्ययन किया। गंगा के पानी पर दुष्प्रभाव का पता लगाने के लिए विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग में "गंगा समन्वित योजना" (भारत सरकार) के अन्तर्गत नालों और

गंगा के पानी के अनेक सैम्पल लिए गए और उनका विश्लेषण किया गया तथा गंगा में नालों से होने वाले प्रदूषण का अन्दाज लगाया गया। इसके लिए पानी के फिजिको-केमीकल एवं माइक्रोबायोलोजीकल केरेक्टर्स का अध्ययन किया गया। शहरों के सीवेज पम्पिग स्टेशन, सीवर लाइन एवं गली पिट्स आदि का मौके पर अध्ययन किया गया तथा उनकी स्थिति के विषय में रिपोर्ट तैयार की। अध्ययन के आधार पर विश्वविद्यालय की ओर से गंगा समन्वित योजना के अन्तर्गत योजना के मुख्य अन्वेषक डा० विजय शंकर ने १९८४ में ४ रिपोर्ट तैयार कीं जिनमें गंगा में प्रदूषण के कारण एवं उनके उपचार के लिए सुझाव प्रस्तुत किये गये। रिपोर्ट की प्रतियाँ संबन्धित विभागों / कारखानों को भी भेजी गई। उत्तर प्रदेश जल निगम के रुड़की स्थित इन्जीनियर श्री ओ०पी० वीर से भी विचार-विमर्श हुआ एवं उन्हें भी रिपोर्ट की प्रतियाँ भेजी गईं।

इन रिपोर्टों के द्वारा एवं 'हिन्दुस्तान टाइम्स' (सितम्बर ९, ११, १२ १९८४) में छपे डा० विजय शंकर के इन्टरव्यू के द्वारा हरिद्वार-ऋषिकेश क्षेत्र में गंगा के प्रदूषण की ओर राष्ट्रीयस्तर पर ध्यान आकर्षित हुआ। वर्ष १९८५ में 'केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण' का गठन हुआ और इसके साथ ही उ० प्र० जल निगम एवं गंगा प्रदूषण नियन्त्रण इकाई हरिद्वार-ऋषिकेश में उतर आये और गंगा की सफाई में सक्रिय हो गये।

उपरोक्त अध्ययन एवं कार्यों के फलस्वरूप, जिनकी पहल करने का श्रेय गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय को है, आज १९८७ में ऋषिकेश-हरिद्वार क्षेत्र में गंगा, नालों के प्रदूषण से कुछ सीमा तक मुक्त है। इसके लिए नई सीवर लाइन डाली गई है, नालों को ट्रैप किया गया है, नये सीवेज पम्पिग स्टेशन बनाये गये हैं. पुरानों का सुधार किया गया है एवं बायोलोजिकल ट्रीटमेंट प्लांट बनाया जा रहा है। इन सब कार्यों की प्रगति को देखने के लिए २२ मई १९८७ को योजना आयोग के डा० एम० जी० के० मेनन एवं अन्य सदस्य तथा केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण के डा० सुरेशचन्द्र का हरिद्वार में आगमन हुआ। उनके साथ बी०एच०ई०एल० हरिद्वार में गगा समन्वित योजना, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, प्रदूषण नियन्त्रण इकाई, जलनिगम एवं बी०एच०ई०एल० के प्रतिनिधियों की मीटिंग हुई। विश्वविद्यालय की ओर से डा० विजय शंकर, मुख्य अन्वेषक एवं डा० आर० पी० एस० सन्धू, शोध वैज्ञानिक ने भाग लिया। मीटिंग के पश्चात पूरे क्षेत्र का सर्वे एवं निरीक्षण भी किया गया। जहाँ नालों का ट्रैपिंग एवं पम्पिग स्टेशनों आदि के निर्माण का कार्य प्रायः सम्पन्न हो गया है, वहाँ पहाड़ियों पर वृक्षारोपण के क्षेत्र में बहुत कुछ करना शेष है। इस अवसर पर गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के मुख्य अन्वेषक ने योजना द्वारा किये गये कार्यों पर आधारित

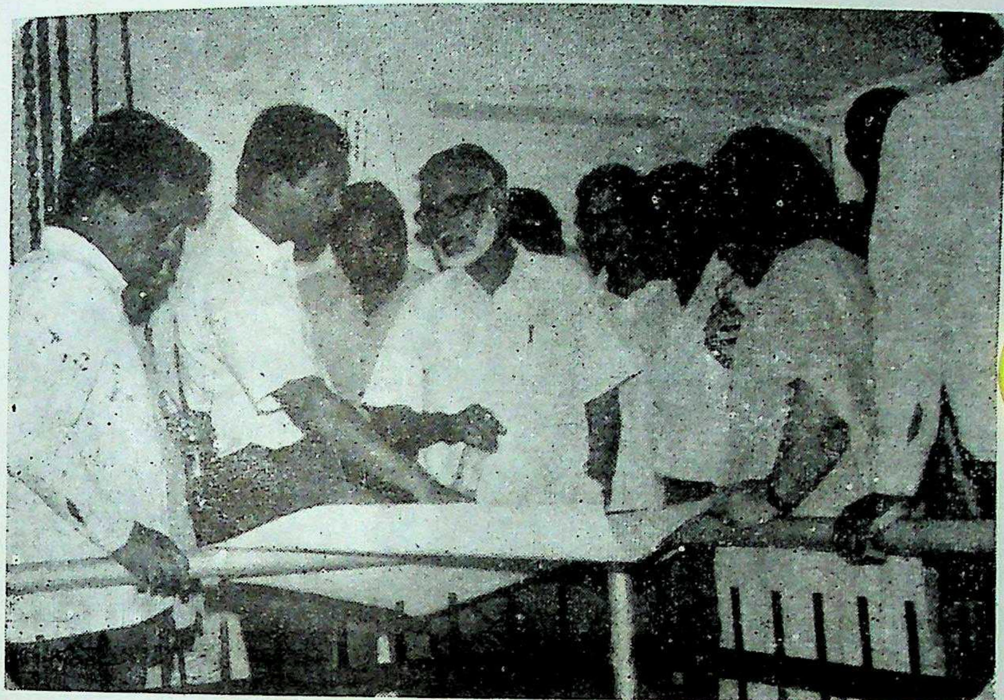

Fig-I
RIVER GANGA AT HARDWAR
LEGENDS
DRAIN
FOREST
FACTORY
DAM
BRIDGE
ASHRAM
OLY SUPPLY CHANNEL
BHIM GODA HEAD WORKS
GANGA RIVER
BHIM GODA DRAIN
HARDWAR DAM
KIM DRAIN
HAR KI PAURI
SHIWALIK
UPPER ROAD
NAL SOTA DRAIN
MOTI BAZAAR
VILKESHWAR COLONY
BIRLA GHAT
L.R. BRIDGE
CHANDI CLIFF
INDUSTRIAL ESTATE
LALTA RAO DRAIN
SHARWAN NATH NAGAR
MAYAPUR DAM
MAYAPUR DRAIN
DEOPURA DRAIN
KANKHAL BUND
B.H.E.L. FACTORY
B.H.E.L. TOUNSHIP
SPUR
800
CENTRAL CHANNEL
SIGH GATE BRIDGE
JAWALA PUR
RAILWAY BRIDGE
B.H.E.L. JAWALA PUR DRAIN
KANKHAL TOWN
KANKHAL CHANNEL
BIJNOR CHANNEL
JATWARA BRIDGE
1
2
3

३ रिपोर्ट योजना आयोग के श्री शाह को उनकी प्रार्थना पर दी। रिपोर्ट में उन पौधों की एक छोटी सूची भी दी गई है जो शिवालिक की पहाड़ियों पर लगाये जाने चाहिए। रिपोर्टों में सीवेज ट्रीटमेंट प्लान्ट, सीवेज फार्म एवं आक्सीडेशन पोंड की उपयोगिता एवं व्यावहारिकता की तुलना की गई है एवं स्टार्म वाटर के लिए अलग चैनल बनाने पर भी बल दिया गया है। योजना के अध्ययनक्षेत्र में कम होती हुई औषधीय वनस्पतियों की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया गया है एवं उनके संरक्षण एवं समृद्धि के लिए सुझाव दिये गये हैं। आशा है उपरोक्त सुझावों को दृष्टिगत रखते हुए एवं कार्यान्वित करने के लिए योजना आयोग एवं गंगा प्राधिकरण हरिद्वार-ऋषिकेश क्षेत्र में आगे के लिए कार्यक्रम बनायेंगे, जिससे यह क्षेत्र पर्यावरण एवं आर्थिक दृष्टि से अधिक उत्तम बनाया जा सके। प्रदूषण के अध्ययन के साथ विश्वविद्यालय ने गंगा योजना के अन्तर्गत भूमि कटाव, अपरदन, जलरिसाव एवं जल प्लावन आदि का भी अध्ययन किया। इनके उपचार के सुझाव भी दिये गये। गंगा के मैदान में जो क्षेत्र उपरोक्त अपकर्षों से ग्रसित हैं उनको क्षेत्र के नक्शे पर दर्शाया गया। ऋषिकेश से गढ़मुक्तेश्वर तक के क्षेत्र के सामाजिक-आर्थिक ढांचे पर भी नजर डाली गई और उसे समझने का प्रयत्न किया गया—इस दृष्टि से कि इस क्षेत्र के सामाजिक-आर्थिक एव पर्यावरण के ताने-बाने को किस प्रकार बेहतर बनाया जा सके। इसके लिए ऋषिकेश से गढ़मुक्तेश्वर तक के प्रायः २५०० ग्रामों के सर्वेक्षण का कार्य प्रारम्भ किया गया। प्रत्येक ग्राम के विषय में सामाजिक-आर्थिक एवं पर्यावरण सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने के लिए उपयुक्त प्रपत्र तैयार किये गये, जिनमें उपरोक्त जानकारी दर्ज की गई। इस सम्बन्ध में समस्त खण्ड विकास अधिकारियों ने एवं उनके विभाग के कर्मचारियों ने सराहनीय सहयोग दिया जिसके बिना यह कार्य सम्पन्न होना कठिन था। ग्रामवासियों ने भी ग्रामीण स्थिति को सुधारने के लिए उपयोगी सुझाव दिये।

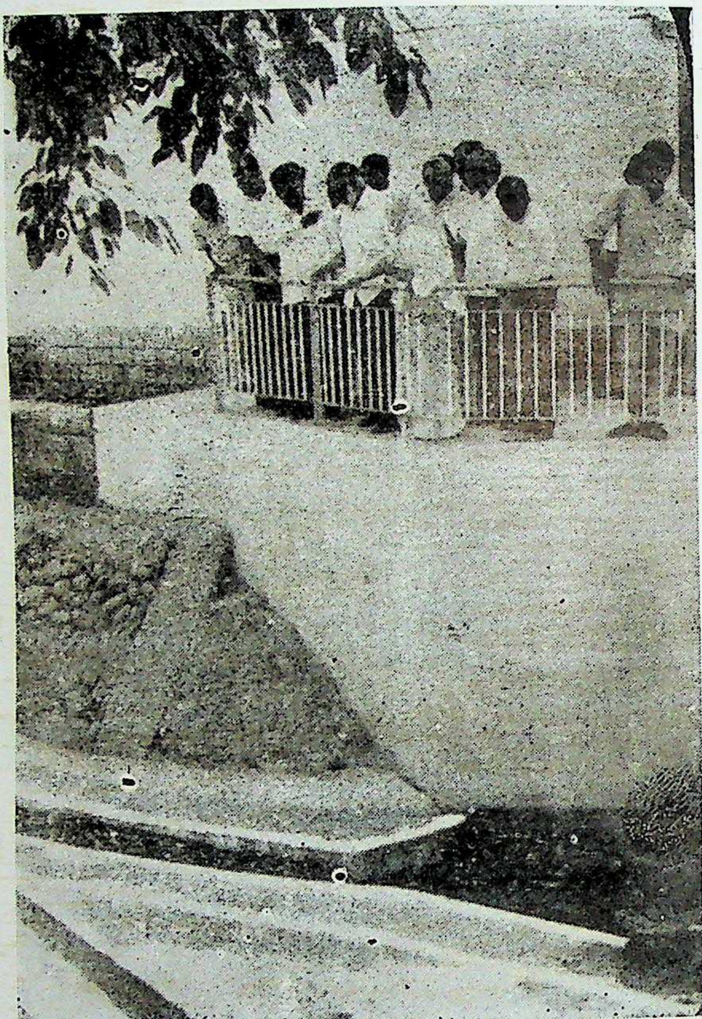
अब तक के अध्ययन से जो बातें सामने आई हैं उनमें से संक्षेप में कुछ निम्न हैं—

१—गंगा से लगे हुए प्रायः सभी ग्रामों में गंगा से भूमि कटाव हो रहा है। यह कटाव उन स्थानों में अधिक है जहाँ नदी से पत्थर बहुत अधिक निकाले गये हैं, यहाँ तक कि ग्राम के किनारे से भी पत्थर उठा लिए गये हैं। कुछ ग्रामों में बाढ़ की समस्या है।

२— निचले स्तर पर बसे ग्रामों में जल रिसाव एवं जल प्लावन हो रहा है जिससे भूमि का एक बड़ा भाग स्थान २ पर बेकार हो गया है। ऐसे क्षेत्रों में फसल की हानि हुई है साथ ही लोगों को अपना व्यवसाय भी बदलना

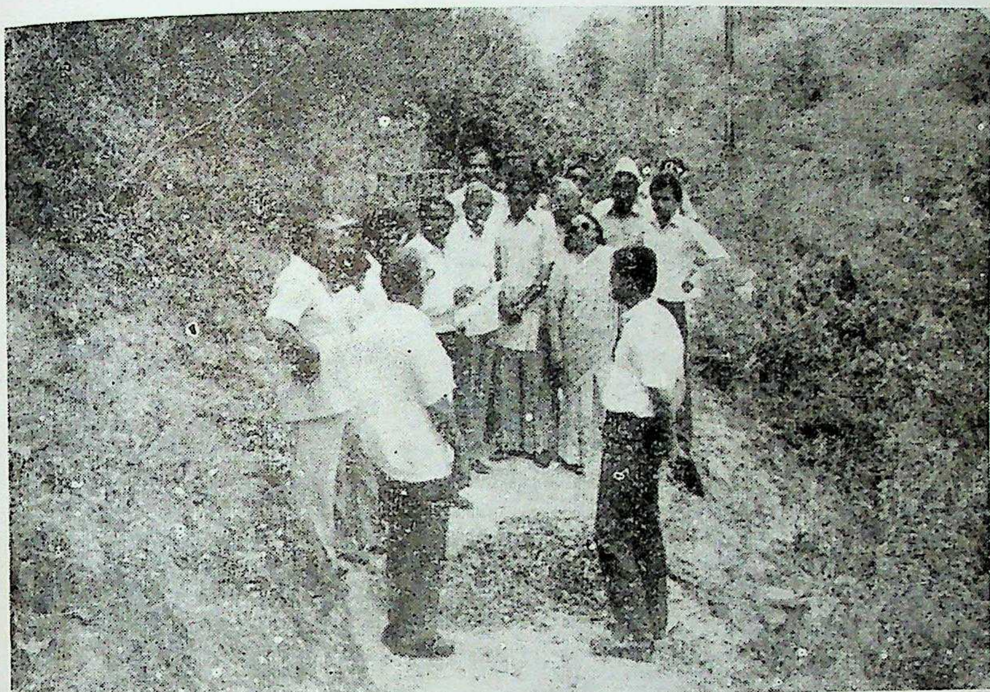


त्रिशूल अतिथि भवन, बी०एच०ई०एल०, हरिद्वार में गंगा एक्शन प्लान के अन्तर्गत हुए गंगा प्रदूषण को रोकने हेतु हुए कार्यों के मानचित्र का अवलोकन करते हुए डा० एम०जी०के० मेनन (सदस्य योजना आयोग नई दिल्ली)। चित्र में उनके बाईं ओर डा० विजय शंकर (मुख्य अन्वेषक, गंगा समन्वित योजना, गु०कां० विश्वविद्यालय), श्री विस्वास (गंगा प्रदूषण इकाई) एवं डा० मंजू शर्मा (योजना आयोग) और दाहिनी ओर डा० आर०पी०एस० संधू (शोध वैज्ञानिक, गं० स० यो०, गु० कां० वि०) एवं जिलाधिकारी सहारनपुर श्री अरुण मिश्रा, आई० ए० एस०।



बी॰एल॰ई॰एल॰—ज्वालापुर नाला

निरीक्षण करते हुए डा॰ एम॰जी॰के॰ मेनन, श्री अरुण मिश्रा, डा॰ मंजू शर्मा, श्री मंगल, डा॰ वि॰ शंकर, डा॰ आर॰पी॰एस॰ संघू एवं अन्य।



बिल्केश्वर की पहाड़ियों का अवलोकन करते हुए डा० मेनन, डा० मंजू शर्मा, श्री शाह (योजना आयोग नई दिल्ली) के साथ श्री अरुण मिश्रा, जिलाधिकारी, श्री मंगल (गं०प्रा०इ०) डा० वि० शंकर, डा० संघू (गं०स०यो०, गु०कां०वि०) एवं अन्य।



मायापुर नाला

योजना आयोग नई दिल्ली की टीम, गंगा प्रदूषण इकाई हरिद्वार एवं गंगा समन्वित योजना के प्रतिनिधि नाले का निरीक्षण करते हुए। चित्र में बायें से—श्री अरुण मिश्रा, डा० वि० शकर, डा० मंजू शर्मा, श्री मंगल आदि।

पड़ा है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि भूमि एक राष्ट्रीय सम्पत्ति है और उसकी हानि राष्ट्र की हानि है। मिट्टी का एक-एक कण हमारे लिए कीमती है।

३— अधिकतर ग्रामों में तालाब नहीं पाये गये। प्रत्येक ग्राम में कम से कम एक बड़ा तालाब आवश्यक है। इससे अनेक कार्यों के लिए, जैसे कपड़े धोना, सिंचाई, मछली पालन, सिंघाड़ा आदि की बेल लगाना, पशुओं के लिए पीने-नहाने के लिए जल की आवश्यकता की पूर्ति होती है। प्राचीन समय में छोटे-छोटे तालाबों से सिंचाई कार्य में सराहनीय योगदान मिला है। भारत में प्रायः ५-६ लाख तालाब हुआ करते थे जिनसे सिंचाई सफलतापूर्वक होती थी।

४— अधिकतर ग्रामों में विद्यालयों की दशा शोचनीय है। शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात प्रायः १ : २० से १ : ५० तक है। कहीं २ एक शिक्षक को ही सभी कक्षाएँ देखनी होती हैं। भवन की दृष्टि से भी स्थिति गम्भीर है। जितने शिक्षक एक विद्यालय के लिए प्रस्तावित हैं उतने भी नियुक्त नहीं किये जाते या मिल नहीं पाते। इस समस्या की ओर ध्यान देना आवश्यक है, विशेषरूप से अब जबकि सरकार शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दे जा रही है। ग्रामों के बालक, बालिकायें उत्तम शिक्षा पायें, यह आवश्यक है। उसके लिए Voluntary संगठन भी आगे आ सकते हैं। अधिकतर ग्रामीणों की मासिक आय रु० ३००–४०० तक है। रोजगार के नाम पर लोग या तो मजदूरी करते हैं, खेती करते हैं या छोटा-मोटा व्यापार करते हैं। कुछ ग्रामों के लोग क्रेशर या फैक्टरी में नौकरी करते हैं। कुछ लोग लकड़ी बेचकर जीवनोपार्जन करते हैं।

कांगड़ी ग्राम में आर्थिक-सामाजिक एवं पर्यावरणीय स्थिति में सुधार लाने के लिए ग्रामीणों को बैंक से ऋण की सुविधा दिलवाने में गु० कां० वि० ने अच्छा काम किया जिससे वहाँ के लोगों की आर्थिक स्थिति में काफी सुधार हुआ। प्रायः ३०% परिवारों की मासिक आय में ३०० से ४०० रु० की वृद्धि हुई। ग्राम को बाढ़ से बचाने के लिए सरकार के सम्बन्धित विभाग एवं जिलाधिकारी से सम्बन्ध स्थापित करके विश्वविद्यालय ने सरकार को चेक-डॉम बनाने के लिए तैयार किया। वर्तमान कुलपति श्री आर० सी० शर्मा (आई० ए० एस०) पूर्व कुलपति श्री जो० बी० के० हूजा (आई० ए० एस०) एवं कांगड़ी ग्राम विकास योजना के निदेशक डा० वि० शंकर एवं ग्रामवासियों के प्रयास से चैक-डॉम अब प्रायः तैयार है।

बिजनौर में बैराज बनने से समीपवर्ती इलाके की भूमि में रिसन एवं जल प्लावन तथा लवणता प्रारम्भ हो गई है जिससे अनेक खेत बेकार हो गये हैं तथा कुछ लोग मजदूरी के लिए मुजफ्फरनगर क्रेशर में काम करने जाने लगे हैं। ऐसा भी बताया जा रहा है कि पिछले वर्ष इन ग्रामों में भी बाढ़ आ गई जो अभी तक बाढ़ के खतरे से मुक्त थे।

५— ग्राम की भूमि (पंचायत/ग्राम सभा) अधिकतर खाली पड़ी है जहाँ उपयोगी वृक्ष लगाना आवश्यक है। भूमि कटाव रोकने के लिए भी प्रभावी पौधे लगाना आवश्यक है। इस प्रकार के वृक्षों की एक सूची योजना ने तैयार की है।

६— जिन ग्रामों के निकट वन हैं वहाँ ग्रामीण जंगल से ईंधन-लकड़ी प्राप्त करते हैं, इससे वन को हानि होती है। वनों को हानि से बचाने के लिए ग्राम को खाली पड़ी भूमि में बड़ी संख्या में वृक्ष लगाये जाएँ और साथ ही गोबर गैस प्लांट लगाने के लिए भी ग्रामीणों को प्रोत्साहित किया जाए। साथ ही ग्राम में सौर चूल्हा का भोजन पकाने के लिए चलन भी पर्यावरण संरक्षण एवं समृद्धि में उपयोगी सिद्ध होगा।

७— अधिकतर ग्रामों में प्राथमिक सेवायें सन्तोषजनक नहीं हैं। कुछ ग्रामों में स्वास्थ्य केन्द्र भी नहीं हैं।

८— ऋषिकेश में श्यामपुर खादिर के निवासी आई०डी०पी०एल० फैक्टरी से, गजरौला में विकसित होते हुए इण्डस्ट्रीयल काम्पलेक्स से, निकटवर्ती ग्रामों के ग्रामवासी स्थानीय फैक्ट्रियों से निकलने वाले एफ्लूएन्टस से दुखी हैं, इससे भूमि, फसल, वनस्पतियों आदि को हानि हो रही है। गंगा समन्वित योजना ने अपनी रिपोर्टों में इन बातों की ओर पहले ही ध्यान आकृष्ट किया है।

वेदों में पर्यावरण संरक्षण

असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्धत प्रवतः समं बहु।
नाना वीर्या औषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्तां नः ।।

अथर्व० १२/२

पृथ्वी के ऊँचे भाग अर्थात् पर्वत, समतल भाग और निम्न भाग नाना गुणों वाली औषधियों से परिपूर्ण हों। ऐसी नाना गुणों से युक्त वनस्पतियों से मण्डित पृथ्वी ही मनुष्यमात्र का कल्याण करने वाली होतो है। जब पृथ्वी के उक्त तीनों भाग वनस्पतियों से नंगे हो जाते हैं तो पृथ्वी मनुष्य का कल्याण करने में असमर्थ हो जाती है।

यह बड़े खेद की बात है कि सभी देशों में उन्नति का अर्थ प्रकृति पर आक्रमण समझा जाने लगा है। ...... जरूरत इस बात की है कि रहन-सहन का स्तर भी सुधरे और लोगों को जो कुछ विरासत में मिला है उसमें कोई फर्क न आये और न प्रकृति के सौन्दर्य, ताजगी और स्वच्छता में, जो हमारे जीवन के लिए बहुत जरूरी है, कोई कमी आए।

—इन्दिरा गांधी

